राष्ट्रीय शिक्षाका इतिहास
और उसकी वर्तमान अवस्था

काशी विद्यापीठ-शिक्षा-परिषदके निश्चय और आदेशानुसार लिखित

कन्हैयालाल

प्रकाशक—बीरबल सिंह, पीठस्थविर, काशी विद्यापीठ, काशी
मुद्रक—बा० वि० पराड़कर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी । ३८२०-८६

भूमिका।

असहयोग आन्दोलनके साथ देश भरमे राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाएँ स्थापित हुईं। जबतक आन्दोलन जोरपर रहा तबतक तो शिक्षाका कार्य गौण रूपसे ही होता रहा। राजनैतिक कार्योंकी ओर ही इन संस्थाओंके अध्यापको, विद्यार्थियो और सञ्चालकोका ध्यान था। विद्यालय चल रहे थे, उनमे पढाई भी होती थी किन्तु पाठ्यक्रम निश्चित करनेके लिये बारीकीके साथ विचार करनेका मौका बहुत कम लोगोको मिलता था। गयाकी कांग्रेसके पहिले कुछ लोगोके मनमे यह बात आई कि कांग्रेसके अवसरपर एक अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन किया जाय। लेकिन बातचीत और पत्र-व्यवहारके बाद यह विचार त्याग दिया गया। क्योंकि कांग्रेसके अवसरपर अन्य कार्योंके लिये बहुत ही कम समय मिलता है और इस अवसर पर शिक्षाके सम्बन्धमे गम्भीरता पूर्वक विचार नही हो सकता। कुछ लोगोकी राय हुई कि कांग्रेसकी ओरसे ही एक कमेटी बैठाई जाय जो शिक्षाकी योजना तैयार करे। इसके लिये एक प्रस्ताव भी

कॉग्रेसमे दिया गया, किन्तु उसपर कोई कार्रवाई नही हुई। कांग्रेसका अधिवेशन समाप्त होनेपर गयामे ही, शिक्षाके विषयमें दिलचस्पी लेनेवाले, भिन्न भिन्न प्रान्तोके लगभग ५० सज्जनोने यह निश्चय किया कि इस मसलेपर विचार करनेके लिये एक कमेटी बुलाई जाय। इस निश्चयके अनुसार काशीमे २३ फरवरीसे ६ मार्च (सन् १६२३ ईसवी) तक एक राष्ट्रीय शिक्षासमितिकी बैठक हुई। इसमें भिन्न भिन्न सस्थाओंके २८ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इस समितिके द्वारा शिक्षाकी एक योजना बनाई गई। समितिने एक स्थायी राष्ट्रीय शिक्षा समिति भी कायम की। लेकिन न तो उस योजनापर ही अमल हुआ और न स्थायी समितिकी बैठक ही फिर कभी हुई। सभी सस्थाएँ अपने अपने ढङ्गपर काम करती रही। विचार विनिमयके लिये महाराष्ट्रकी संस्थाओंने एक प्रान्तीय शिक्षा सम्मेलन करना शुरू किया जिसके अधिवेशन आज तक प्रतिवर्ष हुआ करते हैं। इसके अतिरिक्त और कोई मौका या स्थान भिन्न भिन्न सस्थाओंके प्रतिनिधियोंके मिलनेका नही है।

असहयोग आन्दोलनके समय जितनी संस्थाएँ स्थापित हुई थीं—उनमेंसे कुछ तो धीरे धीरे बन्द होने लगी और जो बच रही उन्होंने अनुभवके आधारपर अपनी अपनी योजनामे हेरफेर करके अपना फिरसे सङ्गठन करना शुरू किया। गुजरात विद्यापीठने एक कमीशन बिठाकर अपनी अवस्थाकी जाँच कराई और उसकी

उपोद्घात

काशीविद्यापीठकी ओरसे एक अखिलभारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलनका आयोजन किया जा रहा है। सम्मेलनके सहायतार्थ आवश्यक सामग्री एकत्र करनेके लिये विद्यापीठके अध्यापक तथा उप पीठस्थविर श्री कन्हैयालालजी नियुक्त किये गये थे, और यह निश्चय हुआ था कि उनका लिखा हुआ विवरण प्रकाशित किया जाय।

प्रस्तुत पुस्तक इसी निश्चयका फल है। आरम्भमें यह विवरण सम्मेलनके प्रतिनिधियोंके उपयोगके लिये ही तैयार कराया गया था, पर विवरणके तैयार हो जानेपर यह विचार हुआ कि यदि इसे सर्वसाधारणके लाभार्थ पुस्तक रूपमें प्रकाशित कराया जाय तो अधिक अच्छा हो।

जो सज्जन राष्ट्रीय शिक्षाके कार्यमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे योग दे रहे हैं, और जो राष्ट्रनिर्माणके कार्यमें राष्ट्रीय शिक्षाके महत्व-को जानते है, वह इस पुस्तककी उपयोगिताका विशेष रूपसे अनुभव करेंगे। पर अन्य सज्जन जो राष्ट्रीय शिक्षाके इतिहास तथा उसकी

वर्तमान अवस्थासे परिचित होना चाहते हैं वह भी इस पुस्तकको उपयोगी पावेंगे।

इस पुस्तकमें राष्ट्रीय शिक्षाका आरम्भसे लेकर आजतकका इतिहास दिया गया है, साथ साथ वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओंका परिचयात्मक वर्णन भी है। राष्ट्रीय शिक्षाके मार्गमें क्या क्या बाधाएँ हैं, राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओंकी क्या क्या वर्तमान आवश्यकताएँ हैं और राष्ट्रीय शिक्षाको प्रगति देनेके लिये कौन कौनसे कार्य आवश्यक हैं इत्यादि, राष्ट्रीय शिक्षा सम्बन्धी कतिपय प्रश्नोंपर इस पुस्तकमें विचार किया गया है।

लेखक महाशयने जिस परिश्रम और योग्यताके साथ इस कार्यको सम्पादित किया है वह सराहने योग्य है।

आशा है यह पुस्तक हमारे साहित्यकी एक कमीको पूरा करेगी और राष्ट्रीय शिक्षाके कार्यको अग्रसर करनेमें सहायक होगी।

काशी विद्यापीठ
१६ पौष, १९८६

नरेन्द्रदेव

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
भूमिका	१

भाग—१

राष्ट्रीयशिक्षाका आरम्भ और प्रसार, वर्तमान
संस्थाओंकी विशेषताएँ, उनकी सामान्य
अवस्था, आजतककी सफलता और
वर्तमान आवश्यकताएँ।

पहला अध्याय—सरकारी शिक्षाप्रणाली	१५
दूसरा अध्याय—राष्ट्रीय शिक्षाका आरम्भ और प्रसार	३४
तीसरा अध्याय—राष्ट्रीय शिक्षाका स्वरूप और वर्तमान संस्थाएँ	६०
चौथा अध्याय—विशेषताएँ और सामान्य अवस्था	७४
पाँचवाँ अध्याय—आजतककी सफलता	९२
छठवाँ अध्याय—वर्तमान आवश्यकताएँ और भावी कार्यक्रम	११०

विषय पृष्ठ

भाग—२

मुख्य मुख्य संस्थाओंका परिचय ।

पहला	अध्याय—अनाथ बालिकाश्रम, हिंगणे	१२७
दूसरा	अध्याय—कन्यागुरुकुल, देहरादून	१३३
तीसरा	अध्याय—कन्या महाविद्यालय, जालन्धर	१४३
चौथा	अध्याय—काशी विद्यापीठ, काशी	१५४
पाँचवाँ	अध्याय—गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद	१७१
छठवाँ	अध्याय—गुरुकुल, काँगड़ी	१८५
सातवाँ	अध्याय—गुरुकुल, वृन्दावन	१९८
आठवाँ	अध्याय—जामिया मिल्लिया इस्लामियाँ, दिल्ली	२०२
नवाँ	अध्याय—तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना	२०५
दसवाँ	अध्याय—श्रीदक्षिणामूर्ति विद्यार्थीभवन, भावनगर	२११
ग्यारहवाँ	अध्याय—नवीन श्री समर्थ विद्यालय, तलेगाँव	२१७
बारहवाँ	अध्याय—प्रेम महाविद्यालय, वृन्दावन	२२३
तेरहवाँ	अध्याय—वङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् या नेशनल कौंसिल आफ एजुकेशन, बंगाल	२३३
चौदहवाँ	अध्याय—बिहार विद्यापीठ, पटना	२४६
पन्द्रहवाँ	अध्याय—महाविद्यालय, ज्वालापुर	२५८

विषय	पृष्ठ
सोलहवाँ अध्याय—विश्वभारती, शान्तिनिकेतन	२६०
सत्रहवाँ अध्याय—श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ, पूना	२७२

परिशिष्ट

परिशिष्ट (क)—प्रश्नावली जो मुख्य मुख्य संस्थाओंके पास उत्तरार्थ भेजी गई थी	२८७
परिशिष्ट (ख)—मुख्य मुख्य संस्थाओंके अन्तर्गत विद्यालयों, उनके विद्यार्थियो और उन संस्थाओंसे निकले हुए स्नातकों और स्नातिकाओंकी संख्या (सन १९२९ मे)	२९०

सिफारिशोंके अनुसार नये प्रकारसे अपना कार्य आरम्भ किया। जामिया मिल्लिया इसलामियॉने भी नया रूप धारण किया। बिहार विद्यापीठका भी नवीन सङ्गठन हुआ। इसी बीच मिती २७ श्रावण १९८५ को काशी विद्यापीठकी शिक्षा-परिषद्ने अपनी पाठशालाके पाठ्यक्रमपर विचार करके उसमे आवश्यक हेरफेर करनेके लिये एक कमेटी मुकर्रर की। कमेटीकी बैठकमे यह बात उठी कि इस प्रकारकी जितनी सस्थाएँ है, उन सबके पाठ्यक्रममें बहुत अधिक अन्तर नही है और यदि सबोंके प्रतिनिधि एकत्र होकर विचार करें तो यह अन्तर कुछ हद तक दूर किया जासकता है। यह भी खयाल हुआ कि सभी सस्थाओंको इतने दिनोंमे तरह तरहके अनुभव हुए है, यदि सबोके प्रतिनिधि एकत्र हों तो विचार विनिमयके द्वारा सबको लाभ हो सकता है और भविष्यकी कार्यप्रणाली भी स्थिर की जा सकती है। उस समय तो कमेटीने अपना काम समाप्त किया। लेकिन यह विचार बराबर प्रबल होता गया और अन्तमें २५ माघ संवत् १९८५ (७ फरवरी १९२९) को शिक्षा परिषदमे निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ--

"यह देखते हुए कि देशमे सरकारी नियन्त्रणसे बाहर रहते हुए शिक्षाका प्रबन्ध करने वाली सस्थाओंके पाठ्यक्रम और उनकी कार्यप्रणालीमे बहुत कुछ इस प्रकारका अन्तर है जो दूर किया जा सकता है, और यदि इन सभी संस्थाओंके

प्रतिनिधि एकत्र होकर विचार करें तो सबोको एक दूसरेके आजतकके अनुभवसे बहुत कुछ लाभ हो सकता है और भविष्यके कार्यक्रमके सम्बन्धमें कुछ उपयोगी मन्तव्य स्थिर किये जा सकते हैः

"शिक्षा-परिषद् प्रबन्धसमितिसे सिफ़ारिश करती है कि वह विद्यापीठके आगामी समावर्तन संस्कारोत्सवके अवसर पर एक राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन करानेका प्रबन्ध करे जिसमें सभी गैर सरकारी शिक्षा-संस्थाओंके प्रतिनिधि तथा अन्य शिक्षा-शास्त्री निमन्त्रित किये जायँ, और इस सम्मेलनमे राष्ट्रीय शिक्षासे सम्बन्ध रखने वाले सभी विषयोपर विचार होनेके अतिरिक्त एक 'स्थायी राष्ट्रीय शिक्षा-समिति' की स्थापनाका प्रयत्न किया जाय।

"सम्मेलनकी सफलताके लिये आवश्यक सामग्री एकत्र करनेके लिये पण्डित कन्हैयालाल इन सब संस्थाओमे भेजे जायँ और उनका मार्ग-व्यय विद्यापीठकी ओरसे दिया जाय। उनके द्वारा एकत्र की हुई सामग्रीके आधारपर एक विवरण तैयार करके छपाया जाय।"

जैसा कि इस प्रस्तावसे स्पष्ट है, इस सम्मेलनमे गैर सरकारी शिक्षा संस्थाओंके प्रतिनिधियोंके अतिरिक्त ऐसे लोगोको भी निमन्त्रित करनेका निश्चय किया गया है जो शिक्षाशास्त्रके मर्मज्ञ

हो, चाहे उनका सम्बन्ध किसी गैर सरकारी शिक्षा संस्थासे हो या न हो। सम्मेलनके उद्देश्यके सम्बन्धमे प्रस्तावमे चार बातें कही गई है—

(१) भिन्न भिन्न-संस्थाओंके पाठ्यक्रम और उनकी कार्यप्रणाली-का जो अन्तर दूर किया जा सकता हो उसे दूर करनेका प्रयत्न करना।

(२) विचार विनिमय, जिससे सभी एक दूसरेके अनुभवोंसे लाभ उठा सकें।

(३) राष्ट्रीय शिक्षासे सम्बन्ध रखने वाले सभी विषयोंपर विचार। और

(४) एक 'स्थायी राष्ट्रीय शिक्षा-समिति' की स्थापना।

पाठ्यक्रममे समानता लानेका उद्देश्य गौण है। सभी संस्था ओंने अपने अपने उद्देश्य निश्चित कर लिये है और उसके अनुसार अपना अपना पाठ्यक्रम तैयार किया है। प्रत्येक संस्था अपने पाठ्य-क्रममे उसी हद्तक परिवर्तन करनेके लिये राजी होगी, जिस हद्-तक अपनी वैयक्तिक विशेषताओंको छोड़े बिना ऐसा करना उसके लिये सम्भव होगा किन्तु इस दृष्टिसे भी बहुत कुछ करनेकी गुञ्जा-इश है। साधारण विषयोके पाठ्यक्रम सभी संस्थाओंमे एक प्रकार-के हो सकते हैं। किन्तु अन्य तीन उद्देश्योंपर विशेष जोर है। अपने अपने आजतकके अनुभवको सामने रखते हुए विचार विनिमय

करनेसे बहुत लाभ होगा। शिक्षाकी समस्याओं पर विचार करना इस सम्मेलनकी दूसरी विशेषता होगी और इसी लिये ऐसे शिक्षा शास्त्रियोंको भी निमन्त्रित करनेका निश्चय किया गया है जिनका किसी गैर सरकारी शिक्षा संस्थासे सम्बन्ध न हो 'स्थायी राष्ट्रीय शिक्षा-समिति' की आवश्यकताका अनुभव बहुत दिनोसे किया जा रहा है। इसके द्वारा सभी सस्थाओके बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित होगा, और राष्ट्रीय शिक्षाकी उन्नतिके लिये वे सब काम किये जा सकेंगे, जिन्हे कर सकना, किसी एक सस्थाके लिये असम्भव है और जो सभीके मिल जानेसे आसानीसे हो सकेंगे। किन्तु यह तो काशीविद्यापीठ-शिक्षा परिषद्का प्रस्ताव मात्र है, उसे स्वीकार करना या न करना सम्मेलनका काम है। मुझे, सब संस्थाओंमें जाकर सम्मेलनके लिये आवश्यक सामग्री एकत्र करने और उसके आधारपर सब सस्थाओंका एक विवरण तैयार करनेका आदेश देनेमें शिक्षा-परिषद्के दो अभिप्राय हैं। एक तो यह कि भिन्न भिन्न संस्थाओंके अधिकारियोसें सम्मेलनके सम्बन्ध मे बात-चीत की जाय और दूसरे यह कि सभी संस्थाओंकी कार्यप्रणालीको देखकर एक ऐसा विवरण तैयार किया जाय जिसके द्वारा सभी संस्थाओंका सक्षिप्त परिचय मिल सके। सम्मेलनमे आनेके पहिले उसके प्रत्येक प्रतिनिधिके लिये इस तरहका विवरण उपयोगी सिद्ध होगा—ऐसी आशा की गई है।

कार्यारम्भ करनेके पहिले सभी मुख्य मुख्य सस्थाओंको शिक्षा-परिषद्के इस निश्चयकी सूचना देते हुए उनसे प्रार्थना की गई कि अपनी सस्थाकी कार्यप्रणाली तथा पाठ्यक्रम आदिकी जानकारीके लिये आजतककी रिपोर्टें और जो कुछ छपी हुई सामग्री उपलब्ध हो वह भेज दें, ताकि उन्हें पढकर जानेसे वहांकी स्थिति समझनेमें सुविधा हो। साथ ही एक प्रश्नावली और आठ नक्शे भी भेजे गये और प्रार्थना की गई कि उन प्रश्नोंका उत्तर तैयार रखें और नक़्शोंकी खानापूरी कर रक्खें। यह इसलिये किया गया कि इसके द्वारा सस्थाकी स्थितिपर प्रकाश पडे। प्रश्नावली परिशिष्टमे दी गई है। नकशे इस खयालसे बनाये गये थे कि उनके द्वारा भिन्न भिन्न वर्षोंमें उस सस्थाके विद्यार्थियोंकी संख्या, आजतक निकले हुए स्नातकोंकी संख्या, वे किनकिन कार्योंमें लगे है, स्नातकोंकी सूची, भिन्न भिन्न वर्षों-मे संस्थासे सम्बद्ध विद्यालयोंकी सख्या, आजकल जो विद्यालय सम्बद्ध हों उनकी सूची, विद्यार्थियोका खर्च, उसी प्रान्तके सरकारी विद्यालयोंके विद्यार्थियोका खर्च, तथा संस्थाका खर्च—इत्यादि बातों-का पता चल सके। दो एकको छोड कर सभी सस्थाओंने इस प्रार्थ-नाके अनुसार सारी सामग्री तैयार कर दी। आजकल देशमें लगभग १५० शिक्षा-संस्थाएँ ऐसी है जो सरकारी नियन्त्रणसे स्वतन्त्र है। इन सबमे जा सकना न तो मेरे लिये सम्भव ही था और न इसकी आवश्यकता ही थी। प्रत्येक प्रान्तसे कुछ ऐसी मुख्य मुख्य सस्थाएँ

चुन ली गई जिनके द्वारा उस कोटिकी अन्य संस्थाओंका परिचय मिल सके। आन्ध्र, तामिल और कर्नाटक प्रान्तोंमें मै न जा सका। इन प्रान्तोमे ऐसे विद्यालयोंकी सख्या भी बहुत कम है। जिन सस्थाओंमे मै जा सका उनकी सूची नीचे दी जाती है—

सयुक्तप्रान्त

(१) गुरुकुल कांगडी

(२) गुरुकुल वृन्दावन

(३) प्रेम महाविद्यालय, वृन्दावन

(४) महाविद्यालय ज्वालापुर

(५) कन्या गुरुकुल देहरादून

(६) राष्ट्रीय विद्यालय, कानपुर

(७) गान्धी राष्ट्रीय विद्यालय, फर्रुखाबाद

पञ्जाब

(८) कन्या महाविद्यालय, जालन्धर

दिल्ली

(९) जामिया मिल्लिया इस्लामियाँ, दिल्ली।

गुजरात

(१०) गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

बिहार

(११) बिहार विद्यापीठ, पटना

बङ्गाल

(१२) विश्वभारती, शान्तिनिकेतन

(१३) बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद् (नेशनल कौंसिल आफ एजुकेशन बङ्गाल) जादवपुर

मध्यप्रदेश

(१४) तिलक विद्यालय, नागपुर

(१५) राष्ट्रीय विद्यामन्दिर, वर्धा

(१६) तिलक विद्यालय, कटनी

बरार

(१७) तिलक विद्यालय, खामगाँव

महाराष्ट्र

(१८) तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना

(१९) अनाथ बालिकाश्रम, हिंगणे

(२०) श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ और इसी नामका कालेज, पूना

(२१) श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी कन्याशाला, पूना

(२२) अनाथ विद्यार्थी गृह, पूना

(२३) नवीन श्री समर्थ विद्यालय तलेगाँव, दाभाडे

(२४) तिलक विद्यालय, येवला, जिला नासिक

(२५) वैश्य विद्याश्रम, सासवने

इन संस्थाओंमें जानेका यह अभिप्राय तो था ही कि इन्हें कार्यके समयमे देखा जाय ताकि इनकी कार्यप्रणालीका परिचय मिल सके। किन्तु जिस समय मै दिल्लीके जामिया मिल्लिया इस-लामियामें गया उस समय उसके प्रिन्सिपल वहां न थे। अन्य अधिकारियोने संस्था दिखलाई। किन्तु उसके आदर्शों, विशेषताओ और भावी कार्यक्रमके सम्बन्धमे विशेष बातें न हो सकी। प्रश्ना-वलीके उत्तर और नकशे भी भरे जा कर आजतक नही मिले। दो तीन छपे हुए परचे वहांसे मिले है, उनके आधारपर ही उसका विवरण तैयार किया गया है।

भावनगर (गुजरात)के दक्षिणा मूर्ति-विद्यार्थी भवनमें मारण्टी-सरी और डाल्टन पद्धतिसे शिक्षा देनेकी व्यवस्था है। यह अपने तरहकी एक विशेष संस्था है। मैं वहां न जा सका। किन्तु प्रार्थना करनेपर वहांसे जो सामग्री मिली, उसके आधारपर उसका संक्षिप्त विवरण दूसरे भागमे दे दिया गया है।

प्रस्तुत विवरण दो भागोंमे विभक्त है। पहले भागमें राष्ट्रीय शिक्षाके आरम्भ और प्रसार, उसके स्वरूप, वर्तमान संस्थाएँ, उनकी स्थिति, विशेषताए, आजतककी सफलता, और आगेकी आवश्यक-ताओंपर विचार किया गया है। दूसरे भागमे मुख्य मुख्य संस्थाओं-के परिचयात्मक वर्णन है इस वर्णनमे प्रत्येक संस्थाका आरम्भसे अब तकका संक्षिप्त इतिहास दिया गया है और उसकी वर्तमान कार्यप्र-

णाली और विशेषताओंका भी उल्लेख किया गया है। पहले भागमे आलोचनाका जितना अश है उसमे मैने अपने विचार ही प्रगट किये है। लेकिन दूसरे भागके लिखनेमे इस बातका खयाल रक्खा गया है कि प्रत्येक सस्थाका परिचय, उसके सञ्चालकोंकी दृष्टिसे ही दिया जाय।

भाग—१

राष्ट्रीय शिक्षाका आरम्भ और प्रसार, वर्तमान संस्थाओंकी विशेषताएँ, उनकी सामान्य अवस्था, आज तककी सफलता और वर्तमान आवश्यकताएँ।

पहला अध्याय

सरकारी शिक्षा प्रणाली।

देशके सरकारी तथा सरकारी सहायताप्राप्त विद्यालयोंमे आज जो शिक्षा प्रणाली प्रचलित है उसका जन्म, आजसे लगभग सौ वर्ष पूर्व, तीन परस्पर विरोधिनी शक्तियोंके सङ्घर्षसे हुआ था। ये शक्तियाँ थी—राजसत्ता, ईसाई धर्मका प्रचार करने वाली मिशनरी सोसाइटियाँ और वर्तमान भारतीय जागृतिके आदि देवता राजा राममोहन राय। तीनोके आदर्शोंमे जमीन आसमानका अन्तर था और उद्देश्य बिलकुल भिन्न भिन्न थे। समता थी तो केवल इस बातमे कि तीनो हीने इस बातके लिये प्रयत्न किया कि पश्चिमका ज्ञानभण्डार भारतवर्षके लिये खोल दिया जाय। जिस प्रकार एक ही औषधि, अनुपान और सेवन-विधिकी भिन्नतासे, भिन्न भिन्न प्रकारका हानि लाभ पहुँचाती है, उसी प्रकार अँगरेजी शिक्षाने भी जैसे हाथसे वह आई, अपना वैसा स्वरूप प्रगट किया। सबसे पहले राजा राममोहनरायने ही इस बातका प्रयत्न किया कि भारत-

वर्षमें अँगरेजी साहित्य और विज्ञानकी शिक्षा दी जाय। उसका कारण यह न था कि वे सस्कृत साहित्यकी अतुल निधियोंसे अनभिज्ञ थे और न यही कि उनकी तुलनामें वह अँगरेजी साहित्यको ऊँचा स्थान देते थे। वे सस्कृत और फारसीके अच्छे विद्वान्, और प्राचीन भारतीय सभ्यताके सौष्ठव और उसकी महत्ताके पुजारी थे। किन्तु उन्होने देखा कि संस्कृत शिक्षाकी परिपाटी इस समय इतनी बिगडी हुई है कि इससे मस्तिष्कका समुचित विकास होनेके बदले अधिकांशमे मानसिक सङ्कीर्णता ही बढती है। पण्डितोका अधिकांश समय न्याय और व्याकरणके पढ़नेमे जाता है—संस्कृत साहित्यके अनमोल रत्नो तक उनकी पहुँच ही नहीं होने पाती। धार्मिक और सामाजिक जीवनपरसे भी भारतीय संस्कृतिकी छाप दूर होती जाती थी और उसपर विडम्बना यह कि समाज अपने उस पतित स्वरूपको ही अपनी प्राचीन संस्कृतिके अनुरूप समझता था। ऐसी परिस्थितिमे राजा राममोहन रायकी दूरदर्शी, पर्यवेक्षक-बुद्धिने स्पष्ट रूपसे देखा कि शिक्षाकी वर्त्तमान प्रणालीको बदले बिना समाजकी अवस्था सुधर नहीं सकती। उन्होने अंग्रेजी साहित्य और विज्ञानकी शिक्षाका प्रारम्भ कराया, ताकि भारतीयोंका पश्चिमके उन्नत देशोके सामाजिक धार्मिक तथा राजनैतिक विचारो और उनकी अवस्थाओसे परिचय हो। उन्होंने सोचा कि भारतवासियोंको अपनी प्राचीन संस्कृतिका बहुत अधिक और उचित

अभिमान है। किन्तु जब वे देखेंगे कि व्यावहारिक जीवनमे वे लोग, जिन्हे हम अपनी तुलनामे हेय और तुच्छ समझते है, हमसे अधिक उन्नत है तब उनके आत्मसम्मानपर एक ठेस लगेगी। वही समय आत्मविश्लेषणके लिये उपयुक्त अवसर होगा और उसी समय वे छानबीन करके देख सकेंगे कि हम अपनी सस्कृतिके आदर्शोसे दूर हट कर पतित हो चुके है। उसी समय उन्हे अपनी बुराइयोको छोड कर उन्नतिके मार्गपर अग्रसर होनेके लिये प्रेरित किया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त पश्चिमवालोमें बहुत से ऐसे गुण है जिन्हे सीखनेकी आवश्यकता है। वहांका इतिहास इस समय एक नया रूप ले रहा है। नये नये विचार उत्पन्न हो रहे है और राजकीय क्षेत्रमें नये नये प्रयोग किये जा रहे है। फ्रान्सकी राज्यक्रान्तिकी घटनाऍ प्रजामे नवजीवनका सञ्चार कर रही है ऐसे समयमें यूरोपकी गतिविधिसे परिचित होकर यहाकी प्रजामे भी आत्मसम्मान ओरस्वावलम्बनका भाव आवेगा। इन सब बातोंके सिवाय दो सभ्यताओके सम्मिलनका आवश्यक परिणाम यह होगा कि वह दोनों हीके रूपोमे देश, काल और परिस्थितिके अनुकूल आवश्यक परिवर्तन कर देगा जिससे उनमें नवजीवन और नवीन स्फूर्तिका सञ्चार होगा। इससे स्पष्ट है कि वे सस्कृतकी शिक्षाके विरोधी न थे, बरन् उनकी प्रबल इच्छा यह थी कि प्राचीन आदर्शोंको व्यावहारिक स्वरूप दिया जाय। इसी उद्देश्यको पूर्तिके लिये उन्होने

देशमे अँगरेजी शिक्षाका आरम्भ कराया और सर्व प्रथम उन्हीके प्रयत्नसे २० जनवरी सन् १८१७ ईसवीको कलकत्तेमें हिन्दूकालेजकी स्थापना हुई।

अँगरेजी शिक्षाके प्रचारमे सहायक होनेवाली दूसरी शक्ति है ईसाई मिशनरियोकी। इनका उद्देश्य था भारतवर्षके लोगोमे ईसाई धर्मका प्रचार करना। भारतवर्ष ऐसे देशमे—जहाँकी सभ्यता बहुत पुराने और ऊचे दरजेकी हो, और जहाँकी सामाजिक रूढियां धर्मका अङ्ग बन गई हों—यह काम अत्यन्त कठिन था। विचारशैलीको परिवर्तित किये बिना यह काम नहीं हो सकता था और विचार शैलीको परिवर्तित करनेका बहुत बडा साधन है शिक्षा। इस कारण ईसाई मिशनरियोंको देशमे नवीन शिक्षा प्रणाली प्रचलित करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। उनके उद्देश्योमे और राजा राममोहनरायके उद्देश्योंमे बडा अन्तर था। राजा राममोहनराय भारतवासियोंको उनके प्राचीन गौरवकी याद दिलाकर उनकी वर्तमान अवस्थामें सुधार करना चाहते थे, ईसाई मिशनरी, भारतवासियोकी तात्कालिक सामाजिक कुरीतियोको सामने रखते हुए उनकी तुलनामें ईसाई धर्मके ऊंचे सिद्धान्तोंको रखकर भारतीयोंको अपने धर्ममें दीक्षित करना चाहते थे। राजा राममोहनराय उनके विचारोमे उदारता लाना चाहते थे, मिशनरी उन्हे सङ्कीर्ण बनाना चाहते थे। राजा राममोहनराय उनके सामने पूर्व और पश्चिम दोनो हीके अच्छे और ऊचे

विचार रखना चाहते थे, मिशनरी पूर्वके अवगुणों और पश्चिमके गुणोंका प्रदर्शन करते थे।

तीसरी शक्ति है सरकारकी जो बहुत सोच विचारके बाद और सबसे अन्तमें इस क्षेत्रमें पदार्पण करती है। जब भारतवर्षमें अँगरेजोका राज्य बढने लगा तब उसके विस्तारके साथ साथ मजबूतीकी ओर भी ध्यान देनेकी आवश्यकता पड़ी। शासनका कार्य बहुत ही कठिन और पेचीदा होता है, उसकी कठिनाइयाँ और गुत्थियाँ उस समय और भी बढ जाती है जब एक देश दूसरे देशपर शासन करना चाहता है। उस समय उसका उद्देश्य यह नही होता—हो नही सकता—कि शासितोंका हित-साधन करे। उसकी निगाह तो केवल इस बातपर रहती है कि किन उपायोंसे हमारा राज्य इनपर कायम रह सकता है। उन उपायोसे यदि शासितोका भी कुछ लाभ हो जाय तो उससे उन्हे ईर्ष्या नही होती, यदि न हो तो उसकी उन्हें चिन्ता भी नही रहती। भारतवर्षका अँगरेजी शासन इस साधारण नियमका अपवाद नहीं हो सकता था। यहाँ भी विदेशी सरकारकी शिक्षा सम्बन्धी नीति केवल एक बातको सामने रख कर निर्धारित होती थी—किस प्रकारकी शिक्षा इस देशपर अँगरेजी शासन जमाये रखनेमें सहायक होगी! आरम्भमें यदि उससे भारतवासियोका कुछ लाभ हुआ तो वह इसलिये नही कि शासकोंका ऐसा उद्देश्य था, बरन् इसलिये कि उन घातक उद्देश्योको पूरा करते हुए भी शिक्षाके

द्वारा उतना लाभ होना अनिवार्य था। यह कहा जा सकता है कि बीच बीचमें सरकारकी शिक्षा सम्बन्धी नीतिमें कुछ ऐसे परिवर्तन हुए है जिनसे प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपसे जनताका लाभ ही हुआ है। किन्तु इसका एक मात्र कारण यह है कि उस समय 'अर्ध तजहि बुध सर्बस जाता' के सिद्धान्तानुसार परिस्थितिकी कूटनीतिक आवश्यकताके सामने सरकारको झुकना पडा। उसने अपनी इच्छा-से शासितोंके हितका खयाल करके ऐसा नही किया बरन् उनकी बढती हुई शक्तिसे अपनी रक्षा करनेका एक मार्ग निकाला।

आरम्भसे अबतकके सरकारकी शिक्षा सम्बन्धी नीतिके इति-हासको तीन भागोंमें बाँटा जा सकता है—पहला अँगरेजी अमलदारी शुरू होनेसे लगाकर सन् १८३३ ईसवी तक, दूसरा सन १८३३ से १८५३ ईसवीतक और तीसरा सन् १८५३ ईसवीके बाद। पहले कालमें ईस्टइण्डिया कम्पनीने (जो कि उस समय यहाँकी सरकार थी) शिक्षाकी ओर कोई ध्यान ही नही दिया,—और जब राज-नैतिक परिस्थितियोंके कारण पार्लमेण्टने उसे इसके लिये मजबूर किया तब वह संस्कृत और फ़ारसी आदिकी शिक्षाको कुछ मदद पहुँचाने लगी। दूसरे कालमें उसने अँगरेजी शिक्षाका प्रचार करना शुरू किया पर सतर्कताके साथ उसके परिणामोकी जाँच करती रही, और तीसरे कालमें इतने दिनोंके अनुभवसे सारा भय छोड कर दृढ़ताके साथ आगे बढने लगी।

सन् १७९२ ईसवीमें पार्लमेण्टमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीको दिये जानेवाले नये चार्टरपर विचार हो रहा था। श्री विल्बरफोर्सने उसमे दो धाराएँ इस आशयकी जोड़नी चाही कि भारतीयोंकी शिक्षाके लिये इङ्गलैण्डसे स्कूल मास्टर भेजे जाय। इसपर कम्पनीके कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सके एक सदस्यने कहा "अपनी बेवकूफीके कारण अभी हम अमेरिकाको अपने हाथोंसे खो बैठे है, अब फिर हिन्दोस्तानके सम्बन्धमे हमे ऐसी गलती न करनी चाहिये।" उस समय इङ्गलैण्डमे भारतवर्षको शिक्षा देने योग्य स्कूल मास्टर थे या नही इस विषयको एक ओर रखते हुए, उपरोक्त डाइरेक्टरकी बातों पर विचार करनेसे अंगरेजोंकी तात्कालिक नीतिपर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अस्तु बीस बरस बीत गये और कम्पनीकी ओरसे इस देशमे शिक्षाका कोई प्रबन्ध नही हुआ। पार्लमेण्टकी ओरसे उसे नया चार्टर मिलनेका समय आया। कम्पनीकी अमलदारी बहुत हद तक फैल चुकी थी। इङ्गलैण्डके व्यापारियोंका एक दल उसकी उन्नतिसे ईर्ष्या करते हुए उसके लाभोंमें हाथ बटानेका प्रयत्न करता आ रहा था। इस दलकी शक्ति बराबर बढती जा रही थी। अतः सन् १८१३ ईसवीमें पार्लमेण्टने भारतीय व्यापारका एकाधिकार कम्पनीके हाथसे छीन लिया। साथ ही यह देखते हुए कि कम्पनी अब शासक हो गई है और उसे शासन सम्बन्धी कार्योंकी ओर भी ध्यान देना चाहिये—पार्लमेण्टने नये चार्टरमें कम्पनीको इस

बातका आदेश दिया कि वह प्रतिवर्ष कमसे कम १ लाख रुपया शिक्षाके काममें खर्च करे। किन्तु वह इस रकमसे अँगरेज़ी विद्यालयोकी स्थापना न करके उसके द्वारा पुरानी परिपाटीके संस्कृत अरबी और फ़रसीके विद्यालयोंकी ही सहायता करती रही। राजाराममोहनरायने इस बातका बहुत प्रयत्न किया कि यह रुपया अँगरेजी स्कूलोके खोलनेमे लगाया जाय पर इसका कोई फल नही हुआ। इतना ही नही वरन् सरकारने ईसाई मिशनरियोको भी इस कामके करनेसे रोका और जिन्होंने धर्म-प्रचारके आवेशमे इस राजाज्ञाकी अवहेलना की उन्हे अँगरेज़ी सल्तनतके बाहर जाना पडा। सरकारका यह रुख़ सन् १८३३ ईसवी तक रहा। इसका प्रधान कारण था क्रान्तिका भय। न जाने लोग इसे किस दृष्टिसे देखे! अँगरेजी शिक्षाके परिणाम स्वरूप कुछ नये विचार तो फैलेंगे ही। उससे यदि लोगोंने यह समझ लिया कि हमारी धार्मिक और सामाजिक रूढियोंपर आघात पहुँचाया जा रहा है, तो इसका प्रतीकार करनेके लिये वे सब कुछ करनेको तैयार हो जायँगे। और विशेषकर जब कि मिशनरियोके द्वारा यह शिक्षा दी जायगी तब तो इसकी और भी अधिक आशङ्का है। अस्तु सरकार इससे खुद तो अलग रही ही, किन्तु मिशनरियोंको भी सख्तीके साथ दबाया। लेकिन राजा राममोहनरायके प्रयत्नसे जो प्रयोग आरम्भ हुआ था उसके आठदस वर्षोंके

अनुभवने सरकारके भयको दूर कर दिया। इन स्कूलों-के अँगरेजीशिक्षा प्राप्त विद्यार्थी अँगरेजोंके विरोधी होनेके बजाय उनके अधिक अनुकूल होने लगे और उनके गुणों और अवगुणों दोनोंका ही अनुकरण करने लगे। कारण स्पष्ट है। अँगरेजी शिक्षा प्राप्त करनेपर उनका पश्चिमके उन्नत देशोंसे परिचय हुआ—वहांके रीति रिवाज और उद्योग धन्धोंका ज्ञान हुआ। उसकी उन्होंने अपनी तात्कालिक सामाजिक अवस्थासे तुलना की। उस समय हिन्दू-समाजमें अनेक तरहकी कुरीतियां प्रचलित थी जिनसे व्यावहारिक जीवन कष्टप्रद हो रहा था। ऐसे समयमें उन्होंने ग्रन्थोंके द्वारा पश्चिमके नवीन सिद्धान्तोंको देखा और कुछ चुने हुए यूरो-पीय लोगोंके संसर्गमें आये। नतीजा यह हुआ कि वे स्वभावतः ही यूरोपियनोंके नवीन ऊंचे सिद्धान्तोंपर मुग्ध होकर उस ओर झुक पडे। निस्सन्देह उस समय हिन्दू समाजकी अवस्था गिरी हुई थी। किन्तु नवशिक्षित भारतीय युवकोंने दोनो देशोंकी तुलना वैज्ञानिक दृष्टिसे नहीं की थी। अपने व्यावहारिक स्वरूपका मुकाबला पश्चिमके सैद्धान्तिक स्वरूपसे किया था। यदि यहांके सिद्धान्तों और आदर्शोंका मुकाबला वहांके सिद्धान्तो और आदर्शोंसे करते तो वे उधर न दौड कर अपने आदर्शोंकी ओर ही दौडे होते। अपने व्यावहारिक जीवनका मुकाबला भी यदि वहांके तत्कालीन व्याव हारिक जीवनसे ही किया होता तो भी उन्हें इतनी अधिक निराशा

न हुई होती। किन्तु उनके सामने एक ओर तो अपना सामाजिक जीवन था जिसके भीतर जीवनका प्रतिक्षण व्यतीत करना पडता था, और दूसरी ओर पश्चिमके सिद्धान्त और चुने हुए व्यक्तियोंका संसर्ग। ऐसी परिस्थितिमे उनका पश्चिमकी ओर झुक पडना, नितान्त स्वाभाविक था। ये भली बुरी सभी बातोंमे पश्चिमके लोगोंका अनुकरण करने लगे और ऐसा करनेमे ही गौरव समझने लगे। इस बहिर्मुखी विवेकहीन प्रवृत्तिको लौटानेका प्रयत्न ब्रह्म समाजके द्वारा हुआ—जिसने प्राचीन भारतीय सभ्यताके सच्चे स्वरूपको कुछ कुछ नयी रीतिसे सामने रखते हुए उस आदर्शकी ओर बढनेका इङ्गित किया। किन्तु अगरेजी शिक्षाके इस परिणामको देखकर शासकोंका भ्रम दूर हो गया उन्होंने देखा कि नवशिक्षित भारतीय युवक सभी बातोंमें हमारे अनुकूल होने लगते हैं। ऐसी परिस्थितिमें देशमें अँगरेजी शिक्षाका प्रचार करनेसे अँगरेजी अमलदारीको न केवल कोई खतरा नही है वरन् इससे उसकी जड मजबूत होगी।

सन् १८३३ मे कम्पनीको पार्लमेण्टकी ओरसे नया चार्टर मिलने का समय आया और इसी समयसे उसने अपनी नीति बदली। सन् १८१३ ईसवी वाला चार्टर भारतसरकारके नवनियुक्त—सर्वप्रथम कानून सदस्य मेकालेके सुपुर्द करके उनकी राय पूछी गई कि तालीमके लिये जो रक़म ख़र्च करनेका उसमें आदेश है वह

अँगरेजी शिक्षाके प्रचारमे लगायी जा सकती है या नही। मेकालेने लिखा कि ऐसा करनेमे कोई कानूनी रुकावट नही है। वास्तवमे मेकालेकी राय किसी कानूनी गुत्थीको सुलझानेके लिये नही ली गई थी बरन् नीतिमे परिवर्तन करनेका वह एक बहाना था। मेकालेकी कानूनी राय सरकारके पिछले वर्षोंके अनुभवका सार थी। उन्होने लिखा 'हमे चाहिये कि कुछ ऐसे लोग तैयार करें जो हमारे और हमारी लाखों प्रजाके बीच दुभाषियेका काम करे। अर्थात् हम उन्हे इस प्रकारका बना दें कि वे रक्त और रगमे तो भारतीय रहें पर रुचि, विचार, नैतिकता और बुद्धिमे पूरे अँगरेज हो जावें।' इसी उद्देश्यको लेकर सरकारने अँगरेजी-शिक्षाप्रचारका कार्य अपने हाथोंमें लिया। शासन सम्बन्धी आवश्यकताएँ भी उसे इस बातके लिये मजबूर कर रही थी। बडे बड़े ओहदोपर तो अँगरेज अफसर नियुक्त होते ही थे, पर छोटी छोटी जगहोपर काम करनेके लिये कम तनख्वाहपर अँगरेजी पढे लिखे लोगोंकी जरूरत थी। सन् १८४४ मे तो गवर्नर-जनरलकी स्पष्ट घोषणा हो गई कि सरकारी नौकरियाँ देनेमे अँगरेजी पढे लिखे लोगोको तरजीह दी जायगी। इस घोषणासे अँगरेजीके प्रचारमे बहुत सहायता मिली।

सन् १८५३ मे कम्पनीको फिर चार्टर देनेका समय आया। सरकारको अँगरेजी शिक्षाका काम अपने हाथमे लिये २० बरस हो चुके थे और अब इतने दिनोंके अनुभवको सामने रखते हुए यह

निश्चय करना था कि आगे इस सम्बन्धमें कौनसी नीति बनी जाय। पार्लमेण्टकी कमेटीके सामने जितनी गवाहियाँ गुजरी, उन सबके बयानसे यही साबित हुआ कि जिस प्रकारसे देशमें अँगरेजी शिक्षा का प्रचार किया जा रहा है वह अँगरेजी राजको कमजोर करनेके बजाय उसे मजबूत करनेमे ही अधिक सहायक होगा। सर चार्ल्स ट्रेवेलियनने कहा 'मुसलमान हमे काफिर समझते है और हिन्दू म्लेच्छ, और दोनों ही को यह धारणा है कि हमने उनके राज्यका अपहरण किया है। अँगरेजी शिक्षासे उनकी विचारशैली परिवर्तित होगी और वे हमे अपना मित्र समझने लगेंगे। जो लोग अपने खयालोंके मुताबिक शासन सुधारकी बात सोचते है, उनका बस चले तो हमे एक हो दिनमे हिन्दोस्तानसे निकाल बाहर करें। वे तो इसके लिये षड्यन्त्र भी करते ही रहते है। किन्तु यदि हम उन्हें अपने विचारोंके अनुकूल बनाते रहेंगे तो शासनसुधारका कार्य धीरे धीरे होगा और कितने दिनोंमें जाकर पूरा होगा यह नही कहा जा सकता।' आगे चलकर उन्होंने यह भी कहा कि 'यह बात अँगरेजी शिक्षाप्राप्त लोगोंके हितके विरुद्ध होगी कि यहां देशी राज्य कायम हो। ऐसा होनेसे उनका ही सबसे पहले नुकसान होगा। वे लूटे जायँगे और जनताका क्रोध उन्हींपर भडकेगा, इसलिये वे हमें नही छोड़ेंगे। इस तरहके लोगोंकी तादाद जितनी ही बढेगी उतनाही हमारे समर्थकों और सहायकोंका दल मजबूत होगा।' और भी जो गवाहियाँ

गुजरी उनसे यह बात स्पष्ट हो गई कि अँगरेजी सलतनतको मज़बूत करनेके लिये अँगरेजी शिक्षाका प्रचार आवश्यक है। अतः १८५४ ईसवीसे सारी दुविधा छोड़कर सरकार इस मार्गपर अग्रसर हुई।

जिस उद्देश्यको सामने रखकर इस कार्यका प्रारम्भ किया गया उसे देखते हुए इस बातपर आश्चर्य करनेका कोई कारण नही है कि इन विद्यालयोसे लाभके बजाय हानि ही अधिक हुई और हो रही है। आजसे १०० बरस पहले जिन देशोंकी साहित्यिक, औद्योगिक और शिक्षा सम्बन्धी अवस्था भारतवर्षकी तत्कालीन अवस्थासे कही गई गुजरी थी वे आज बहुत आगे बढ गये है—उनका साहित्य समुन्नत है, उद्योग धन्धोमें उन्होंने बहुत तरक्क़ी की है, बुद्धि और बलमें ससारके प्रथम श्रेणीके देशोसे वे मुकाबला करते है। पर भारतवर्षके सम्बन्धमें इनमेसे कोई भी बात नही है। नये नये देशोंके लोगोंने नये नये शास्त्रोंकी रचना की, व्यावहारिक दुनियामें नये नये प्रयोग किये और उन्नतिके नये नये मार्ग ढूँढ निकाले। किन्तु भारतवर्षके प्राचीन साहित्यमे अनेक प्रकारके अनुभवों और ज्ञान-भण्डारके होते हुए भी यहाँ कोई उन्नति नही हुई। सन् १९११ ईसवीमे माइरन फेल्प्स नामक एक अमेरिकन शिक्षाशास्त्रीने भारतवर्षकी शिक्षासस्थाओंका भ्रमण करके लिखा था—'यह एक विचित्र घटना है कि बहुत सी बातोंमें पश्चिमके देशोंने किसी सिद्धान्तकी रचना तो नहीं की किन्तु उनपर व्यवहार कर

रहे है लेकिन भारतवर्षके प्राचीन साहित्यमे ऊँचेसे ऊँचे सिद्धान्त भरे पडे हे, पर उनपर व्यवहार नही होता।' यह विदेशी शासनकी विडम्बना है। शिक्षाका मुख्य उद्देश्य यह है कि शिष्यके भीतर जो शक्तियाँ बीजरूपसे अन्तर्हित हों उन्हे विकसित और प्रस्फुटित होनेकी व्यवस्था करे। लेकिन सरकारी शिक्षाप्रणालीमे न केवल इसका ध्यान ही नही रक्खा गया, बरन् ऐसे तरीके बरते गये जिनसे वे शक्तियाँ विकसित होनेके बजाय नष्ट हो जायँ। शिक्षाप्रणाली आरम्भसे अन्त तक अस्वाभाविक रक्खी गई। शिक्षाका माध्यम विदेशी भाषा हुई जिसका समुचित ज्ञान प्राप्त करनेमे ही जीवनके अत्यन्त अधिक महत्वपूर्ण अंश–बाल्यावस्था और कुमारावस्था–का अधिकांश समय चला जाता है। भारतीय संस्कृति तथा रीतिनीति आचार मर्यादाकी ओर शिक्षाक्रममें कोई ध्यान ही नही दिया गया। उक्त अमेरिकन शिक्षाशास्त्रीने लिखा है कि 'इस देशके स्कूलोंमें जानेके पहिले मुझे आशा थी कि बालकोमे हिन्दू चरित्र और हिन्दू वातावरणका कोई ऐसा आभास मिलेगा जिससे मै जान सकूंगा कि हिन्दोस्तानमें हूँ। पर मुझे निराश होना पडा। लडकोको शेक्सपीयर, मिल्टन, स्पेन्सर आदिकी किताबें तो रटाई जाती है पर दीवारो पर हिन्दू ग्रन्थोका एक वाक्य तक लिखा हुआ नजर नही आता देखने वालेको यही मालूम होता है कि हिन्दोस्तानियोंको अँगरेज बनाया जा रहा है।' ऐसी परिस्थितिमे यह स्वाभाविक

था कि इन विद्यालयोंसे शक्ति सम्पन्न, सदाचारी, भारतीय संस्कृतिके अभिमानी विद्वान् नागरिकोंकी अपेक्षा विदेशी सरकारकी आवश्यताओंको पूरा करने वाले कर्मचारी अधिक मात्रामें उत्पन्न होते।

किन्तु इन पंक्तियोका यह तात्पर्य कदापि नही है कि पश्चात्य सभ्यता और विज्ञानकी शिक्षा भारतवर्षके लिये सर्वथा घातक साबित हुई है या उसका यहाँके लिये कोई उपयोग या महत्व नही है। उसमे बहुत सी ऐसी बातें है जिन्हें सीखकर हिन्दोस्तानको लाभ हुआ है और होता रहेगा। राजा राममोहनरायने तो इसी उद्देश्यसे देशमें इसका प्रारम्भ कराया था। किन्तु उनके जीवनके साथ साथ शिक्षाके सम्बन्धमे इस महान् उद्देश्यका भी लोप होगया। शासकोंने अपने स्वार्थकी पूर्तिके लिये नयी रीतिसे उसका प्रचार करना शुरू किया और उनका उद्देश्य सफल हुआ। सरकारी शिक्षा प्रणालीके हिमायती यह दिखलानेका प्रयत्न करते हैं कि देशके धार्मिक सामाजिक राजनैतिक और वैज्ञानिक क्षेत्रमें आज ऐसे लोग मौजूद है जिनपर कोई भी देश अभिमान कर सकता है, और इन सब लोगो की शिक्षा उन्ही विद्यालयोमें हुई थी। इस बात की सचाईमे किसीको सन्देह नही हो सकता। किन्तु ऐसे लोगोंने जो कुछ भी उन्नति की है वह उस शिक्षा-प्रणालीके कारण नही बरन अपनी शक्तिसे उसकी बुराइयोका प्रतीकार कर सकनेके कारण।

'कलकत्ता विश्वविद्यालय कमीशन १९१७-१९' के सम्मुख श्री जानवुडरफ़ने जो 'मेमोरेण्डम' भेजा था उसमे आपने लिखा है—

"दुनियां की कोई भी वस्तु ऐसी नही है जिसमें केवल बुराई ही बुराई हो। इस दृष्टिसे विचार करते समय मुझे दिखाई देता है कि इस शिक्षासे कुछ लाभ हुए हैं। किन्तु जब इस विषय पर मै पूर्णतया विचार करता हूँ तब मै इसी नतीजेपर पहुँचता हूँ कि इससे नुकसान भी बहुत हुआ है। ऐसी अस्वाभाविक अवस्थामें और हो ही क्या सकता था? गलत तरीकेकी शिक्षासे शारीरिक और मानसिक शक्तिका अपव्यय होनेके अलावा नैतिक शक्तिका भी ह्रास होता है। उससे अस्थिरता उत्पन्न होती है जिसके कारण कुछ लोग तो मारकाटके लिये उत्तेजित होने लगते है और कुछ लोगोंके मनमें इस तरहका अन्तर्द्वन्द उठने लगता है कि वह उनके लिये घातक साबित होता है। साधारण स्थितिके बहुतसे लोगोमें केवल अनुकरण करने और दबे रहनेकी आदत पड जाती है। विद्यार्थियों पर इस शिक्षाका असर यह हुआ कि उनकी राष्ट्रीय विशेषतायें नष्ट होगई और उनकी सभी तरहकी शक्तियां कुण्ठित होगईं।

"यदि इस शिक्षाप्रणालीके सभी घातक असर अभी तक प्रगट नही हुए है तो उसका कारण यह है कि राष्ट्रीय शक्तिने अपने ऊपर किये जानेवाले प्रहारोका—जिनकी सख्या और जिनके आघा-

तकी तीव्रता इधर कुछ वर्षोंसे बढती गई है– प्रतीकार करते रहनेकी सतत चेष्टा की है।"

किन्तु यदि सरकारका उद्देश्य अच्छा भी होता, वह यदि अपनी राजनैतिक आवश्यकताओका ही खयाल करके शिक्षाप्रणालीका निर्माण करने न बैठती, और वास्तवमे भारतीयोको शिक्षित करने की योजना बनाती तो भी क्या एक देशके लोगोंके लिये यह कभी सम्भव होता कि वह दूसरे देशके मनुष्योंके लिये उचित प्रकारकी शिक्षाकी व्यवस्था कर सकें—और वह भी ऐसी स्थितिमें जब कि दोनोंकी सस्कृतिमें बहुत बडा अन्तर हो! शिक्षाका उद्देश्य है आन्तरिक शक्तिको विकसित करना। इसके लिये परिस्थितिके अनुसार भिन्न भिन्न देशोंके लिये भिन्न भिन्न प्रकारकी व्यवस्था आवश्यक है। जिस प्रकार भिन्न भिन्न प्रकारके जलवायु वाले दो स्थानोंमें उत्पन्न होने वाली वस्तुओके पोषणके लिये भिन्न भिन्न प्रकारकी प्रक्रिया करनी होती है, उसी प्रकार सस्कृति और परम्पराकी भिन्नताके साथ साथ शिक्षाकी परिपाटीमें भी अन्तर करना होगा। उपरोक्त मेमोरैण्डममे श्री जान वुडरफने आगे कहा है—

"हमें इतना तो मानना ही पडेगा कि भारतवासियोंकी राष्ट्रीय विशेषताओंमें बहुत बल है। इसी बलके कारण वे उतनी आफतोंका मुक़ाबला कर सके हैं जितनी आफतोका मुक़ाबला दुनियांके किसी देशने नही किया है। इस बातकी जांच करनेकी आवश्यकता नही है

कि पूर्व और पश्चिमकी सभ्यताओमे कोन अच्छी और ऊँची है। यह तो मानना ही पडेगा कि भारतवर्षके लोगोके लिये वह भारतीय सभ्यता ही अच्छी है जिसका विकास उनके पूर्वजोके समयसे होता आ रहा है। हमे यह नही चाहिये कि अपने धार्मिक अथवा राजनैतिक विश्वासोंको प्रत्यक्ष रूपसे या परोक्ष रूपसे उन लोगोपर लादें जिनके लिये वह बिलकुल असङ्गत है। हमे सच्चे भारतीय देश भक्तके इस दावेको मजूर करना चाहिये कि पाठ्यक्रममे भारतीय भाषा, इतिहास, साहित्य-कला, दर्शन, धर्म, संस्कृति और आदर्शोंको प्रथम स्थान मिलना जरूरी है।"

सरकारी शिक्षा पद्धतिमें देशकी आर्थिक और औद्योगिक शिक्षा-सम्बन्धी आवश्यकताओकी जैसी अवहेलना की गई है उसका उदाहरण किसी भी स्वतन्त्र देशके इतिहासमे नही मिलेगा। समाजका आर्थिक सङ्गठन किस प्रकारका है और उसकी उन्नतिके लिये किस प्रकारकी औद्योगिक शिक्षाका प्रबन्ध होना चाहिये—इसका कुछ भी खयाल नही किया गया। प्राकृतिक सम्पत्तिकी प्रचुरता होते हुए भी ऐसे विद्यालय नही खोले गये जहाँ उनका उपयोग करनेकी शिक्षा मिल सके। देश कृषिप्रधान है, किन्तु शिक्षाकी योजनामे कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओको स्थान नही है।

स्त्रियोंकी शिक्षाका तो कोई प्रबन्ध ही नहीं किया गया। यहांकी परिस्थितिके अनुकूल उनकी शिक्षासम्बन्धी योजनामे जो विशेषताए

होनी चाहिये थी, वे तो रक्खीही नही गई, साधारण विद्यालयोंमें भी ऐसी सुविधाए नहीं की गईं जिनसे वे वहा जाकर शिक्षित हो सके। आज स्त्रियो और पुरुषोकी शिक्षा सम्बन्धी अवस्थामे जितना भयानक वैषम्य इस देशमें पाया जाता है वैसा शायद ही दुनियांके किसी और देशमें हो।

दूसरा अध्याय

राष्ट्रीय शिक्षाका आरम्भ और प्रसार।

कल कारखानों और उद्योग धन्धोंकी दृष्टिसे यूरोपीय देशोंके लिये नवीन युगका आरम्भ तो १५ वी १६ वी शताब्दीसे ही होता है। किन्तु शिक्षा साहित्य, विज्ञान और कलाके क्षेत्रमे उन्नीसवीं शताब्दीसे सारे संसारमें नये आविष्कार और नये प्रयोग बढ़ने लगे। भारतवर्षकी नवीन जागृति भी इसी शताब्दीमे आरम्भ होती है। इसी समय नये नये धार्मिक और सामाजिक सुधार आरम्भ हुए और आगे चल कर नये प्रकारका राजनैतिक आन्दोलन भी चला। शिक्षाका इन सबसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन सब आन्दोलनोके साथ साथ शिक्षापद्धतिके सुधारका आन्दोलन भी चला। किन्तु संसारके स्वतन्त्र देशोंके और इस देशके शिक्षा-सुधार आन्दोलनोमे बडा अन्तर है। स्वतन्त्र देशोंने शिक्षाके क्षेत्रमे नये नये प्रयोग किये और वैज्ञानिक दृष्टिसे शिक्षाका स्वरूप और प्रकार निश्चित करनेका प्रयत्न किया। किन्तु भारत-

वर्षमें यह सम्भव न था। यहाँ एक विदेशी राजसत्ता कायम थी जो अपने अधिकारोंको अधिकसे अधिक स्थायी बनानेके उद्देश्यसे प्रत्येक कार्यका नियमन करती थी। शिक्षा-प्रणाली भी इसी उद्देश्य-को सामने रखकर निश्चित की गई थी। ऐसी अवस्थामे इस देशमे शिक्षाके स्वतन्त्र प्रयोगोका होना असम्भव था। पहला कार्य तो यही हो सकता था कि देशमे ऐसी सस्थाएँ कायम की जायँ जिनमे सरकारी शिक्षा संस्थाओंकी बुराइयाँ न हो। वैज्ञानिक और औद्यो-गिक दृष्टिसे देश बहुत पिछडा हुआ था। परवशताके कारण नये वैज्ञानिक आविष्कारोका इस देशमे होना ही असम्भव हो गया था। संसारकी प्रगतिसे परिचित रहनेका एक मात्र मार्ग यही था कि यहाँकी पाठशालाओंमें पश्चिमके साहित्य और विज्ञानकी शिक्षा दी जाय। यहाँ तक तो सरकारी विद्यालयोकी उपयोगिताके सभी क़ायल थे। किन्तु उसकी अन्य बुराइयाँ बहुत भयानक थी। अस्वाभाविक पद्धतिके कारण विद्यार्थियोकी शारीरिक, मान-सिक और नैतिक शक्तिका ह्रास होता था, उनकी राष्ट्रीय विशेष-ताएँ नष्ट हो जाती थी। नतीजा यह होता था कि पश्चिमके विज्ञान और साहित्यका ज्ञान उनकी अवस्थाको सुधारनेमे कोई मदद नही कर सकता था। अतः आरम्भमें ऐसी सस्थाओंका उदय हुआ जहाँ शिक्षाका पाठ्यक्रम तो अधिकतर सरकारी विद्यालयोसा ही रहता था, किन्तु रीतिनीति और आचार-व्यवहारकी पद्धति भार

तीय आवश्यकताओके अनुकूल रक्खी जाती थी। लेकिन आगे चलकर इस मार्गमे भी बाधाएँ आई। अनुभवसे यह मालूम हुआ कि सरकारी नियन्त्रणके भीतर रहते हुए विद्यालयोंकी रीतिनीतिमे भी अपनी इच्छानुसार नवीनता ला सकना असम्भव है। तब सरकारी नियन्त्रण और निरीक्षणसे स्वतन्त्र होकर शिक्षाका प्रयोग करने वाली सस्थाएँ स्थापित हुई। ज्यो ज्यो राष्ट्रीय शक्ति बढती गई और राष्ट्रीयताके भावोका विकास होता गया त्यो त्यो राष्ट्रीय शिक्षा-सस्थाओंका रूप भी बदलता गया।

राष्ट्रीय शिक्षाके इतिहासको मोटे तौरपर तीन भागोमे बांटा जा सकता है—पहला सन् १८७५ ईसवीसे १६०० तक, दूसरा सन् १६०० से १६२० तक और तीसरा सन् १६२० ईसवीसे चल रहा है। पहले कालमें जो सस्थाएँ स्थापित हुई उन्होने सरकारके नियन्त्रणमें रहते हुए अपनी शिक्षाप्रणालीमे उतना सुधार करनेका प्रयत्न किया जितना सुधार वह कर सकती थी। इनमें अलीगढके मोहेमडन ऐङ्गलो ओरियएटल कालेज, पूनेके न्यू इँगलिश स्कूल, लाहौरके दयानन्द ऐङ्गलो वैदिक कालेज और काशीके सेण्ट्रल हिन्दूकालेजके नाम गिनाये जा सकते है। इसी कालमें स्त्रीशिक्षाके लिये जालन्धरमे कन्या महाविद्यालय और पूनेके समीप हिंगणेमे अनाथबालिकाश्रमकी स्थापना हुई जिन्होने धीरे धीरे इतनी उन्नति की कि आज वे देशकी प्रथम कोटिकी शिक्षासस्थाओंमें गिने जाते है। किन्तु ये दोनो ही

संस्थाएँ आरम्भसे ही सरकारी नियन्त्रणके बाहर है। इनके अतिरिक्त पहिले कालमे जितनी संस्थाएँ स्थापित हुई उनके अनुभवसे यह साबित हुआ कि सरकारी नियन्त्रणमे रहते हुए शिक्षाप्रणालीमे समुचित सुधार कर सकना असम्भव है अत दूसरे कालमे ऐसी संस्थाओं का उदय हुआ जो सरकारी नियन्त्रणसे पूर्णतया स्वतन्त्र थी। इनमे कलकत्तेके बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षापरिषद् (नेशनल कौंसिल आफ ऐजुकेशन, बङ्गाल), पूनेके समीप तलेगावके समर्थ विद्यालय, और वृन्दावनके प्रेम महाविद्यालय तथा कांगडी और वृन्दावनके गुरुकुलो के नाम गिनाये जा सकते है। इसी कालमे कविवर रवीन्द्रनाथने शान्ति-निकेतनमें एक पाठशालाकी स्थापना की जिसने आज 'विश्व भारती' का रूप धारण कर लिया है। किन्तु इसकी स्थापना शिक्षाके सम्बन्धमे स्वतन्त्र प्रयोग करनेके उद्देश्यसे हुई थी। तीसरा काल असहयोग आन्दोलनके साथ आरम्भ होता है। इस कालमे जितनी संस्थाएँ स्थापित हुई वे सब सरकारी नियन्त्रणसे स्वतन्त्र रही। दूसरे कालमे इस तरहकी केवल थोडीसी संस्थाएँ क़ायम हुई थी, किन्तु इस कालमे वे देश भरमें फैल गई। इन सबके अतिरिक्त थियासोफिकल सोसाइटीके लोगोंने भी इस क्षेत्रमे काम किया है। काशीके सेण्ट्रल हिन्दू कालेजकी स्थापनामे अधिकांश उन्हीका हाथ था। मद्रासमे भी उन्होने कुछ संस्थाएँ कायम की जो अबतक चल रही है। अन्य स्थानोपर भी थियासोफिकल नेशनल

स्कूल है। किन्तु इन सबके द्वारा सरकारी विश्वविद्यालयोंकी परीक्षाके लिये ही विद्यार्थी तैयार किये जाते हैं। सुना जाता है कि आजकल वे लोग शिक्षाके एक बृहत् आयोजनपर विचार कर रहे हैं जिसके अनुसार उत्तर और दक्षिण भारतमें ऐसी संस्थाएँ स्थापित की जायँगी जहाँ शिक्षाके सम्बन्धमें विशेष प्रकारके प्रयोग किये जायँ।

पहला काल—सन् १८७५–१९०० ईसवी।

ऊपर जिसे राष्ट्रीय शिक्षाके इतिहासका पहला काल कहा गया है उसमें सरकारी विद्यालयोंसे भिन्न प्रकारकी जितनी संस्थाएँ स्थापित हुईं उनमें चार मुख्य हैं—अलीगढ़का मोहेमडन ऐङ्गलो ओरियण्टल कालेज, पूनेका न्यू इंगलिश स्कूल, लाहौरका दयानन्द ऐङ्गलोवैदिक कालेज और काशीका सेण्ट्रल हिन्दू कालेज। अलीगढके कालेजको स्थापित करनेमें मुख्य भाग सर सय्यद अहमदका था। आरम्भसे ही आप अंगरेज़ी शिक्षाके पक्षपाती थे। पहले पहल आपने सन १८६१ ईसवीमें मुरादाबादमें एक अंगरेजी स्कूल कायम किया जो आगे चलकर डिस्ट्रिक्टबोर्डस्कूलमें मिला दिया गया। सन् १८६४ ईसवीमें गाजीपुरके अंगरेज़ी स्कूलकी नींव भी, जो आजकल विक्टोरिया स्कूल कहलाता है, आप हीके हाथोंसे रक्खी गई। किन्तु सन् १८६६–७० ईसवीमें इङ्गलैण्डकी यात्रासे लौटनेके बाद

आपने इस ओर विशेष रूपसे ध्यान दिया। अनेक कारणोंसे अबतक मुसलमान लोग अँगरेजी शिक्षासे बचते आ रहे थे। उनके मनमें राजनैतिक कारणोंसे प्रत्येक अँगरेजी वस्तुके प्रति घृणाका भाव होना तो स्वाभाविक ही था, किन्तु विचार-सङ्कीर्णताके कारण वे पाश्चात्य विज्ञान और साहित्यका अध्ययन करना भी धर्मविरुद्ध समझते थे। इसके अतिरिक्त सबसे बडा डर उन्हे यह था कि अँगरेजी स्कूलोमें पढकर मुसलमान लडके अपना मजहब और अपनी तहजीब छोडकर ईसाई होने लगेंगे। बङ्गालका उदाहरण उनके सामने था। सर सय्यद अहमदने देखा कि पाश्चात्य विज्ञान और साहित्यके सम्पर्कमे आये बिना मुसलमानोकी उन्नति हो नही सकती। इसके लिये उन्होने कैम्ब्रिज और आक्सफोर्डके आदर्शपर एक विद्यालय कायम करना चाहा। किन्तु उसकी सफलताके लिये दो बातें आवश्यक थी-एक तो मुसलमानोको विचार सङ्कीर्णताको दूर करना और दूसरे विद्यालयका वातावरण ऐसा रखना जिससे वहाँ मुसलमान विद्यार्थियोके उपयुक्त धार्मिक और नैतिक शिक्षाका प्रबन्ध रहे ताकि अपने धर्म और सभ्यताको छोडकर उनके ईसाई होनेका भय जाता रहे। पहले उद्देश्यकी पूर्ति—अर्थात् मुसलमानोंकी विचार सङ्कीर्णताको दूर करने—के लिये उन्होने समाज सुधारका काम अपने हाथमें लिया और सामाजिक कुरीतियो तथा रूढियोंके खिलाफ़ प्रचार करने लगे। इसके लिये उन्होने 'तहजीबुल अख़-

लाक्' (समाज-सुधारक) नामक एक मासिकपत्र भी निकाला। दूसरे उद्देश्यकी पूर्तिके लिये उन्होने कालेजकी जो योजना बनाई उसमे मुसलमान विद्यार्थियोकी धार्मिक और नैतिक शिक्षाको समुचित स्थान दिया और इस बातका प्रयत्न किया कि मुसलमानोकी शिक्षा पूर्णतया मुसलमानोके ही हाथोमे रहे। आखिर सर सय्यद अहमद्के अनवरत प्रयत्नोने तारीख २४ मई सन् १८७५ ईसवीको अलीगढके मोहमडन ऐङ्गलोओरियण्टल कालेजका रूप धारण किया। सन् १८७६ से आप स्वतः कालेजमे रहकर उसकी देखभाल करने लगे। मुसलमानोकी शिक्षासम्बन्धी समस्यापर गम्भीरता पूर्वक विचार करने और तदनुसार देश भरमे शिक्षाका प्रचार करनेके उद्देश्यसे आपने सन् १८८६ ईसवीमे 'मोहेमडन एजुकेशनल कान्फरेन्स' की स्थापना की। आजतक इसके अधिवेशन प्रति वर्ष हुआ करते है।

राष्ट्रीय शिक्षाका दूसरा प्रयत्न पूनेमें हुआ और उसका श्रेय श्री विष्णुशास्त्री चिपलूणकर तथा लोकमान्य तिलकको है। श्री विष्णुशास्त्री चिपलूणकर देशकी राजनैतिक अवस्था और राष्ट्र-निर्माणके विधायक उपायोपर गम्भीरता पूर्वक विचार करते थे। राष्ट्रका भविष्य देशके शिक्षित समाजपर ही निर्भर है। किन्तु उन्होने देखा कि वर्तमान सरकारी विद्यालयोके द्वारा इस दृष्टिसे बडा अनर्थ किया जा रहा है। इन विद्यालयोंकी सख्या दिन ब दिन बढती जाती है। उनके द्वारा जो विद्यार्थी निकलते है उनमे ज्ञानकी

मात्रा भी बढी हुई रहती है किन्तु स्वाभिमान और स्वदेश-प्रेमका उनमें नाम भी नही रहता। सरकारी विद्यालयोके विद्यार्थियोके मनमें अपने ऐतिहासिक पुरुषोके लिये गौरवका होना तो सर्वथा असम्भव है। देशके सच्चे इतिहासका उन्हे कोई ज्ञान नही होता। वाशिंगटन और नैपोलियन आदिके जीवन वृत्तान्तोको पढकर उनमे स्फूर्ति आती है। किन्तु अपने देशके इतिहासके ऐसे वीरोका उन्हे पता ही नही चलने पाता। नतीजा यह होता है कि अपने राष्ट्रके लिये गौरवका भाव उनके मनमें रह ही नहीं जाता। सरकारी विद्यालयों की इन कुरीतियोको दूर करते हुए उचित रीतिसे स्वदेशप्रेम और स्वदेशाभिमानका भाव भरने वाली शिक्षा देनेके उद्देश्यसे पूनेमे तारीख १ जनवरी सन् १८८० ईसवीको न्यू इङ्गलिशस्कूलकी स्थापना हुई। आरम्भमें इसमे केवल तीन शिक्षक थे—श्री विष्णुशास्त्री चिपलूणकर, लोकमान्य तिलक और श्री माधवराव नामजोशी। धीरे धीरे इसमें और लोग भी शामिल होते गये और इन सबने मिलकर तारीख २४ अक्टूबर सन १८८४ ईसवीको 'डेकन एजुकेशनल सोसाइटी' की स्थापना की और न्यू इङ्गलिश स्कूल उसकी मातहतीमें रक्खा गया। आगे चलकर फर्ग्यूसन कालेज भी इसीके अन्तर्गत खोला गया।

तीसरा प्रयत्न आर्यसमाजसे सम्बन्ध रखता है और पञ्जाबमें आरम्भ हुआ। स्वामी दयानन्द सरस्वतीने हिन्दूसमाजमे एक

क्रान्ति पैदा कर दी थी। उनके उपदेशोंसे समाजके सभी क्षेत्रोंमें नवीन विचारधारा प्रवाहित हो रही थी। सत्यार्थप्रकाशमें उन्होंने शिक्षापद्धतिपर भी अपने विचार प्रकट किये हैं। किन्तु उन आदर्शोंके अनुसार कोई शिक्षासंस्था स्थापित कर सकनेके पहिले ही सन् १८८३ ईसवीमें उनका देहान्त हो गया। इसके अनन्तर स्थान स्थानपर जितनी शोक सभाएँ हुईं उन सबमें स्वामीजीके स्मारक स्वरूप एक शिक्षालयकी स्थापनाका विचार आया। (९ नवम्बर १८८३ को) लाहौरकी सभामें इस कार्यके लिये लगभग सात आठ हजार रुपये भी एकत्र हो गये और आगे चलकर 'दयानन्द ऐंग्लो-वैदिक कालेज इन्स्टिट्यूशन' की स्थापना हुई। इसके उद्देश्य ये रक्खे गये—

१ स्वामी दयानन्द सरस्वतीकी स्मृतिमें पञ्जाबमें एक ऐङ्गलो-वैदिक कालेजकी स्थापना करना जिसके द्वारा--

(क) हिन्दू साहित्यके अध्ययनका प्रबन्ध हो और उसकी उन्नति और सुधारका प्रयत्न किया जाय।

(ख) प्राचीन संस्कृत और वेदोंकी शिक्षाकी व्यवस्था की जाय।

(ग) अँगरेजी साहित्य और, विज्ञानकी शिक्षाका प्रबन्ध किया जाय।

२ दयानन्द ऐङ्गलो वैदिक कालेजमें कलाकौशल सम्बन्धी शिक्षाकी व्यवस्था करना।

इस इन्स्टिट्यूशनके द्वारा पहले सन् १८८६ ईसवीमें एक स्कूल खुला। बादको सन् १८८६ ईसवीमें कालेज खोला गया। आरम्भसे ही लाला हसराज इस संस्थाके प्राण रहे है। इसके सञ्चालनमे इस बातका ध्यान रक्खा गया कि प्रबन्ध और शिक्षा सम्बन्धी कार्य हिन्दुओके ही हाथोंमे रहे। इसके सस्थापक चाहते तो यह भी थे कि शिक्षा नि.शुल्क हो, लेकिन आर्थिक कठिनाइयो और विश्वविद्यालयोके नियमोके कारण ऐसा न हो सका। फिर भी यहांका शुल्क सरकारी विद्यालयोंसे कम था। विद्यालयमें स्वामी-दयानन्दकी शिक्षाके अनुसार आर्य सस्कृतिकी रक्षा पर विशेष जोर दिया जाता था।

चौथा प्रयत्न काशोमे हुआ जिसमे थियासोफिकल सोसाइटीके सदस्योका भाग मुख्य था। फलतः तारीख ७ जुलाई सन् १८६८ ईसवीको सेण्ट्रल हिन्दू कालेजकी स्थापना हुई। इसके प्रथम वार्षिको-त्सवके अवसरपर कालेजके उद्देश्योपर प्रकाश डालते हुए श्रीमती एनी बीसेण्ट (अब डाक्टर एनीबीसेण्ट) ने कहा 'यह कालेज सर-कारी विद्यालयोंके विरोधमे स्थापित नही हुआ है। हमने तो केवल उस क्षेत्रको अपनाया है जो अबतक ख़ाली पडा था। बार बार सरकारने कहा है कि हिन्दुओंको अपनी धार्मिक शिक्षा अपने हाथो-मे लेनी चाहिये। हमने उसी सलाहकी पाबन्दी की है। हम चाहते है कि इस कालेजके द्वारा पश्चिमके साहित्य और विज्ञानकी ऊँचीसे

ऊँची शिक्षाके साथ पूर्वीय देशोंकी ऊँचीसे ऊँची धार्मिक शिक्षा दी जाय। इसके द्वारा सस्तेमें शिक्षा देनेका प्रयत्न किया जाता है पर वह शिक्षा केवल विद्यार्थियोंके लिये ही सस्ती है। शिक्षा देने वालोंको तो वह बहुत मँहगी पड़ती है। यहांके शिक्षक बड़े त्याग और गरीबीका जीवन व्यतीत करते हैं।'

इन सबके अतिरिक्त स्त्रियोंकी शिक्षाके लिये भी दो संस्थाएँ कायम हुईं—पहला जालन्धरका कन्या महाविद्यालय और दूसरा पूनेके समीप हिंगणेका अनाथ बालिकाश्रम। कन्या महाविद्यालय का आरम्भ सन् १८८६ ईसवीके सितम्बर महीनेमें एक छोटेसे 'जनानास्कूल' के रूपमें हुआ था। बढ़ते बढ़ते १५ जून सन् १८९६ ईसवीको उसने कन्या महाविद्यालयका रूप धारण किया। सरकार की ओरसे लड़कियोंकी शिक्षाका कोई विशेष प्रबन्ध नहीं था। इस विद्यालयका उद्देश्य यही था कि लड़कियोंको ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वे योग्य और सुशिक्षिता गृहिणी बन सकें। परदेकी प्रथा और सामाजिक रूढियोंके कारण विद्यालयके अधिकारियोंको अनेक तरहकी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। अन्तमें इसके संस्थापक लाला देवराजके प्रयत्नोंको सफलता मिली और आज यह विद्यालय एक उच्चकोटिकी शिक्षा-संस्था है। हिंगणेका अनाथ बालिकाश्रम अनाथ विधवाओंको आश्रय देने और उन्हें शिक्षा देकर स्वावलम्बी बनानेके उद्देश्यसे सन् १८९६ ईसवीमें खोला गया था।

इसके संस्थापक आचार्य कर्वेके प्रयत्नोसे इसकी बराबर उन्नति होती गई और सन् १६०६ ईसवीमे सधवा स्त्रियों तथा कुमारी बालिकाओकी शिक्षाके लिये इसके साथ एक महिलाश्रम भी खोला गया। सामाजिक रूढियोंके कारण इस संस्थाके अधिकारियोको भी अनेक प्रकारकी कठिनाइयोका सामना करना पडा। अन्तमे उनकी विजय रही और यह कहा जा सकता है कि पूनेका 'श्रीमती नाथी-बाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ' इसीका विकसित स्वरूप है।

इस प्रकार स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी विद्यालयोको छोडकर जितनी संस्थाएँ इस कालमे स्थापित हुईं उनका मुख्य प्रयत्न यही था कि सरकारी विद्यालयोमे जो पाठ्यक्रम प्रचलित है उसके अतिरिक्त धार्मिक और नैतिक शिक्षाका प्रबन्ध करें और शिक्षाकी पद्धतिमें कुछ सुधार करें। दयानन्द ऐंग्लोवैदिक कालेज और सेण्ट्रल हिन्दूकालेज धार्मिक और नैतिक शिक्षापर विशेष जोर देते थे, और न्यू इंगलिश स्कूलमे शिक्षणपद्धतिकी ओर ध्यान दिया जाता था। किन्तु अलीगढके कालेजकी अवस्था इन सबसे कुछ भिन्न थी। इसके स्वरूपमे औरोके साथ यह समानता अवश्य थी कि यहाँ मुसलमानोकी धार्मिक और नैतिक शिक्षाका प्रबन्ध था। किन्तु इसके कारण भिन्न थे। अबतक जितने सरकारी विद्यालय स्थापित हुए थे उन सबमे अधिकतर हिन्दुओके ही लडके पढ़ते

थे। इतने दिनोंके अनुभवसे उन विद्यालयोंकी बुराइयोंसे विद्यार्थियोंको बचानेके लिये और अपने धर्म तथा आचार व्यवहारकी शिक्षा देनेके लिये हिन्दुओंकी संस्थाएँ स्थापित हुई। लेकिन मुसलमान अबतक सरकारी विद्यालयोंसे प्राय: अलग ही रहे थे। उन्हे स्वतः इन विद्यालयोंसे कोई हानि लाभ नही हुआ था। सर सय्यद मुसलमानोंको पाश्चात्यविज्ञान और अँगरेजी साहित्यकी शिक्षा दिलाना चाहते थे। अतः उनके मनसे, बालकोंके ईसाई हो जानेका भय दूर करनेके लिये उस कालेजमे धार्मिक शिक्षाकी व्यवस्था की और उसका पूरा प्रबन्ध मुसलमानोके हाथमें रक्खा गया।

इस स्थलपर एक बात विचारणीय है। इस अवधिमे संयुक्त प्रान्त, पञ्जाब, और महाराष्ट्रमे तो नवीन प्रकारको संस्थाएँ स्थापित हुईं, किन्तु बङ्गाल और दक्षिणभारतमें एक भी ऐसी संस्था कायम न हुई। अँगरेजी शिक्षाका प्रचार बङ्गालसे ही प्रारम्भ हुआ था और नव शिक्षितोंकी संख्या भी वहीं अधिक थी। इसलिये प्रचलित शिक्षा पद्धतिसे जो हानि होती थी वह भी, वहाँ वालोंको अधिक उठानी पडी। फिर भी अन्य प्रान्तोंकी भाँति वहाँ ऐसी संस्थाएं स्थापित नही हुई जो हिन्दू धर्म एवम् आचार विचारकी शिक्षाका प्रबन्ध करती। इसके दो मुख्य कारण हैं—एक तो यह कि बंगालका धार्मिक आन्दोलन अन्य प्रान्तोंके धार्मिक आन्दोलनोंसे भिन्न प्रकारका था और दूसरे यह कि कलकत्ता विश्वविद्यालयकी

रचना और कार्यप्रणाली कुछ इस तरहकी थी कि उसके द्वारा शिक्षापद्धतिमें थोडे बहुत सुधार किये जा सकते थे। भारतवर्षका सबसे पहला धार्मिक आन्दोलन ब्रह्म समाज था जो बङ्गालमें शुरू हुआ और जिसका वहाँके शिक्षित समाजपर बहुत प्रभाव था। इसमे और आर्यसमाज प्रभृति अन्य आन्दोलनोंमे एक मुख्य भेद यह था कि यह प्राचीन भारतीय संस्कृतिपर ही विशेष ज़ोर न देकर अपने सिद्धान्तोंका स्वतन्त्र रूपसे प्रतिपादन करता था। जिन जिन धर्मग्रन्थोंसे उन सिद्धान्तोका समर्थन होता था उन सबके उतने अशोंको वह मानता था। किसी विशेष ग्रन्थको अपौरुषेय अथवा धर्मका मूल आधार माननेके लिये वह तैयार न था। इस समाजने हिन्दुओंको ईसाई बननेसे रोकनेका प्रयत्न अवश्य किया लेकिन ईसाई धर्मके अच्छे सिद्धान्तोंको स्वय भी स्वीकार किया। आचार व्यवहार आदिके सम्बन्धमे किसी विशेष पद्धतिपर जोर न देकर जहाँ जो बात अच्छी मालूम हो उसे ही अपनानेकी प्रेरणा की। नतीजा यह हुआ कि ब्रह्मसमाजकी स्थापनाके बाद यहाँके शिक्षित समाजने इस नवीन धर्ममे दीक्षित होकर ईसाइयोंके अनेक प्रकारके आचार विचारोंको भी अपनाया। उसे प्राचीन भारतीय संस्कृतिसे उस प्रकारका प्रेम न रहा जिस प्रकारका उत्तर भारतमें आर्यसमाज की स्थापनासे उत्पन्न हुआ। अतः यहाँ ऐसे विद्यालयोंकी स्थापना नहीं हुई जिनमें हिन्दू धर्म और आचार व्यवहारकी शिक्षापर जोर

दिया जाता। दक्षिण भारतमे किसी संस्थाके उदय न होनेका कारण यह था कि वहाँ अँगरेजी शिक्षाके कुपरिणाम उतने उग्र रूपमें प्रगट नही हुए थे। संस्कृत साहित्य और हिन्दू दर्शनोकी शिक्षा वहाँ भलेप्रकार हो रही थी। भारतवर्षकी प्राचीन सभ्यता उनकी आँखोसे इतनी अधिक ओझल नही हुई थी जितनी कि उत्तर भारतवालोंकी। इसीलिये अँगरेजी शिक्षाके आरम्भ होनेपर उनकी आँखे चकाचौंध नही हुई और न उनपर पाश्चात्य सभ्यताका बुरा असर ही पड़ने पाया। धार्मिक और सामाजिक दृष्टिसे नये संस्थाओकी वहाँ आवश्यकता ही प्रतीत नही हुई। राजनैतिक दृष्टिसे उनकी जरूरत अवश्य थी किन्तु राजनैतिक जागृति हुए बिना वे कायम हो नही सकती थी। इसी कारण असहयोग आन्दोलके पहिले उस प्रान्तमे स्वतन्त्र विद्यालय देखनेमे नही आते। किन्तु यह बात केवल ऊँची कही जाने वाली जातिके लोगोके सम्बन्धमें लागू होती है। दलित जातियोकी अवस्था खराब थी। ईसाई धर्मका प्रचार भी उनके बीच बहुत हुआ। पर उनमे खुद इतनी शक्ति नही थी कि अपना सुधार कर सकें और दूसरे लोगोंने इस ओर ध्यान नही दिया।

दूसरा काल—सन् १९००–१९२० ईसवी

उपर्युक्त विद्यालयोंकी स्थापनाके बाद ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यो त्यो इस बातका अनुभव बढ़ता गया कि सरकारी निय-

त्रणमे रहते हुए शिक्षापद्धतिमे किसी प्रकारका सुधार कर सकना सम्भव नहीं है। विश्वविद्यालयोंके नियमोंकी पाबन्दी करते हुए अपने आदर्शोपर चलते रहना असम्भव है। अतः सन् १६०० के बाद ऐसी सस्थाओंका उदय होने लगा जो सरकारी नियन्त्रणसे बिलकुल बाहर थी। देशका राजनैतिक आन्दोलन भी अब जोर पकडता जा रहा था। और आगे चलकर सरकारने विद्यार्थियोको उसमें भाग लेनेसे रोका। फल स्वरूप स्वतंत्र विद्यालयोंकी स्थापना और भी अधिक तेजीसे होने लगी। लेकिन जो संस्थाएँ केवल राजनैतिक आन्दोलनके फल स्वरूप कायम हुई थी वे तो उक्त आन्दोलनके शिथिल होनेपर कमजोर होने लगी या बन्द हो गईं। लेकिन जिनकी स्थापना स्वतन्त्र रूपसे शिक्षा-प्रचार करनेके उद्देश्यसे ही हुई थी वे बराबर चलती रही। इस कालमे जितनी स्वतन्त्र संस्थाएँ क़ायम हुईं उनपर सरकारकी बहुत कडी निगाह रहती थी और अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें उन्हें अनेक तरहकी कठिनाइयोंका सामना करना पडा। इस कालकी सस्थाओंमे मुख्य रूपसे कविवर रवीन्द्रनाथके शान्ति निकेतन, गुरुकुल कॉंगडी, गुरुकुल वृन्दावन, महाविद्यालय ज्वालापुर, वङ्गीयराष्ट्रीय शिक्षा परिषद् (नेशनल कौसिल आफ एजुकेशन, बगाल), समर्थ विद्यालय तलेगॉव, प्रेम महाविद्यालय वृन्दावन और आन्ध्र जातीय कलाशालाके नाम गिनाये जा सकते है।

कविवर रवीन्द्रनाथने अपने पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोरके आश्रम शान्तिनिकेतनमें दिसम्बर सन् १६०० ईसवीमें एक विद्यालयकी स्थापना की। प्राचीन भारतीय ऋषियोंका आदर्श लेकर आपने यह विद्यालय चलाया था। वह इसके द्वारा विद्यार्थियोंको ऐसी शिक्षा देना चाहते थे जिसका जीवनसे निकट सम्बन्ध हो। सरकारी विद्यालयोंका यान्त्रिक स्वरूप आपको बहुत ही असह्य प्रतीत होता था, और उनके द्वारा विद्यार्थियोंके शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्तिका जो ह्रास होता था उसे रोक कर प्राकृतिक वायुमण्डलमें स्वाभाविक पद्धतिसे विद्यार्थियोंकी अन्तर्हित शक्तियोंका विकास करनेके उद्देश्यसे आपने यह विद्यालय खोला। धीरे धीरे उन्नति करते करते आज उसने विश्वभारतीका रूप धारण किया है। इसके अन्तर्गत प्रारम्भिक और माध्यमिक विद्यालयोंके अतिरिक्त एक कालेज और पुरातत्व विभाग तथा एक कलाभवन भी है। यहां लडकों और लड़कियोंकी शिक्षा साथ साथ होती है।

ऊपर कहा गया है कि सन् १८८६ ईसवीमें लाहौरमें दयानन्द ऐङ्गलो वैदिक कालेज इंस्टिट्यूशनकी ओरसे एक स्कूल खुला और आगे चलकर १८८६ ईसवीमें एक कालेज भी क़ायम किया गया। आर्य समाजके लोग जीजानसे इसकी सफलताके लिये काम करते थे। किन्तु थोड़े ही दिनों बाद शिक्षाके आदर्शको लेकर कार्यकर्ताओंमें

मतभेद हो गया। कुछ लोगोंका खयाल हुआ कि यहां वैदिक आदर्शोंके अनुकूल शिक्षाका प्रबन्ध नही हो रहा है। कालेजके अधिकारी विश्वविद्यालयकी परीक्षाके लिये अधिक कोशिश करते है और उत्तम प्रकारकी राष्ट्रीय शिक्षा देनेकी ओर ध्यान नही देते। उन्होंने यह भी देखा कि विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध होनेके कारण इसके पाठ्यक्रममे आवश्यक हेर फेर नही किया जा सकता। जब उन्हें इस बातका यक़ीन हो गया कि इस कालेजको वैदिक आदर्शोंके अनुकूल बनाना असम्भव है तब वे उससे अलग हो गये और प्राचीन परिपाटीपर एक गुरुकुल खोलनेका निश्चय किया। पञ्जाबकी प्रान्तीय आर्य-प्रतिनिधि सभामें भी दो दल हो गये और आखिरको दो सभाएँ हो गईं। गुरुकुल पार्टीके नेता थे महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द)। इस दलकी सभाने २६ नवम्बर सन् १८९८ ईसवी को एक गुरुकुल खोलनेका निश्चय किया और स्वामी श्रद्धानन्दके अथक परिश्रमसे २ मार्च सन् १९०२ ईसवीको गुरुकुल कांगडीकी स्थापना हुई। इसके बाद संयुक्त प्रान्तकी आर्य प्रतिनिधि सभाने भी शिक्षा प्रचारकी ओर ध्यान दिया। सन् १९०० ईसवीमें सिकन्दराबादमे एक छोटासा गुरुकुल कायम हुआ था। आर्यप्रतिनिधि सभाने १ दिसम्बर सन् १९०५ को उसे अपने अधीन लिया। कई बार स्थान परिवर्तन करनेके बाद सन् १९११ ईसवीसे वह वृन्दावनमें गुरुकुल वृन्दावनके नामसे चल रहा है। इन दोनो गुरुकुलोंके

अतिरिक्त सन् १६०७ मे हरिद्वारके समीप महाविद्यालय ज्वालापुरकी स्थापना हुई।

गुरुकुलोकी स्थापना आर्यसमाजके द्वारा हुई थी और संस्कृत साहित्य, आर्यसभ्यता एवम् प्राचीन भारतीय आदर्शोंसे इनका विशेष सम्बन्ध था। इनकी स्थापनाके बाद ही दो ऐसी संस्थाएँ स्थापित हुईं जिनका धार्मिक आन्दोलनकी अपेक्षा राजनैतिक आन्दोलनसे विशेष सम्बन्ध था। ये है—कलकत्तेकी बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् और तलेगॉव का समर्थ विद्यालय। २० वी शताब्दीके आरम्भसे ही देशके राजनैतिक क्षेत्रमे एक नये दलका उदय हो रहा था जो अपनी शिकायतोको दूर करनेके लिये सरकारसे प्रार्थना करनेके बजाय स्वावलम्बनके मार्गपर विशेष जोर देता था। शासकोंकी अच्छृङ्खल मनोवृत्तिने ही राजनैतिक क्षेत्रमे उग्रताका सञ्चार किया था। लार्ड कर्जनने अपने कठोर शासनसे उसे और भी अधिक भडका दिया। कलकत्ता विश्वविद्यालयकी सञ्चालक सभामे अबतक अधिकतर सदस्य गैर-सरकारी थे। नये क़ानूनके द्वारा उन्होंने उसमें सरकार द्वारा मनोनीत सदस्योंकी संख्या बढ़ाई। इसका बहुत विरोध हुआ, पर लार्ड कर्ज़नने किसीकी न सुनी। इस समय लोगोंके मनमें यह बात उठने लगी कि शिक्षाकी सारी व्यवस्था स्वतन्त्र राष्ट्रीय विश्वविद्यालयके द्वारा होनी चाहिये। इसके बाद ही बङ्ग भङ्गके बाद राष्ट्रीय आन्दोलनने बहुत ज़ोर पकड़ा।

बंगालमें बहुत अधिक उत्तेजना फैली। सरकारके निर्णयको न मानने-का निश्चय करनेके लिये जगह जगह सभाएँ होने लगी। इनमे विद्यार्थी बडे उत्साहसे भाग लेने लगे। सरकारने उन्हें रोकना चाहा और इसके लिये सरक्यूलर निकाले। विद्यार्थियोंने उस सरक्यूलरकी अवज्ञा की और सरकारी विद्यालयोंसे अलग होने लगे। इनके लिये स्थान स्थानपर राष्ट्रीय पाठशालाएँ खुलने लगी। अन्तमे ११ मार्च सन् १९०६ ईसवीको कलकत्तेमे बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा परिषदकी स्थापना हुई जिसने बगालके राष्ट्रीय विश्वविद्यालयका स्थान ग्रहण किया। तलेगॉवका समर्थ विद्यालय राजनैतिक आन्दोलनका परिणाम नही है। किन्तु उसकी शिक्षाकी योजना इस प्रकार बनाई गई जिससे विद्यार्थियोंमे राष्ट्रीय भाव भरे जा सकें और वे स्वतत्र नागरिक बन सकें। उन्ही दिनों काशीमे हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाके लिये कोशिश हो रही थी और समर्थ विद्यालयके आचार विचार सम्बन्धी नियम इसीके ढगपर रक्खे गये। इसके संस्थापक प्रोफेसर विष्णु गोविन्द बीजापुरकर, कोल्हापुरके राजारामकालेजमें अध्यापक थे। अपने राष्ट्रीय विचारोंके कारण वे सन् १९०५ ईसवीमें नौकरीसे अलग किये गये। उसके बादही ११ जून सन् १९०६ को उन्होने कोल्हापुर-में ही समर्थ विद्यालयकी स्थापना की। दूसरे वर्ष वह वहॉसे उठकर मिरजमें गया और उसके बाद पूनेके समीप तलेगॉव दभाड़ेमें

आ गया। इसी समय प्रोफेसर बीजापुरकरको 'विश्ववृत्त' नामक मासिक पत्रमें एक राजद्रोहात्मक लेख लिखनेके अभियोगमें जेलकी सजा हो गई। इस समय देशका राजनैतिक आन्दोलन एक नया रूप ले रहा था। जनतामे अपूर्व उत्साह था। सरकारी विद्यालयों तकके विद्यार्थी राजनैतिक जुलूसोमे उत्साहके साथ भाग लेते थे। समर्थ विद्यालयके विद्यार्थियोंमे उत्साहका भाव देखकर सरकारको उसे कुचल देनेका बहाना मिला और सन् १६१० ईसवी में उसने इस विद्यालयको गैर 'कानूनी मजमा' क़रार देकर बन्द कर दिया। जेलसे लौटनेके बाद प्रोफेसर बीजापुरकरने उसे फिरसे चलाना चाहा। बहुत प्रयत्नके बाद सरकार इस शर्तपर उसकी पुनः स्थापना पर राजी हुई कि उसके विश्वासपात्र सर महादेवराव चौबल, विद्यालयकी प्रबन्ध कारिणी सभाके अध्यक्ष हों। इस प्रकार ११ नवम्बर सन् १६१८ को नवीन समर्थ विद्यालयके नामसे वह फिर कायम हुआ और अब तक चल रहा है। असहयोग आन्दोलन शुरू होनेके बाद प्रोफ़ेसर बीजापुरकर पूनेके तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठके कार्योंमे योग देने लगे। इसपर सर महादेवरावने समर्थ विद्यालयसे अपना सम्बन्ध तोड लिया और सरकारको इसकी सूचना भी दे दी। लेकिन देशके राजनैतिक आन्दोलनमें उस समय इतनी शक्ति आचुकी थी कि सरकार विद्यालयको और क्षति नही पहुँचा सकी।

वृन्दावनका प्रेममहाविद्यालय देशकी एक बहुत बडी कमीको पूरा करनेके उद्देश्यसे कायम किया गया। औद्योगिक शिक्षाकी कमी राजा महेन्द्रप्रतापको बहुत खटक रही थी। बौद्धिक शिक्षाके लिये तो अनेक विद्यालय थे किन्तु औद्योगिक शिक्षाके लिये कोई प्रबन्ध नही था। कालेजोंसे निकले हुए विद्यार्थियोंका बौद्धिक ज्ञान तो बहुत बढा हुआ रहता था, किन्तु अपने हाथसे वे मामूली काम भी नही कर सकते थे, दूसरी ओर देशके कारीगरोमे बौद्धिक शिक्षाका बिलकुल अभाव था, अत. वे अपने पेशेमें समुचित उन्नति नहीं कर सकते थे। प्रेममहाविद्यालयकी योजनामें भिन्न भिन्न उद्योगोंकी शिक्षाकी व्यवस्था करनेके अतिरिक्त इस बातका खयाल रक्खा गया कि औद्योगिक शिक्षाके साथ कुछ साहित्यिक शिक्षा भी दी जाय और बौद्धिक साहित्यिक शिक्षाके विद्यालयोंमें कुछ औद्योगिक शिक्षा भी दी जाय। थोड़े दिनोंसे ग्रामसङ्गठनका काम करने वाले कार्यकर्ताओंकी शिक्षाके लिये भी एक वर्ग खोला गया है।

इन्ही दिनों आन्ध्रमे भी जातीय-कला-शालाके नामसे एक संस्थाकी स्थापना हुई जो अबतक क़ायम है।

तीसरा काल—सन् १९२० ईसवी और उसके बाद।

इधर राजनैतिक आन्दोलनकी तीव्रता बढती गई और राष्ट्रीयताके भावोका भी विकास होता गया। नये भावोंके प्रकाशमें सर

कारी विद्यालयोंकी त्रुटियां अधिकाधिक स्पष्ट रूपसे दिखाई देने लगी और स्वतन्त्र रूपसे चलने वाले राष्ट्रीय विद्यालयोंकी आवश्यकता महसूस होने लगी। राष्ट्रीय जीवनमें शक्तिका सञ्चार तो हो ही रहा था। अतः कई स्थानोंपर-शिक्षा समस्यापर गम्भीरता पूर्वक विचार होने लगा। चम्पारनकी जांचके सम्बन्धमें जिन दिनों महात्मा गान्धी बिहारमें गये हुए थे उन्ही दिनो वहां राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित करनेकी चर्चा छिडी। अन्य स्थानोंपर भी यह समस्या विचारवान् लोगोंके मनपर कब्जा किये हुए थी। इसी समय राजनैतिक क्षेत्रमे एक आँधी उठी जिससे समस्त देश हिल उठा। महात्मा गान्धीके असहयोग आन्दोलनने देशमें एक नवीन युगका आरम्भ, और नई शक्तिका सञ्चार किया। राष्ट्रके प्रत्येक अङ्गमें नयी स्फूर्ति दिखाई देने लगी। शिक्षाके क्षेत्रमें भी इस आन्दोलनने क्रान्ति कर दी।

सन् १९२० ईसवीके सितम्बर महीनेमें कांग्रेसका विशेष अधिवेशन कलकत्तेमें हुआ। इस अधिवेशनमें सरकारसे असहयोग करनेके सम्बन्धमें जो प्रस्ताव पास हुआ उसके शिक्षा सम्बन्धी अंशका आशय यह था कि 'सरकार अपनी मातहतीमें चलनेवाले स्कूलोंके द्वारा भी अपनी शक्तिको मजबूत करती है इसलिये लोगोंको चाहिये कि सरकारी अथवा सरकारी सहायताप्राप्त स्कूलों और कालेजोंसे धीरे धीरे अपने बच्चोंको अलग कर लें और उनकी शिक्षाका प्रबन्ध

करनेके लिये भिन्न भिन्न स्थानोंपर राष्ट्रीय स्कूल और कालेज खोले।' उसी वर्ष दिसम्बरके महीनेमें कांग्रेसका साधारण अधिवेशन नागपुरमें हुआ। इस अधिवेशनमें यह प्रस्ताव और भी अधिक दृढताके साथ दुहराया गया। इस प्रस्तावका आशय यह था कि 'स्कूलोंमें १६ वर्षसे कम उम्रके जितने बालक पढते हैं उनके अभिभावकोंसे कांग्रेस अनुरोध करती है कि वे अपने बालकोंको सरकारी अथवा सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलोंसे निकाल कर राष्ट्रीय स्कूलोंमें पढावें या उनकी शिक्षाका कोई दूसरा प्रबन्ध करें, और १६ वर्ष या इससे अधिक उम्रके बालकोंसे कांग्रेस यह अनुरोध करती है कि अगर वे यह समझते हों कि राष्ट्रने जिस शासन-पद्धतिको नष्ट कर देनेका निश्चय किया है उसके नियन्त्रणमें चलने वाली संस्थाओंमें पढना हमारी अन्तरात्माके विचारोंके प्रतिकूल है—तो तुरन्त उन संस्थाओंसे निकल आवें और इस बातका खयाल तक न करें कि इसका नतीजा क्या होगा, ऐसे विद्यार्थियोंको कांग्रेस सलाह देती है कि या तो वे असहयोग आन्दोलनके सम्बन्धमें देशका कोई काम करें या राष्ट्रीय संस्थाओंमे पढ़ें।'

इन प्रस्तावोंपर बडे उत्साहके साथ अमल हुआ। देश भरमें विद्यार्थियोंने सरकारी विद्यालयोंसे असहयोग करना शुरू किया। ऐसी परिस्थितिमें जिन स्थानोंपर पहलेसे ही स्वतन्त्र शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित करनेका विचार हो रहा था—वहां तो वे कायम हुई हो,

किन्तु उनके सिवाय तमाम देशमें राष्ट्रीय विद्यालय खुलने लगे। प्रायः सभीका जन्म सन् १९२० के अक्टूबरसे सन् १९२१ के अक्टूबरके बीच हुआ। इनमेंसे मुख्य मुख्य संस्थाएँ ये हैं, जो अबतक कायम हैं—

गुजरात विद्यापीठ (अहमदाबाद)—	१९ अक्टूबर १९२०
जामिया मिल्लिया इसलामियां (अलीगढ़)—	२९ अक्टूबर १९२०
तिलक महाविद्यालय (पूना)—	८ दिसम्बर १९२०
बिहार विद्यापीठ (पटना)—	१० जनवरी १९२१
काशी विद्यापीठ (काशी)—	१० फरवरी १९२१

इनके अतिरिक्त लाहौरमें कौमी महाविद्यालय, नागपुरमें तिलक विद्यालय तथा बङ्गालमें गौडीय सर्वविद्यायतन भी कायम हुए लेकिन अब वे बन्द हो चुके हैं। ऊपर केवल ऐसे महाविद्यालयोंके नाम दिये गये हैं जो विश्वविद्यालयकी कोटिके हैं। इनके अतिरिक्त हाईस्कूल और प्राइमरी स्कूल तो देश भरमें क़ायम हुए जिनमेंसे अधिकांश बन्द हो चुके हैं, किन्तु लगभग ६० अबतक चल रहे हैं।

आरम्भमें दो वर्षों तक राजनैतिक आन्दोलन बहुत जोरपर था। अतः उस समय उन विद्यालयोंके द्वारा शिक्षाकी अपेक्षा राजनैतिक कार्य ही अधिक हुए। तात्कालिक उद्देश्य तो यही था कि सरकारी विद्यालयोंसे निकल कर आनेवाले विद्यार्थियोंके लिये नये विद्या-

लयोंका प्रबन्ध किया जाय। शिक्षाकी योजना और पाठ्यक्रमपर उस समय बारीकीसे विचार नही किया गया। किन्तु ज्यो ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों अपनी योजनाको निश्चित स्वरूप देनेकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी। काशीमे सन् १९२३ ई० में २३ फरवरीसे ६ मार्च तक एक राष्ट्रीय शिक्षा समितिकी बैठक हुई जिसमें भिन्न भिन्न सस्थाओंके २८ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। इस समितिने राष्ट्रीय शिक्षाकी एक योजना तैयार की। लेकिन उसके बाद उस पर अमल नही हुआ। असहयोग आन्दोलनकी शिथिलताके साथ अनेक विद्यालय बन्द होने लगे। जो बच रहे उन्होने अपनी अपनी योजना बनाकर एक निश्चित लक्ष्य अपने सामने रखकर काम करना शुरू किया। पिछले आठ बरसोंमे इन सभी सस्थाओंने अपना अपना स्वरूप निश्चित कर लिया है। प्रायः सभीके अधिकारी और विद्यार्थी अग्रगामी राजनैतिक और सामाजिक आन्दोलनोंके साथ रहते है और इनके स्नातक राष्ट्रनिर्माणके भिन्न भिन्न क्षेत्रोमे काम करते है। इन संस्थाओंमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, छूत अछूतका कोई भेदभाव नही माना जाता।

तीसरा अध्याय

राष्ट्रीय शिक्षाका स्वरूप और वर्तमान संस्थाएँ।

जैसा कि पिछले अध्यायसे प्रगट होता है, भारतीय ढङ्गपर शिक्षाकी व्यवस्था करनेवाली संस्थाएँ १६ वीं शताब्दीके चौथे चरणमे ही पहले पहल कायम हुई। इसके बाद ज्यो ज्यो समय बीतता गया, त्यो त्यो नई नई संस्थाएँ स्थापित होने लगी। इन सब संस्थाओके स्वरूप—उनकी कार्यप्रणाली और उनके आदर्शोंमे भी बराबर भेद होता गया। आरम्भकी संस्थाएँ खासकर दो उद्देश्योंको सामने रखकर कायम हुई—एक तो विद्यार्थियोंके लिये धार्मिक और नैतिक शिक्षाका बन्दोबस्त करना और दूसरे प्रचलित पाठ्यप्रणाली-मे थोडा-बहुत सुधार करना। हिन्दुओंको संस्थाओंमें हिन्दू धर्म और आचार विचारकी शिक्षा दी जाती थी, मुसलमानोंका संस्थाओमे इसलामधर्म और मुसलिम आचार विचारकी। हिन्दुओमे भी आर्यसमाज और सनातनधर्मकी संस्थाएँ अपने अपने सिद्धान्तोके अनुकूल व्यवहार करती थी। ये सब संस्थाएँ

सरकारी नियन्त्रणके भीतर रहते हुए काम कर रही थीं। यह हुई उस समयकी बात जिसे राष्ट्रीय शिक्षाके इतिहासका पहला काल कह सकते है।

दूसरे कालकी सस्थाओंको मुख्य विशेषता यह थी कि उन्होंने सरकारसे कोई सम्पर्क नही रक्खा। इतने दिनोंके अनुभवसे यह मालूम हो चुका था कि सरकारी नियन्त्रणमे रहते हुए अपने सिद्धान्तोंके अनुकूल व्यवहार कर सकना कठिन है। अस्तु। इस कालमे जो राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाएँ क़ायम हुई उनको मोटे तौरपर दो भागोंमे बॉट सकते है। पहले भागमे गुरुकुल आदि ऐसी सस्थाएँ आवेगी जो उन्ही सिद्धान्तोंपर अमल करना चाहती थी जिनपर अमल करनेके लिये दयानन्द ऐङ्गलो वैदिक कालेजकी स्थापना पहले कालमें हुई थी। दूसरे भागमे बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षापरिषद् आदि ऐसी सस्थाएँ आवेगी जिन्होने शिक्षाके क्षेत्रमे नये सिद्धान्त प्रविष्ट किये। इन सस्थाओंमे किसी धर्म विशेषकी शिक्षा अथवा विशेष प्रकारके आचार व्यवहारपर जोर नही दिया गया। सभी धर्मों और मज़हबोंके विद्यार्थी उनमे पढ सकते थे और नैतिक आचार व्यवहारके सम्बन्धमे अपनी स्वतन्त्रता कायम रख सकते थे। बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा परिषद्की योजनामें ऐसी व्यवस्था रक्खी गई थी कि जो विद्यार्थी जिस धर्मका मानने वाला हो, उसे उसी धर्मकी शिक्षा दी जाय। बल्कि कुछ लोग ऐसा दृष्टिसे यह पूर्ण-

थे। उनका कहना था कि किसी भी प्रकारकी धार्मिक शिक्षा दी ही न जाय। सत्य, अहिंसा आदि यम नियमोंके अनुसार विद्यार्थियोंके आचरणका नियमन किया जाय, लेकिन इन नियमोंका किसी धर्म विशेषसे कोई सम्बन्ध स्थापित न किया जाय। यह, विचारशैलीकी उदारता तथा भारतवर्षमे रहनेवाले सभी धर्म के लोगोंकी राष्ट्रीय एकताका अनुभव होनेके कारण हुआ। पहले कालमे एकताका व्यवहारिक रूप धर्मों और सम्प्रदायोके भीतर आबद्ध था, किन्तु दूसरे कालसे यह दीवार टूटने लगी। इसका अर्थ यह नहीं है कि इस खयालके लोग अपना अपना धर्म छोडने लगे। सभी अपने अपने धर्मपर कायम थे—लेकिन धर्मका भेद, राष्ट्रीय एकताके मार्गमे बाधा न डाल सका। इस समयसे धर्मको एक वैयक्तिक वस्तु माननेकी ओर प्रवृत्ति होने लगी। राष्ट्रीय जीवन भी अब शक्तिशाली होने लगा था। राजनैतिक क्षेत्रमें स्वावलम्बनपर जोर दिया जाने लगा था। औद्योगिक शिक्षाका देशमें सर्वथा अभाव था, अतः इन संस्थाओंके द्वारा उसका भी प्रबन्ध किया गया। पहले कालमें जो संस्थाएँ क़ायम हुई उनके अधिकारियोंको इस बातकी चिन्ता नहीं करनी पड़ी कि यहाँसे निकलकर विद्यार्थी अपनी जीविका किस प्रकार कमाएँगे। क्योंकि सरकारी विद्यालयोंके विद्यार्थियोंको जो सहूलियतें हासिल थी वे उनके विद्यार्थियोंको भी हिन्दुओंमें भी अपने सिद्धान्तोंके अनुकूल व्यवहार संस्थाओंको इस बातपर विचार करना

पडा। यद्यपि सरकारी कालेजोके भी बहुत कम ग्रेजुएटोंको सरकारी नौकरियाँ मिलती थी, किन्तु आशा प्रत्येकको रहती थी। यहाँ वह बात न थी। अतः स्वावलम्बनका पाठ इन विद्यालयोकी एक बहुत बडी विशेषता थी।

✓ राष्ट्रीय एकता और स्वावलम्बनके भावने तीसरे काल तक और भी अधिक जोर पकड लिया था। अत. इस कालकी संस्थाओं-मे ये विशेषताएँ और भी अधिक स्पष्ट रूपसे देखनेमे आती है। सभी विद्यालयोमे धर्म मजहब, छुआछूत और जातपाँतका भेदभाव छोडकर सब काम होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारोके अनुसार धर्मका आचरण करनेके लिये स्वतन्त्र है। समाजके सामने प्रत्येक व्यक्ति भारतीय है और अपनी व्यक्तिगत हैसियतसे किसी धर्म विशेषका अनुयायी—इस सिद्धान्तको लेकर सब धर्मोके प्रति समान आदरका भाव रखते हुए इन संस्थाओंका कार्यसञ्चालन होता है। मनुष्य मनुष्यके बीच अकारण भेदभाव उपस्थित करनेवाले अस्पृश्यता आदिके भावोको कोई स्थान नही दिया जाता। किन्तु यह साधारण अवस्था हुई। अपवाद स्वरूप कुछ ऐसी संस्थाएँ भी क़ायम हुई जो किसी सम्प्रदाय विशेषके लिये ही शिक्षा-का प्रबन्ध करती रही। जैसे जामिया मिल्लिया इसलामियाँ। इसकी और सब बातें तो इस कालमे स्थापित अन्य संस्थाओंके ही समान है, लेकिन धार्मिक शिक्षा और आचार विचारकी दृष्टिसे यह पूर्ण-

तथा इसलाम धर्मसे सम्बन्ध रखती है। किन्तु हिन्दू या अन्य धर्मके विद्यार्थियोके प्रवेशकी मनाई नहीं है।

शिक्षा संस्थाओमे पाठ्यक्रम और पाठ्यप्रणाली ही सबसे मुख्य वस्तु है। पहले कालकी संस्थाओमे तो इस दृष्टिसे कोई खास विशेषता नही थी। उनके हाथ इतने बँधे हुए थे कि वे सरकारी पाठ्यक्रममे अधिक अन्तर कर ही नही सकते थे। किन्तु दूसरे कालमें जो संस्थाएँ कायम हुई उन्होंने इस ओर विशेष रूपसे ध्यान दिया। विद्यार्थियोकी मातृभाषा शिक्षाका माध्यम रक्खी गई और पाठ्यपुस्तकोंके चुनावमे भी सतर्कतासे काम लिया गया। भारतवर्षके इतिहासकी सच्ची घटनाओपर जोर दिया गया और शिक्षाका प्रकार भी ऐसा रक्खा गया जो भारतीय परिस्थितिके अनुकूल हो। तीसरे कालकी संस्थाओमें भी स्वभावतः ये सब विशेषताएँ पाई जाती है। आरम्भसे ही उच्च शिक्षाके लिये भारतीय भाषाओमे पाठ्यपुस्तकोंके अभावके कारण कठिनाई पडती आ रही है। किन्तु नये नये ग्रन्थोके प्रकाशनके द्वारा इस कठिनाईको हल करनेका उपाय भी हो रहा है। पाठशालाकी ऊपरकी श्रेणियोंमें तथा कालेजोंमे अँगरेजी भाषाकी शिक्षा तो अनिवार्य रूपसे दी ही जाती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ज्यो ज्यो देशमें राष्ट्रीयताके भाव और राष्ट्रीय शक्तिकी वृद्धि होती गई त्यों त्यों राष्ट्रीय शिक्षाका रूप भी विकसित होता गया। पुरानी संस्थाओंमेसे जिन जिनने

और उसका हृदय विशाल हो, किन्तु इसके लिये भी परिस्थितिकी भिन्नताके साथ उसकी प्रणालीमें भेद होना अनिवार्य है। जिस स्थानपर जिस प्रणालीसे यह काम पूरा हो सकता है उस स्थानके लिये वही प्रणाली राष्ट्रीय-शिक्षा-प्रणाली है। कलकत्ता विश्वविद्यालय कमीशनके सामने इस विषयपर श्री जान उडरफ़ने अपने मेमोरैण्डममें कहा था कि —

"यदि शिक्षा का अर्थ है विकसित करना, तो भारतीयोंके भीतरसे, सिवाय उनके जातीय संस्कारोंके और किन चीज़ोंका विकास हो सकता है? क्या इसकी अवहेलना करके उसे विदेशी भावोंसे भर देना शिक्षा कहलावेगा? इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी प्रकारके ज्ञानसे चाहे वह पश्चिमी हो या और कुछ उन्हें वञ्जित रक्खा जाय। ज्ञान तो ज्ञान है, चाहे वह पूर्वसे आवे या पश्चिमसे। भारतीय विद्यार्थी यदि पश्चिमकी कोई अच्छी बात सीख कर अपने पैत्रिक ज्ञानकी वृद्धि कर ले तो उसकी भारतीयतामें कुछ फ़र्क नहीं आ जाता। उसका उद्देश्य ही यह है कि भारतीय संस्कृतिको सम्पन्न करे और अपना भाव ऐसा रक्खे जिससे इस उद्देश्यकी पूर्तिमें सहायता मिले।"

कांग्रेसने अपने सन् १९२४ के अधिवेशनमें राष्ट्रीय शिक्षाके सम्बन्धमें जो प्रस्ताव स्वीकृत किया उसमें कहा गया है कि

'कांग्रेस उन संस्थाओंको राष्ट्रीय शिक्षा संस्था नहीं मानती:—

(१) जिनमें शिक्षाका माध्यम कोई भारतीय भाषा न हो,

(२) जो हिन्दू मुसलिम ऐक्यके लिये कोशिश न करती हो,

(३) जो अछूतोंके बीच शिक्षा प्रचार करने और अस्पृश्यता निवारण करनेका प्रयत्न न करती हो,

(४) जहाँ सूत कातने और रूई धुननेकी शिक्षा अनिवार्य रूपसे न दी जाती हो,

(५) जहाँ शारीरिक व्यायाम और आत्मरक्षाकी शिक्षा अनिवार्य रूपसे न दी जाती हो, और

(६) जहाँ अध्यापक तथा १२ वर्षसे अधिक उम्रके विद्यार्थी हर कामके दिन, कमसे कम आध घण्टा सूत न कातते हों, और सभी अध्यापक तथा विद्यार्थी स्वभावतः ही खादीके वस्त्र न पहनते हों।

इस प्रस्तावके सम्बन्धमें अकसर यह आलोचना की जाती है कि कांग्रेसने राष्ट्रीय शिक्षाका स्वरूप बहुत ही सङ्कुचित कर दिया। किन्तु प्रस्तावके शब्दोंसे स्पष्ट है कि कांग्रेसने इसके द्वारा राष्ट्रीय शिक्षाकी कोई परिभाषा नहीं की है। उसका यह अभिप्राय नहीं है कि जिन संस्थाओंके द्वारा उपरोक्त कार्य होते हों उनके द्वारा और चाहे कोई कार्य हो या न हो—बौद्धिक और साहित्यिक शिक्षा चाहे जैसी दी जाय या न दी जाय—फिर भी वे राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाएँ कहलायँगी। उसका अभिप्राय तो यह है कि शिक्षाका प्रबन्ध करते समय जिन

संस्थाओंमे उपरोक्त बातोंका खयाल न रक्खा जायगा वे कांग्रेसकी दृष्टिमे राष्ट्रीय संस्थाएँ न कहलायेगी। उन बातोंमे खादीको छोड कर शेष सब ऐसी है जिनसे राष्ट्रीयताके भावका विकसित स्वरूप ही प्रगट होता है। उन शर्तोंके कारण राष्ट्रीय शिक्षाका स्वरूप अधिक उदार होता है न कि सङ्कुचित। खादीकी शर्तके सम्बन्ध मे यह बात ध्यानमे रखनी आवश्यक है कि कांग्रेस खादीको राष्ट्रीय उद्योग समझती है। उसके पिछले अधिवेशनोंके प्रस्तावोमे यह बात बार बार दुहराई गई है कि चरखे और खादीके पुनरुद्धारसे देशकी गरीबी बहुत हद तक दूर हो सकती है। कांग्रेसके कार्यक्रमके भीतर रचनात्मक कार्य करने वाली संस्थाओंमें चरखासङ्घ ही सबसे प्रमुख है। जब कांग्रेसकी दृष्टिमे राष्ट्रीय पुनरुद्धारके लिये खादी इतना महत्वपूर्ण स्थान रखती है, तब राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओंमे उसकी अनिवार्य शिक्षा तथा अध्यापको और विद्यार्थियोंके लिये अनिवार्य रूपसे खादी पहननेकी शर्त लगाना कांग्रेसके लिये स्वाभाविक ही है। यह बात विवादग्रस्त हो सकती है कि भारतकी आर्थिक उन्नतिके लिये खादीको राष्ट्रीय उद्योग बनाना नितान्त आवश्यक है या नही। किन्तु यह तो निर्विवाद है कि भारतवर्षके राष्ट्रीय जीवनमे खादीको आज एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और इस दृष्टिसे कांग्रेसका प्रस्ताव असङ्गत प्रतीत नही होता। किन्तु यह कांग्रेसका दृष्टिकोण हुआ। साधारणतया विचार करते समय उन सब संस्थाओको राष्ट्रीय

शिक्षा सस्थाओंकी कोटिसे निकाल देना अनुचित होगा, जिनकी कार्यप्रणाली, और सब बातोमे तो राष्ट्रीय शिक्षाप्रणालीके अनुकूल हो, लेकिन जहाँ खादीका व्यवहार अनिवार्य रूपसे न हो रहा हो।

कुछ लोग यह एतराज करते है कि अब राष्ट्रीयताका युग चला गया। सारा ससार, वश, जाति, सम्प्रदाय और राष्ट्रकी दीवारोंको तोड रहा है। ससारके अन्य देश विश्वकी अखण्डताका स्वप्न देख रहे है और उन्हे आशा है कि एक दिन दुनियाँके सभी देश, एक सूत्रमे बँध जायँगे। जब राजनैतिक क्षेत्रमे ही इस प्रकारके उदार विचार फैल रहे है तब क्या भारतवर्षके लिये यह उचित है कि वह शिक्षा तकको, राष्ट्रीय सङ्कीर्णतासे आच्छादित कर दे। यह एतराज एक गलतफहमीपर अवलम्बित है। भारतवर्षकी राष्ट्रीय शिक्षामें राष्ट्रीय सङ्कीर्णताको बिलकुल ही स्थान नही है। राष्ट्रीय शिक्षा, केवल उन राष्ट्रीय विशेषताओकी रक्षा करना चाहती है जिन्हे नष्ट कर देनेका प्रयत्न यहाँके विदेशी शासक करते आ रहे है। अन्तर्राष्ट्रीयताके भावका यह अर्थ नही है कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी विशेषताएँ छोड दे। यह तो सम्भव भी नही है। अन्तर्राष्ट्रीयताका भाव यह बतलाता है कि दो राष्ट्रोके बीच किसी प्रकारका हित विरोध नही होना चाहिये, सभी राष्ट्रोको विश्वकी एकताका अनुभव करना चाहिये। भारतवर्षकी राष्ट्रीय शिक्षाप्रणाली इस आदर्शका विरोध नही करती, बल्कि उसीकी ओर अग्रसर होती है।

यदि भारतवर्षपर विदेशियोंका शासन न हुआ होता और उन्होंने इसकी राष्ट्रीय विशेषताओंको नष्ट करके—उसे क्लीव बनाकर—अपनी शक्ति कायम करनेका प्रयत्न न किया होता, तो इस शिक्षाका नाम राष्ट्रीय शिक्षा न पड़ता, और न सरकारी नियन्त्रणसे स्वतन्त्र रहनेकी आवश्यकतापर इतना जोर ही दिया जाता। (राष्ट्रीय शिक्षा-के द्वारा राष्ट्रीय संस्कृतिको सम्पन्न करने और राष्ट्रीय साहित्यकी सर्वांगीण उन्नति करनेका प्रयत्न किया जाता है) इसके लिये दूसरी सभ्यता और दूसरे साहित्योंसे जितनी सहायता ली जा सके उतनी ली जाती है—लेकिन जिस हद तक वह भारतीय सभ्यताको परि-पुष्ट करने एवम् भारतीय साहित्यको समृद्ध करनेमें सहायक हो उसी हद तक। (भारतवर्षकी वर्तमान परिस्थितिमें राष्ट्रीय शिक्षाका यह भी अर्थ है कि इसके द्वारा ऐसी शक्ति प्राप्त हो जिससे राष्ट्रकी परतन्त्रता दूर हो। और जबतक भारतवर्षके समाजमें धर्म और जातिकी दीवारें इस भाँति खड़ी हैं कि उनसे मनुष्य मनुष्यके बीच ईर्ष्या और द्वेषकी वृद्धि होती है तबतक राष्ट्रीय शिक्षाका एक विशेष लक्षण यह भी होगा कि वह धर्म और जातिके इस घातक भेदभावको मिटावे और जनतामें ऐसे भावका सञ्चार करे जिससे वह मनुष्य मनुष्यके बीच इस प्रकारका अन्तर न करे। इन आदर्शोंको सामने रखते हुए मानसिक और शारीरिक शक्तियोंके सर्वांगीण विकासका प्रयत्न करना राष्ट्रीय शिक्षाका उद्देश्य है।

वर्तमान गैर सरकारी शिक्षासंस्थाओंको मोटे तौरपर पांच भागोंमे बाँटा जा सकता है–

(१) जिनका सम्बन्ध आर्यसमाजसे है। इस कोटिमे विशेष रूपसे उल्लेखनीय ये संस्थाएँ है—

१ गुरुकुल कांगडी और उसकी शाखाएँ

२ गुरुकुल वृन्दावन

३ महाविद्यालय ज्वालापुर

(२) जिनका सम्बन्ध किसी धार्मिक या सामाजिक आन्दोलनसे नही है, बरन् जो देशकी राजनैतिक जागृतिके फलस्वरूप उत्पन्न हुई, लेकिन जिनका जन्म असहयोग आन्दोलनके पहलेही हो चुका था। इस कोटिमे इन संस्थाओंके नाम गिनाये जा सकते हैं—

१ बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा परिषद नैशनल कौंसिल आफ एजुकेशन बङ्गाल) और उससे सम्बद्ध संस्थाएँ

२ नवीन श्री समर्थ विद्यालय तलेगांव दाभाडे

३ प्रेम महाविद्यालय, वृन्दाबन

(३) जो संस्थाएँ असहयोग आन्दोलनके समय स्थापित हुई। इनकी संख्या सबसे अधिक है। इस कोटिमे ये नाम गिनाये जा सकते है—

१ काशी विद्यापीठ काशी, और उससे सम्बद्ध संस्थाएँ

२ गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद, और उससे सम्बद्ध संस्थाएँ
३ तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ पूना, और उससे सम्बद्ध तथा उसके द्वारा स्वीकृत, महाराष्ट्रकी अन्य संस्थाएँ
४ बिहार विद्यापीठ पटना और उससे सम्बद्ध संस्थाएँ
५ जामिआ मिल्लिया इसलामियां, दिल्ली और उससे सम्बद्ध संस्थाएँ

(४) जिन संस्थाओंका सम्बन्ध न तो किसी धार्मिक या सामाजिक आन्दोलनसे है और न किसी राजनैतिक आन्दोलनसे, लेकिन जो स्वतन्त्र रूपसे शिक्षाके सम्बन्धमें नये नये वैज्ञानिक और शास्त्रीय प्रयोग करती हैं। इनमें मुख्य रूपसे ये दो संस्थाएँ हैं—

१ विश्वभारती, शान्तिनिकेतन
२ श्री दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन, भावनगर

(५) स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी संस्थाएँ। इनमें मुख्य मुख्य ये हैं—

१ कन्या महाविद्यालय, जालन्धर
२ कन्या गुरुकुल, देहरादून
३ अनाथ बालिकाश्रम, हिंगणे
४ श्रीमती नाथी बाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ पूना, तथा इससे सम्बद्ध अन्य संस्थाएँ।

इनमेंसे स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी संस्थाओंको छोड़कर शेषमेंसे, विश्वभारती, गुजरात विद्यापीठ और दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवनमें

सहशिक्षणकी पद्धति है। लडकियाँ और लडके साथ साथ पढते है। तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठमे भी लडकियाँ पढ सकती है। शेष सस्थाएँ केवल लडकोकी शिक्षाके लिये है।

चौथा अध्याय ।

विशेषताएँ और सामान्य अवस्था ।

इन सब सस्थाओकी पहली विशेषता तो यह है कि सभीमे शिक्षाका माध्यम मातृभाषा है। विदेशी भाषाके द्वारा शिक्षा देनेका नियम भारतवर्षके सरकारी विद्यालयोंको छोडकर और कही देखनेमे न आवेगा। उसका ज्ञान प्राप्त करनेमे शक्तिका कितना अपव्यय होता है, इसके कहनेकी आवश्यकता नही है। जितना समय किसी शास्त्रका साधारण ज्ञान प्राप्त करनेके लिये पर्याप्त होता उतना समय विदेशी भाषाके ही सीखनेमें चला जाता है और तब कही उस शास्त्रकी शिक्षा आरम्भ होती हे। राष्ट्रीय विद्यालयोमे शिक्षाका माध्यम मातृभाषा होनेसे, वहाँ समय और शक्तिका यह अपव्यय नही होने पाता। जितना ज्ञान विदेशी भाषाके द्वारा दस वर्षोंमे मिलेगा उतना मातृभाषाके द्वारा आठ वर्षोंमे ही प्राप्त कर लिया जा सकता है। किन्तु इसका यह अर्थ नही है कि राष्ट्रीय विद्यालयोंमें विदेशी भाषाकी शिक्षाको कोई स्थान ही नही है। प्राय. सभीमें

अँगरेजी भाषाकी शिक्षा अनिवार्य रूपसे दी जाती है। वर्त्तमान परिस्थितिमे संसारकी प्रगतिसे सम्बन्ध रखनेके लिये भारतवर्षमे अँगरेजीकी शिक्षा आवश्यक है। प्रान्तीय भाषाओमे अभी भिन्न भिन्न शास्त्रोंकी पाठ्य पुस्तके भी इतनी तैयार नही हुई है, कि केवल उन्हीके आधारपर शिक्षाकी व्यवस्था की जा सके। इसके अतिरिक्त दूसरी भाषा और साहित्यका ज्ञान प्राप्त करके अपने साहित्यकी उन्नति करना हर हालतमे आवश्यक और वाञ्छनीय है। एतराज तो इस बातपर किया जाता है कि विदेशी भाषा शिक्षाकी माध्यम हो। विद्यार्थियोको प्रत्येक शास्त्रका ज्ञान अपनी भाषाके द्वारा मिलना चाहिये। उसके बाद भिन्न भिन्न साहित्योंके ज्ञान भण्डारसे परिचित होनेके लिये तो उन भाषाओका ज्ञान प्राप्त करना ही होगा। भारतवर्षमे प्रान्तीय भाषाओंको शिक्षाका माध्यम बनानेके सम्बन्धमे कुछ लोगोका एतराज यह है कि ये भाषाएँ समृद्ध नही है, इनके साहित्यमे वह भण्डार ही नही है जिससे शिक्षा दी जा सके। किन्तु वे यह भूल जाते है कि ससारकी किसी भी भाषाके इतिहासमे कोई ऐसा समय न था जब कि उसके द्वारा शिक्षा तो न दी जाती हो, लेकिन उसका साहित्य समृद्ध रहा हो। भारतीय भाषाओकी अवस्था पिछडी हुई होनेका एक मात्र कारण तो यही है कि ये भाषाएँ शिक्षाका माध्यम नही है। आजसे पचास वर्ष पहले जापानी साहित्य बहुत ही पिछडा हुआ था। आज वह बहुत

उन्नत हो गया है, क्योंकि उसमे आवश्यकताके अनुसार नये नये ग्रन्थोका निर्माण होता गया। यदि वहाँ भी शिक्षाका माध्यम कोई विदेशी भाषा रक्खी जाती तो जापानी साहित्यको उन्नति करनेका कोई अवसर न मिलता। भारतवर्षमे भी जबसे मातृभाषाके द्वारा शिक्षा देनेकी व्यवस्था शुरू हुई तबसे भारतीय भाषाओंका साहित्य दिन प्रति दिन उन्नति कर रहा है। मुख्य मुख्य संस्थाओंमें शिक्षा-विभागके साथ साथ एक एक प्रकाशन विभाग भी है जिनके द्वारा सभी कोटिके ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते हैं। धीरे धीरे प्रान्तीय भाषाओंमे पाठ्य पुस्तकोंके मिलनेकी कठिनाई दूर होती जा रही है।

दूसरी विशेषता है इनकी शिक्षा पद्धतिकी स्वाभाविकता। सरकारी विद्यालयोकी कार्यप्रणालीको देखकर जो बात एकाएक खटकती है, वह है उनके अध्यापको और विद्यार्थियोके बीचका सम्बन्ध। क्लासरूमके बाहर दोनोके बीच कोई सम्बन्ध नही है। थोडेसे अध्यापक वहाँ भी ऐसे मिलेंगे जो अपने स्वभाव और चरित्रसे विद्यार्थियोंको अपनी ओर आकर्षित करते हैं और जीवनके प्रत्येक अङ्गमें उनकी सहायता करनेका प्रयत्न करते हैं। किन्तु विद्यालयोकी रचनामें इस विशेषताको कोई स्थान नहीं है। राष्ट्रीय विद्यालयोकी कार्यप्रणालीको देखकर ही यह मालूम हो जायगा कि वहाँ अध्यापको और विद्यार्थियोका सम्बन्ध केवल क्लासरूमके भीतरका नही है। विद्यालयोंका कार्यक्रम और रीति नीति निर्धारित

करनेमें इस बातपर ध्यान रक्खा जाता है कि ये विद्यालय, अध्यापको और विद्यार्थियोंके एक सम्मिलित परिवारका रूप धारण करें। नियम पालन करानेकी व्यवस्था, किसी दण्डका भय दिलाकर नही, वरन् उन नियमोकी उपयोगिता बतलाकर की जाती है। इसका यह अर्थ नही है कि सभी सस्थाओमे पूरी तरह इस आदर्शके अनुकूल व्यवहार होने लगा है। कमी बहुत कुछ है, किन्तु कार्यप्रणाली इसी सिद्धान्तको सामने रखकर निश्चित की जाती है।

पाठ्यक्रमके सम्बन्धमें सबकी अपनी अपनी विशेषताए है। कही संस्कृतको अधिक महत्व दिया गया है तो कही समाजशास्त्र और वर्तमान इतिहासको। किन्तु पाठ्यपुस्तकोंके चुननेमे सर्वत्र इस बातका ध्यान रक्खा गया है कि देशकी सच्ची अवस्थासे विद्यार्थियोका परिचय हो, प्रत्येक विषयका अध्ययन भारतवर्षकी दृष्टिसे कराया जाय, भारतीय इतिहासकी सच्ची घटनाए बतलाई जायॅ और अर्थशास्त्रकी शिक्षा देते समय भारतीय परिस्थितिकी विशेषताओ और उसकी आवश्यकताओंकी विवेचना की जाय। गुजरात विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ और गुरुकुल कांगडीमे भारतीय अर्थशास्त्रके अध्ययनपर विशेष जोर दिया गया है।

शिक्षा-सस्थाके लिये जितनी आवश्यकता विद्यार्थीके बौद्धिक विकासका प्रयत्न करने की है, उतनी ही, बल्कि उससे भी अधिक, आवश्यकता इस बात की है कि उनके चरित्रगठनकी ओर ध्यान दिया

जाय तथा आचार विचार और रहन सहनका परिष्कार किया जाय। जहाँ सरकारी विद्यालयोंमें इस बातका ख़याल ही नहीं रक्खा जाता, वहाँ राष्ट्रीय विद्यालय इसे अपनी एक विशेषता बनाना चाहते हैं। किन्तु यह तभी सम्भव है जब अध्यापकोंका निर्वाचन बड़ी सतर्कता-से किया जाय—केवल इस बातका ख़याल न रक्खा जाय कि उनका शास्त्रज्ञान कितना अधिक है, वरन् उनके जीवनकी उच्चताकी ओर भी ध्यान दिया जाय। यह कहना अनुचित होगा कि इन सब राष्ट्रीय विद्यालयोंके अध्यापक इसी उच्चकोटि के हैं। लेकिन विद्यालयोंका झुकाव अवश्य ही ऐसे अध्यापकोंका संग्रह करनेकी ओर है। सर-कारी विद्यालयोंमें ऐसे अध्यापक न हों—ऐसी बात नहीं है। किन्तु सरकारी शिक्षा विभागका सङ्गठन ऐसे अध्यापकोंके संग्रहको प्रोत्सा-हन नहीं देता। शिक्षा विभाग भी सरकारके अन्य महकमोंकी तरह एक महकमा है। जिस तरह अन्य महकमोंमें लोग जीविका उपार्जन के लिये नौकरी करते हैं, उसी प्रकार शिक्षा विभागमें भी करते हैं। यह अवस्था शिक्षणकार्यकी गुरुताको नष्ट करती है। राष्ट्रीय विद्यालयोंमें ऐसे अध्यापक अधिक तादादमें मिलेंगे, जिनके लिये अध्यापनकार्य जीविकोपार्जनका साधन नहीं, वरन् जीवनका लक्ष्य है।

भारतवर्षकी पुरानी परिपाटी निःशुल्क शिक्षा देनेकी थी। विद्यार्थी या उसके अभिभावकको विद्यार्थीके भरणपोषणकी भी चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। समाजके वर्तमान सङ्गठनमें अक्षरशः

उसी पद्धतिके अनुसार कार्य कर सकना असम्भव है। लेकिन सभी सभ्य देशोंमें इस बातका प्रयत्न किया जाता है कि शिक्षा सुलभ हो। प्रारम्भिक शिक्षा तो मुफ्त ही दी जाय, साथही ऊँची शिक्षा देनेके लिये भी अधिक से अधिक सुविधाए की जायॅ। ज्ञानका भण्डार ग़रीब अमीर सबके लिये समान रूपसे खुला रखनेका प्रयत्न किया जाय। लेकिन भारतवर्षके सरकारी विद्यालयोमे शुल्क और विद्यार्थियोके रहन सहनका खर्च इतना अधिक पडता है कि सामान्य अवस्थाके मनुष्यको अपनी सन्तानकी शिक्षाका प्रबन्ध करनेमे बडी कठिनाइयाॅ पडती है। राष्ट्रीय विद्यालयोमे यह बात नही है। अधिकांश स्थानोपर तो शिक्षा बिलकुल निःशुल्क है, और जहाॅ शुल्क लिया भी जाता है वहाॅ बहुत कम।

यह तो वे बाते हुई जो सभी सस्थाओमे पाई जाती है। इनके अतिरिक्त प्रत्येक सस्थाकी वैयक्तिक विशेषताए है। हर एकका अपना अपना लक्ष्य है और उसके अनुसार उनके आन्तरिक प्रबन्ध और पाठ्यक्रममे भिन्नता है। गुरुकुलोकी स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वतीके आदर्शों और सिद्धान्तोके अनुसार हुई है। ब्रह्मचर्यका पुनरुद्धार और प्राचीन आर्यसंस्कृतिको पुनरुज्जीवित करना इनका विशेष लक्ष्य है। गुरुकुलोमे कांगडीके गुरुकुलका स्थान सर्वोत्कृष्ट है। वेदारम्भ सस्कारके बाद ही बालक प्रविष्ट किये जाते है। अभिभावकोको यह प्रतिज्ञा करनी पडती है कि २५ वर्षकी आयुके पूर्व ब्रह्मचारीका

विवाह या वाग्दान संस्कार नही करेगे। अधिकारी परीक्षासे उत्तीर्ण होकर महाविद्यालय (कालेज) मे प्रवेश करते समय ब्रह्मचारीको स्वय भी यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। पाठ्यक्रममे संस्कृत भाषा और वैदिक साहित्यके अध्ययनपर विशेष जोर दिया गया है। प्रारम्भिक श्रेणियोंके छोटे छोटे बच्चे भी संस्कृतके श्लोकोंका शुद्ध और स्पष्ट उच्चारण करते हैं। संस्कृत भाषा और वैदिक साहित्यपर विशेष जोर दिये जानेका यह अर्थ नही है कि अन्य विषयोकी उपेक्षा की जाती है। सरकारी विद्यालयोमे जिन विषयोकी पढाई होती है उन सबकी यहाँ भी होती है और उनमे विद्यार्थियोके ज्ञानकी मात्रा कम नही होती। महाविद्यालय तीन भागोमे विभक्त है—वेद महाविद्यालय, गुरुकुल महाविद्यालय और आयुर्वेद महाविद्यालय। वेद महाविद्यालयसे उत्तम कोटिके वेद प्रचारक गुरुकुल महाविद्यालय से सच्चे देशसेवक, सम्पादक और लेखक तथा आयुर्वेद महाविद्यालयसे ब्राह्मण वृत्तिके वैद्य उत्पन्न करना—इस गुरुकुलका ध्येय है। गुरुकुल महाविद्यालयमे अर्थशास्त्रकी शिक्षा भारतीय परिस्थितिका खयाल रखकर दी जाती है। व्रताभ्यास परीक्षाप्रणाली, इस गुरुकुलकी एक और विशेषता है। इसका उद्देश्य यह है कि ब्रह्मचारी अपने वैयक्तिक तथा सामाजिक कर्तव्योको जिम्मेदारीके साथ, बिना किसी तरहके शासन भयके, नियमपूर्वक पूरा करे। प्रत्येक विद्यार्थी के पास एक व्रताभ्यास-पञ्जिका होती है, जिसमे वह प्रतिदिन यह

लिखता जाता है कि किन किन नियमोका उसने यथासमय पालन किया, और यदि वह किन्ही नियमोका पालन नही कर सका तो क्यो? प्रत्येक मासके अन्तमे इस लेखेके अनुसार अङ्क दिये जाते है। यद्यपि इस गुरुकुलका सारा कार्य आर्यसमाजके सिद्धान्तोके अनुसार होता है, किन्तु यहाँके वातावरणमें साम्प्रदायिक सङ्कीर्णता नही पाई जाती। गुरुकुलके सञ्चालक इस बातपर विश्वास करते है कि सभी धर्मोंमें सत्यका अश है और सभीके लिये उनके मनमें आदरका भाव है। निस्सन्देह अपने धर्मको वे अन्य धर्मोसे ऊँचा समझते है। गुरुकुल वृन्दावनका कार्य भी इन्ही आदर्शोके अनुकूल होता है, लेकिन साधनोकी कमीके कारण वहाँका प्रबन्ध गुरुकुल काँगडीकी अपेक्षा कुछ नीचे दरजेका है। महाविद्यालयमे इतिहास अर्थशास्त्र रसायन आदि विषयोकी शिक्षा नही दी जाती। मोटे तौरपर कहा जा सकता है कि गुरुकुल काँगड़ीके गुरुकुल महाविद्यालयकी कोटि-का कोई महाविद्यालय यहाँ नही है। महाविद्यालय ज्वालापुरमें सस्कृत भाषा और वैदिक साहित्यकी शिक्षापर ही विशेष जोर दिया जाता है। काँगडी और वृन्दावनके गुरुकुलोमे जातपांत छुआछूतका भेदभाव नही माना जाता। पर महाविद्यालय ज्वाला-पुरमे शूद्र कहलानेवाली जातियोके विद्यार्थी नही लिये जाते।

बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा परिषद्‌के अधीन बङ्गालके भिन्न भिन्न स्थानोमे १४ राष्ट्रीय विद्यालय है, जहाँ परिषद्‌के पाठ्यक्रमके अनु-

सार शिक्षा होती है। किन्तु इस परिषद्का मुख्य कार्य आजकल 'कालेज आफ इञ्जीनियरिङ्ग एण्ड टेकनालाजी, बेङ्गाल' के द्वारा होता है जो कलकत्तेके समीप जादवपुरमे है। यहाँ मिकैनिकल इञ्जिनियरिंग, इलेक्ट्रिकल इञ्जिनियरिङ्ग और केमिकल इञ्जिनियरिङ्गके कालेज है। इनके अतिरिक्त जूनियर टेकनिकल कोर्स, 'सर्वे, और ड्राफ्ट्समैनशिप' और 'मिकैनिकल अपरेण्टिस' की भी शिक्षाका प्रबन्ध है। एक प्रकाशन विभाग भी है जिसके द्वारा बँगला भाषामे विविध विषयोंपर उच्च कोटिके ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते है।

प्रेम महाविद्यालयकी ख्याति उसके शिल्प विद्यालयोके कारण है। किन्तु यहाँ एक साधारण हाईस्कूल और वाणिज्य (कामर्स) शिक्षा विभाग भी है। सन् १९२८ ईसवीसे ग्राम कार्यकर्त्ता शिक्षण विभाग भी खोला गया है। शिल्प विद्यालयोमे मिकैनिकल इञ्जिनियरिङ्गका एक कालेज है जिसका पाठ्यक्रम तीन वर्षोका है। मैट्रिकुलेशनकी योग्यता रखने वाले विद्यार्थी उसमें लिये जाते है। इसके अतिरिक्त बढ़ईगीरी और लोहारी, गलीचा बुनना, चीनीके खिलौने और बर्तन बनाना, दर्जीका काम, लोहेका ढालना खराद और फिटिङ्गका काम—इन सबके भी अलग अलग विद्यालय हैं। इन विद्यालयोंमे उपरोक्त शिल्पोके साथ साथ कुछ साहित्यिक-शिक्षा भी दी जाती है। इसी प्रकार हाईस्कूलमें साहित्यिक शिक्षा-के अतिरिक्त कुछ शिल्प शिक्षा भी अनिवार्य है। ग्रामकार्यकर्ता

शिक्षण विभाग उन लोगोंके लिये खोला गया है जो ग्राम सङ्गठनका काम करना चाहते हो और ग्रामवासियोको उनकी आर्थिक, सामाजिक, सफाई एवम् शिक्षा सम्बन्धी अवस्थाको सुधारनेमे विचारपूर्ण और व्यावहारिक सहायता पहुँचाना चाहते हों। यहाँ ग्राम्य जीवन और ग्राम सङ्गठनके कार्यके सम्बन्धमें आवश्यक, भिन्न भिन्न विषयोंकी सुसम्बद्ध, सैद्धान्तिक और व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है। पाठ्यक्रम दो वर्षों का है। उलट फेर करके विद्यार्थियोको आधा समय विद्यालयमे और आधा गाँवोंमे व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये बिताना पडता है।

तलेगांवके नवीन श्री समर्थ विद्यालयकी विशेषता यह है कि वहाँ बौद्धिक और साहित्यिक शिक्षाके साथ शिल्प शिक्षा भी दी जाती है। विद्यालयमे सात श्रेणियाँ है पहली और दूसरी श्रेणियोंमे शिल्पकी ओर रुचि उत्पन्न करनेकी दृष्टिसे ही शिल्प शिक्षाका पाठ्यक्रम रक्खा गया है। इसके बाद एक एक वर्ष तक बुनाई, खेती, और बढ़ईगीरीकी साधारण शिक्षा दी जाती है। छठवी और सातवी श्रेणियोमें शिल्प शिक्षाको प्रधानता दी गयी है। खेती, बढ़ईगीरी और लोहारी, चित्रकला, और चीनी मिट्टीके बर्तन बनाना इनमेसे कोई एक काम अपनी रुचिके अनुसार विद्यार्थीको लेना पडता है। प्रथम पाँच वर्षोंमे प्रति सप्ताह विद्यालयका $\frac{1}{4}$ समय शिल्पशिक्षाके लिये और $\frac{3}{4}$ साहित्यिक शिक्षाके लिये दिया जाता है। अन्तिम दो

श्रेणियोंमें यह क्रम उलट दिया जाता है। $\frac{1}{4}$ साहित्यिक शिक्षाके लिये और $\frac{3}{4}$ शिल्पशिक्षाके लिये दिया जाता है। साहित्यिक विषयोंमें मराठी, संस्कृत, गणित, इतिहास, भूगोल, अंग्रेज़ी और विज्ञानकी शिक्षा दी जाती है। साम्प्रदायिकतासे अलग रहते हुए धार्मिक और नैतिक शिक्षा भी दी जाती है।

असहयोग आन्दोलनके समय जितने विद्यापीठ क़ायम हुए उन सबका देशके राजनैतिक आन्दोलनसे घनिष्ट सम्बन्ध है। गुजरात विद्यापीठका मुख्य उद्देश्य है, स्वराज्य प्राप्तिके चलते हुए आन्दोलनोंके लिये शिक्षा द्वारा चरित्रवान, शक्ति सम्पन्न, संस्कारी और कर्तव्यनिष्ठ कार्यकर्ता तैयार करना। यहाँ खादीको केन्द्रमें रखकर सब शिक्षाकी योजना की गयी है। आरम्भसे अन्त तक सभी श्रेणियोंके पाठ्यक्रममें बौद्धिक और औद्योगिक शिक्षाको एक सा स्थान, महत्व और समय दिया जाता है। पुरातत्व विभागसे प्राचीन खोज और पुस्तक प्रकाशनका कार्य होता है। शिक्षा विभागमें प्रारम्भिक शालाकी पहली श्रेणीसे कालेजकी अन्तिम श्रेणी तकका पाठ्यक्रम उपरोक्त प्रकारसे बनाया गया है। भारतीय अर्थशास्त्रके अध्ययनपर विशेष ज़ोर दिया जाता है और देहातोंकी आर्थिक स्थिति-का निरीक्षण करके भारतवर्षका स्वतन्त्र अर्थशास्त्र निर्माण करनेका प्रयत्न किया जाता है। शिक्षाका माध्यम तो गुजराती भाषा है ही। हिन्दोस्तानी भाषा भी राष्ट्रभाषाके तौरपर अनिवार्य रूपसे पढ़ाई जाती

है। अँगरेजीको पाठ्यक्रममें कोई विशेष स्थान नही दिया गया है। किन्तु प्रत्येक विद्यार्थीके लिये अगरेजी, बँगला, हिन्दी और मराठी, इन चार अर्वाचीन भाषाओमेसे किसी एकका सीखना आवश्यक है, और आजकल विद्यापीठमे केवल अगरेजीका ही प्रबन्ध है। कालेजका पाठ्यक्रम चार वर्षोंका है। प्रथम वर्षमें गुजराती, अर्वाचीन भाषा, उर्दू, सम्पत्ति शास्त्र, ससारके इतिहासकी रूप रेखा, राष्ट्रीय प्रगतिका इतिहास और सस्कृतकी शिक्षा होती है। अन्तिम तीन वर्षोंमे विद्यार्थी साहित्य मन्दिर, समाज विद्या-मन्दिर और वाणिज्य मन्दिर मेसे किसी एकके पाठ्यक्रमके अनुसार पढता है, किन्तु इन सभी मन्दिरोमें भारतीय सम्पत्तिशास्त्र, गांवोकी आर्थिक अवस्था, बही खाता और हिन्दी उर्दू अथवा सस्कृत अनिवार्य विषय है। अर्थ शास्त्रकी शिक्षा महात्मा गान्धी, रस्किन और टाल्स्टायकी दृष्टिसे दी जाती है। यों तो इस विद्यापीठमे हाईस्कूल और कालेजके पाठ्यक्रमभी इसी दृष्टिसे बनाये गये है कि यहाँसे शिक्षा पाकर निकले हुए स्नातक स्वराज्य प्राप्तिके लिये काम करेंगे। किन्तु ग्रामसङ्गठनके लिये कार्यकर्ता तैयार करनेके उद्देश्यसे इसी वर्ष एक ग्राम सेवा मन्दिर अलग भी खोला गया है। इसमे मैट्रिकुलेट और स्नातक लिये जाते है। स्नातकोको तरजीह दी जाती है। विद्यापीठमे विद्यार्थियों और अध्यापकों सबके लिये शुद्ध खादीके वस्त्र पहिनना और सूत कातना अनिवार्य है। जातपांत और छुआछूतका भेद भाव नही

माना जाता। यहाँ आरम्भसे अन्त तक लड़के और लडकियोकी शिक्षा साथ साथ होती है। किन्तु लडकियोकी सख्या बहुत कम है।

बिहार विद्यापीठमे स्कूल और कालेजके पाठ्यक्रम क्रमश आठ और तीन वर्षोके है। कालेज दो खण्डोमे बटा हुआ है—एकके द्वारा राष्ट्रीय विद्यालयोके लिये शिक्षक तैयार किये जाते है और दूसरेके द्वारा ग्रामसगठनके लिये कार्यकर्ता। हिन्दी और अँगरेजी सबके लिये अनिवार्य विषय है। इनके अतिरिक्त शिक्षण विभागके विद्यार्थी गणित, सस्कृत, और इतिहास अर्थशास्त्र राजनीतिमेसे कोई एक विषय ले सकते है। ग्रामसगठन विभागके विद्यार्थियोको अनिवार्य रूपसे इतिहास, अर्थशास्त्र और राजनीति ही लेना होता है। इन्हे अर्थशास्त्रका विशेष ज्ञान कराया जाता है। सभी विद्यार्थी ग्राम्य जीवनका अनुभव प्राप्त करनेके लिये दो महीनेके लिये गाँवोमें भेजे जाते है। खादी पहिरना अनिवार्य है। विद्यार्थियोको प्रतिवर्ष २० हजार गज सूत भी कात कर देना पडता है। इस वर्षसे कुछ विद्यार्थी अपना दिया हुआ सूत विद्यापीठसे खरीद लेते है, और अपने लिये उससे कपडा तैयार कराते है। छुआछूत और जॉतपॉत का भेदभाव यहाँ भी नही माना जाता।

तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठमे साधारण कालेजके अतिरिक्त एक आयुर्वेद महाविद्यालय और एक वैदिक संशोधन मण्डल भी है। वैदिक सशोधन मण्डलका उद्देश्य है वेदोकी चर्चा बढाना और

उनका संशोधन करना। यहाँका आयुर्वेद महाविद्यालय विशेष सफलता पूर्वक चल रहा है। उसके अन्तर्गत एक चिकित्सालय और एक रसशाला भी है। प्रत्यक्ष रूपसे विद्यापीठके सञ्चालनमे कोई स्कूल नही है। किन्तु महाराष्ट्रके प्राय. सभी राष्ट्रीय स्कूल या तो इससे सम्बद्ध है या इसके द्वारा स्वीकृत है।

महाराष्ट्रकी सभी सस्थाओकी एक विशेषता यह है कि वहॉ प्रत्येकमे शारीरिकम व्यायामका अच्छा प्रबन्ध किया गया है। धार्मिक शिक्षामे गीता पाठका नियम भी सभी स्थानोपर अनिवार्यरूपसे पाया जाता है। शायद ही ऐसा कोई स्कूल हो जहॉ गीता न पढाई जाती हो और जिसके अन्तर्गत एक अच्छा अखाडा न हो। इन अखाडोंमें लाठी, तलवार, छुरी, मुद्गर, मलखम, कुश्ती, लेजिम आदिकी शिक्षा नित्य दी जाती है। अन्य प्रान्तोकी सस्थाएं भी शारीरिक व्यायाम-की उपेक्षा नही करती, किन्तु महाराष्ट्रकी संस्थाए इस ओर विशेष रूपसे ध्यान देती है।

काशी विद्यापीठमे स्कूल और कालेजके अतिरिक्त एक प्रकाशन-विभाग भी है जिसकी ओर से हिन्दी भाषामे विविध विषयोंकी पुस्तकें प्रकाशित होती है। एक वर्षसे एक उच्चकोटिकी त्रैमासिक पत्रिका भी निकल रही है। स्कूलका पाठ्यक्रम दस वर्षोंका और कालेजका चार वर्षोंका है। कालेजके प्रथम वर्षमे हिन्दी अग्रेजी और संस्कृत इन तीन भाषाओकी ही विशेष शिक्षा दी जाती है। इनके

अतिरिक्त अर्थशास्त्र और भारतवर्षकी सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक अवस्थापर साधारण व्याख्यान होते हैं। अन्तिम तीन वर्षोंमें अँगरेजी अनिवार्य रूपसे पढ़ाई जाती है। इसके सिवाय इतिहास-अर्थशास्त्र राजनीति, प्राच्य और पाश्चात्यदर्शन, और प्राचीन भारतीय संस्कृति इन तीन विषयोंमेंसे किसी एकका विशेष अध्ययन करना होता है। विद्यार्थियोंके लिये खादी पहनना और सूत कातना अनिवार्य है। जातपाँत और छुआछूतका भेदभाव नहीं माना जाता।

जामिया मिल्लिया इसलामियाँमें स्कूल और कालेजके सिवाय एक प्रकाशन-विभाग भी है जिसके द्वारा उर्दू भाषामें पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। स्कूल और कालेजमें इसलाम धर्मकी भी शिक्षा दी जाती है। यहाँ अधिकतर मुसलमान विद्यार्थी ही हैं। इसकी रचना भी उन्हींकी आवश्यकताओंका खयाल रखकर की गई है, किन्तु अन्य धर्मोंके विद्यार्थी भी प्रविष्ट हो सकते हैं।

विश्वभारती और श्रीदक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन शुद्ध रूपसे शिक्षा संस्थाएँ हैं। पूर्व और पश्चिमके बीच प्रेमका भाव स्थापित करना, भिन्न भिन्न जातियों और सभ्यताओंके बीच सम्बन्ध स्थापित करना और इसके द्वारा सारे मानवसमाजमें एकता लानेका प्रयत्न करना—विश्वभारतीका मुख्य उद्देश्य है। विश्वभारतीका कार्य मोटे तौरपर दो भागोंमें बँटा है शान्तिनिकेतन और श्रीनिकेतन। शान्तिनिकेतनमें

विद्याभवन, कलाभवन और शिक्षा विभाग है। विद्याभवनमे प्राचीन खोज सम्बन्धी कार्य होता है। कलाभवनमे चित्रकला और सङ्गीतकी शिक्षा होती है। शिक्षाविभागमे प्रारम्भिक स्कूलसे कालेजतककी श्रेणियाँ है। यहाँ आरम्भसे अन्ततक लडके और लडकियोकी शिक्षा साथ साथ होती है। पाठ्यक्रम तो कलकत्ता विश्वविद्यालयके ही अनुसार है। किन्तु शिक्षणप्रणालीमे प्राचीन भारतीय पद्धतिका अनुसरण करनेका प्रयत्न किया गया है। शिक्षक और छात्र वृक्षोके नीचे जमीनपर आसन बिछाकर बैठते है। स्कूलमे बौद्धिक शिक्षाके अतिरिक्त कुछ औद्योगिक शिक्षा भी दी जाती है। नियम पालनके सम्बन्धमें अधिकारियोकी ओरसे कोई सख्ती नही की जाती। विद्यार्थियोके प्रतिनिधियोकी एक आश्रम-समिति है जो प्रत्येक छात्रावासके लिये दो तीन विद्यार्थियोकी एक विचार-सभा नियत कर देती है। किसी विद्यार्थीके नियम भङ्ग करनेपर उस छात्रावास-का नायक उसे विचार-समितिके सम्मुख उपस्थित करता है और उसीके द्वारा उसे दण्ड मिलता है। अपना अन्य सब प्रबन्ध भी विद्यार्थी स्वयं करते है। अध्यापक केवल मार्गप्रदर्शन करते है। लडकियोंका छात्रावास नारीभवन कहलाता है। १२ बरससे कम उम्रके लडकोके भोजनका प्रबन्ध भी वही होता है। शेषके लिये एक अलग भोजनालय है। दोनो ही भोजनालयोके प्रबन्धमे विद्या-र्थियों अथवा विद्यार्थिनियोका हाथ रहता है। शान्तिनिकेतनका

वातावरण कवित्व और कलामय है। श्रीनिकेतनमें ग्राम्य जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले कार्योंकी शिक्षा एवम् प्रयोगशालाएँ है।

दक्षिणामूर्तिविद्यार्थीभवनमे एक छात्रावासके अतिरिक्त प्रारम्भिक पाठशाला, हाईस्कूल, अध्यापकशाला और प्रकाशन मन्दिर है। सभी विभागोंमें सहशिक्षणकी पद्धति है। प्रारम्भिक पाठशालामें माण्टीसरी पद्धति और हाईस्कूलमें डाल्टन पद्धतिके अनुसार शिक्षा दी जाती है। इन पद्धतियोंमे भारतीय परिस्थितिके अनुकूल परिवर्त्तन कर लिया जाता है और शिक्षाके सम्बन्धमे नये नये प्रयोग किये जाते है। अध्यापकशालाके द्वारा योग्य अध्यापक तैयार किये जाते है। प्रकाशन विभागसे गुजराती भाषामें शिक्षा विषयक ग्रन्थ प्रकाशित होते है।

कन्या गुरुकुल देहरादून, कन्या महाविद्यालय जालन्धर और श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ, स्त्री शिक्षा सम्बन्धी सस्थाएं है। हिंगणेंका अनाथबालिकाश्रम महिला विद्यापीठसे सम्बद्ध है। इन सबका पाठ्यक्रम बनानेमें इस बातका खयाल रक्खा गया है कि लडकियोंका पाठ्यक्रम लडकोंके पाठ्यक्रमकी अपेक्षा कुछ भिन्न प्रकारका होना चाहिये। कन्यागुरुकुलमे छः सात वर्षकी लडकियाँ ही ली जाती है और जबतक वे गुरुकुलके ११ वर्षोंका पाठ्यक्रम समाप्त न कर लें तबतक साधारणतया उन्हें घर जाने देनेका नियम नही है।

अभिभावकोंको यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि १६ वर्षकी उम्रके पूर्व उनका वाग्दान या विवाह सस्कार नही करेंगे। यहाँ केवल स्त्री अध्यापिकाएं ही है। लडकियोंको पहननेके लिये केवल खादीके वस्त्र दिये जाते है। सस्कृतकी शिक्षापर विशेष जोर दिया गया है। कन्यामहाविद्यालय जालन्धर, उत्तर भारतमें स्त्री शिक्षाकी सर्वप्रथम संस्था है। इसके अन्तर्गत एक प्रकाशन विभाग भी है जिसके द्वारा स्त्री शिक्षोपयोगी ग्रन्थ प्रचुर परिमाणमें प्रकाशित हुए है और अबतक हो रहे है। उपरोक्त महिलाविद्यापीठ भारतवर्षका सर्वप्रथम महिला विश्वविद्यालय है। इसके द्वारा भिन्न भिन्न प्रान्तोंकी विद्यार्थिनियोके लिये उसी प्रान्तकी भाषामे परीक्षा लेनेका प्रबन्ध कर दिया जाता है। महाराष्ट्रके भिन्न भिन्न स्थानोंमे इसके अन्तर्गत ३ कालेज, और १५ स्कूल तथा ट्रेनिङ्ग कालेज है। जालन्धरके कन्या महाविद्यालयसे निकली हुई स्नातिकाओंमेसे भी अनेक अध्यापन कार्यमें प्रवृत्त होती है।

पाँचवाँ अध्याय

आजतककी सफलता ।

पिछले अध्यायमे वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षा सस्थाओंके आदर्श, सिद्धान्त, कार्यक्रम और पाठ्यक्रम आदिपर विचार किया गया है। अब प्रश्न यह है कि अपने अपने आदर्शों और सिद्धान्तोंके अनुसार कार्य करते हुए इन विद्यालयोने आज तक कितनी सफलता प्राप्त की है। क्या देशकी किसी कमीको इन्होने पूरा किया है? क्या अपने आज तकके कामका ब्योरा पेश करते हुए ये कह सकते है कि हमारे द्वारा देशकी कुछ सेवा हो रही है और देशको हमारी आवश्यकता है? यदि इन प्रश्नोका सन्तोषजनक उत्तर न मिल सके तो ऊँचे आदर्शों और सिद्धान्तोंके होते हुए भी इनकी कोई उपयोगिता नही है। किसी भी आदर्श या सिद्धान्तके वास्तविक मूल्यकी परख व्यावहारिक क्षेत्रमे ही हो सकती है।

किन्तु इन विद्यालयोकी सफलताका हिसाब लगाते समय उन कठिनाइयो और बाधाओंका भी खयाल रखना होगा जिनका

सामना करते हुए इन्हें आगे बढना पड रहा है। सबसे पहिलो कठिनाई आर्थिक है। अपनी योजना और पाठ्यक्रमके अनुसार पूरा पूरा काम करनेके लिये जितनी सम्पत्ति चाहिये उतनी किसी भी संस्थाके पास नहीं है। बङ्गोय, राष्ट्रीय शिक्षा परिषद्, विश्व भारती, प्रेम महाविद्यालय, काशीविद्यापीठ और महिला विद्या पीठमेंसे प्रत्येकके पास कुछ स्थायी सम्पत्ति है। यद्यपि उसकी आय इनकी समस्त योजनाओंको कार्यान्वित करनेके लिये पर्याप्त नहीं है, किन्तु अन्य संस्थाओंके लिये तो उनके खर्चके किसी अंशका भी स्थायी प्रबन्ध नही है। दूसरी एक बहुत बडी कठिनाई है कार्यकर्ताओंके कमी की। ऐसे कार्यकर्ता बहुत ही कम है जो अपना सारा समय इन्ही संस्थाओंको दे सकें। उन्हे देशके सामाजिक धार्मिक और राजनैतिक आन्दोलनोमे भी भाग लेना पडता है। बिहार विद्या-पीठ और काशी विद्यापीठ तो अपने अपने प्रान्तोके राजनैतिक कार्यों-के केन्द्र हो रहे हैं। शिक्षा सम्बन्धी कार्यके महत्वको समझते हुए भी देशकी वर्तमान अस्थिर अवस्थाके कारण इनके कार्यकर्ता एकाग्र चित्तसे शिक्षाके कार्यमें नही लग सकते। तीसरी कठिनाई हमारे देशकी वर्तमान विदेशी सरकारके द्वारा उपस्थित होती है—कुछ तो अप्रत्यक्ष रूपसे और कुछ प्रत्यक्ष रूपसे। सरकारी शिक्षानीतिने देशकी मनोवृत्तिको इस प्रकारसे फेर दिया है कि लोग शिक्षाके महत्वको सरकारी नौकरीके पैमानेसे नापते हैं। यद्यपि सरकारी कालेजों

के ग्रेजुएटोंमेंसे भी ६६ प्रतिशतको सरकारी नौकरियाँ नही मिलतीं, किन्तु विद्यापीठोंने तो उधरसे अपना मुँह ही मोड लिया है। इसलिये लोग अपने लडकोंको सरकारी कालेजोमें ही भेजना चाहते हैं। हर एक यही सोचता है कि शायद हमारा ही लडका उन एक फीसदी ग्रेजुएटोंमें हो जिन्हें सरकारी नौकरी मिल जाती है। गुजरात और महाराष्ट्रके जिन हिस्सोमे लोग ज़्यादातर व्यापारसे अपनी जीविका कमाते है वहाँ तो राष्ट्रीय विद्यालयोंके लिये विद्यार्थी मिलनेमे अधिक बाधा नही पडती। लेकिन अन्य प्रान्तोंके राष्ट्रीय विद्यालय अपने अल्प साधनोंके द्वारा जितने विद्यार्थियोकी शिक्षाका प्रबन्ध कर सकते है—उतने विद्यार्थी भी उन्हें नही मिलते। इसके अतिरिक्त इन सब सस्थाओपर सरकारकी कडी निगाह तो रहती ही है। वह इन्हें हर प्रकारसे क्षति पहुँचानेका प्रयत्न करती रहती है। कई बरसो तक गुरुकुल कॉगडीको सङ्कटके दिन बिताने पडे। समर्थ विद्यालय तो ग़ैर कानूनी मजमा करार दे दिया गया। और शायद ही कोई ऐसी सस्था हो जिसके कार्यकर्त्ता सरकारके कोप भाजन न हों।

इन बाधाओके होते हुए भी इन संस्थाओको आजतक जितनी सफलता मिली है वह कम नही है। किसी विद्यालयकी शिक्षाके मूल्यका बहुत कुछ अन्दाज वहाँसे निकले हुए विद्यार्थियोंके कार्योंसे लगाया जा सकता है। अतः यदि इन विद्यालयोके स्नातकोंकी ओर दृष्टि डाली जाय और सरकारी विद्यालयोंके ग्रेजुएटोसे उनकी तुल-

ना की जाय तो इस विषयपर बहुत कुछ प्रकाश पड सकता है। बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा परिषदके 'कालेज आफ इञ्जीनियरिङ्ग एण्ड टेकनालाजी' तथा प्रेम महाविद्यालयके शिल्प विद्यालयोंकी शिक्षा तो ऐसी है कि वहाँसे निकले हुए विद्यार्थियोंके सामने जीविका उपार्जन करनेकी कठिनाई आ नही सकती। इसलिये जीविकाकी दृष्टिसे तो इनकी तुलना साधारण सरकारी कालेजोंके ग्रेजुएटोंसे नही की जा सकती। किन्तु इसी कोटिके अन्य सरकारी विद्यालयोंकी तुलनामें यहाँके निकले हुए विद्यार्थी कम नही साबित होते। इतना ही नही बरन् 'कालेज आफ इञ्जीनियरिङ्ग एण्ड टेकनालाजी' अपने तरहकी सस्थाओंमे ऊँचा स्थान रखता है। यहाँके ग्रेजुएट टाटाकम्पनी तथा अन्य बडे बडे कारखानोमे सफलता पूर्वक काम कर रहे है।

किन्तु मुख्य रूपसे तो उन राष्ट्रीय विद्यालयोके सम्बन्धमे विचार करना है जहाँ औद्योगिक शिक्षा या तो दी ही नही जाती, या थोडी बहुत दी भी जाती है तो इस दृष्टिसे नही कि उसके द्वारा जीविकोपार्जन हो सके। साधारण सरकारी कालेजोंसे इन्ही की तुलना की जा सकती है। ऐसे विद्यालयोमे कांगडी और वृन्दाबनके गुरुकुल तथा असहयोग आन्दोलनके समय स्थापित, काशी, अहमदाबाद, पटना और पूनेके विद्यापीठ और दिल्लीका जामिया मिल्लिया इसलामियाँ है। आजतक इन सब सस्थाओंसे निकले हुए स्नातकोकी सख्या इस प्रकार है—

गुरुकुल कांगडी	१८४
गुरुकुल वृन्दाबन	३३
काशी विद्यापीठ	५१
गुजरात विद्यापीठ	२९७
बिहार विद्यापीठ	६२
तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ	२३१
जामिया मिल्लिया इसलामियां	७१
	९२९

इनमेंसे गुरुकुलकांगडी और तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठको छोडकर अन्य सस्थाओंके स्नातकोकी सख्या सन् १९२९ के आरम्भ तककी है। गुरुकुल कांगडी और तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठकी सख्या १९२८ तक की है।

गुरुकुल कांगडीके १८४ स्नातको मेसे ६ का देहान्त हो चुका है और ४ के बारेमे ठीक ठीक सूचना नही मिली कि वे कहां कौन सा काम कह रहे है। शेष १७४ मे से ५० अध्यापन कार्यमे लगे है, ३ राजनैतिक कार्य कर रहे है, जिनमेंसे एक लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित सर्वेंट्स आफ दी पीपुल सोसाइटीके सदस्य है, १२ पत्र सम्पादन कार्यमे लगे है, २२ स्नातक सामाजिक एवम् धार्मिक प्रचारके कार्योंमें लगे है, जिनमेसे कुछ आफ्रीका और फिजी तक पहुँचे है, ३७ चिकित्सकका कार्य कर रहे है और ४४ व्यापार व्यव-

साय और जमीन्दारी आदि स्वतन्त्र पेशोंमे लगे हुए है। ६ अभी उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे है। इस गुरुकुलके स्नातकोमेंसे ६० अच्छे लेखक है और इनमेसे २६ ने पुस्तकें लिखी है।

गुरुकुल वृन्दावनके ३३ स्नातकोमेंसे १५ अध्यापन कार्यमें तथा ४ धर्मोपदेशमें लगे है। १० वैद्य है, और शेष ४ स्वतन्त्र रूपसे जीविकोपाजन में लगे है।

काशी विद्यापीठके ५१ स्नातकोमेसे २ अभी विशेष अध्ययनमें लगे है, ६ अध्यापक है, ४ पत्रसम्पादन कार्यमें लगे है, ३ खादीका काम कर रहे है और ११ कांग्रेस अछूतोद्धार मजदूर सगठन आदिके काममे लगे है। शेष २२ व्यापार व्यवसाय कृषि आदि स्वतन्त्र पेशेसे अथवा नौकरीसे जीविकोपार्जनमें लगे है। कांग्रेस अछूतोद्धार आदिका काम करने वाले ११ स्नातकोमेसे ५ लाला लाजपतरायकी सर्वेन्ट्स आफ दि पीपुल सोसायटीमें है जिनमेंसे ३ तो उसके आजीवन सदस्य है।

लगभग १ वर्ष पूर्व गुजरात विद्यापीठके स्नातकोकी सूची उनके कार्योके विवरण सहित तैयारी की गई थी। उस समय कुल २६८ स्नातक थे, जिनमेसे १६२ के कार्योका पता लग सका था, जिसका ब्योरा इस प्रकार है—अध्यापन कार्यमें ६६, पत्रसम्पादनमे ८, देशके रचनात्मक कार्योमें ४०, स्वतन्त्र पेशोमे २५ और नौकरीमें ५३। तारीख १७ नवम्बर १६२६ के गुजराती नवजीवनमे उक्त

विद्यापीठके स्नातकसङ्घके मन्त्रीका एक पत्र छपा है। जिससे मालूम होता है कि इधर फिर इसका हिसाब लगाया गया है। इस हिसाबमें आजतकके २६७ स्तानकोमेसे ६३ के सम्बन्धमें जो पता लगा है वह इस प्रकार है—१४ गुजरात विद्यापीठमे अध्यापक है, ११ अन्य राष्ट्रीय शालाओमे अध्यापक है, २२ अन्य सस्थाओंमें काम कर रहे है, २७ बारडोली तालुका, मजदूर सङ्घ, अन्त्यज सेवामण्डल और चरखासङ्घ इत्यादिके द्वारा राष्ट्रीय कार्योमें लगे है, ११ पत्र सम्पादनका काम कर रहे है और ८ सरकारी शिक्षा सस्थाओमे है। मन्त्रीने अपने पत्रमे यह भी लिखा है कि २६७ स्नातकोमेसे शुद्ध खादीके वस्त्र पहनने वालोकी संख्या कम से कम १२० है। जो लोग और सब कपडे खादीके पहनते हुए भी केवल धोती भी मिलकी पहनते है उनकी गणना खादी पहनने वालोंमें नही की गई है। यहाँ यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि काशी विद्यापीठ और बिहार विद्यापीठके स्नातकोमेसे बहुत कमको छोडकर सबही केवल खादीके वस्त्र पहिनते है।

बिहार विद्यापीठके ६२ स्नातकोंमेंसे १४ के बारेमे कोई सूचना नही मिली है। शेष ४८ मे से १६ अध्यापनकार्यमे, ८ पत्रसम्पादनमें, ५ खादी कार्यमे, १ ग्राम सङ्गठनमे, २ विशेष अध्ययनमे, १२ खेती व्यवसाय आदि स्वतन्त्र पेशोमे और १ नोकरीमें लगे है।

तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठके २३१ स्नातकोमेसे ७६ के बाबत

समाचार मिल सका है जिनमेंसे ४२ अध्यापन कार्यमे, ३ पत्र-सम्पादनमे, ६ देशके रचनात्मक कार्योंमे १५ स्वतंत्र पेशोंमे और १० नौकरीमे लगे है।

जामियाँ मिल्लिया इसलामियाँके कुल ७१ स्नातकोके कार्योंका कोई विस्तृत विवरण प्राप्त नही हो सका है। किन्तु उक्त सस्थाके रजिस्ट्रारने लिखा है कि वे, शिक्षाकार्य, पत्रसम्पादन, और व्यापार आदिमे लगे है, और कुछ विशेष अध्ययनके लिये, यूरपके देशोंमे गये है।

इस विवरणसे स्पष्ट है कि जिस सस्थाने जिस उद्देश्यसे कार्य प्रारम्भ किया है, उसके स्नातकोके द्वारा उन उद्देश्योकी पूर्ति हो रही है। गुरुकुल काँगडीके स्नातकोमेसे धर्मप्रचारक, राजनैतिक कार्यकर्ता, लेखक और वैद्य निकले। इसी प्रकार विद्यापीठोके अधिकाँश स्नातकोने देशके सामाजिक और राजनैतिक कार्योंको अपने जीवनका लक्ष्य बनाया। जिन जिन कार्योंमे ये सब स्नातक लगे हुए है—उन्हे मोटे तौरपर इन पाँच भागोमे बाँटा जा सकता है –

१ राष्ट्रीय विद्यालयों और महाविद्यालयोमे अध्यापनकार्य तथा विशेष अध्ययन

२ पत्रसम्पादन कार्य

३ धार्मिक और सामाजिक प्रचार, कांग्रेस, मजदूर सङ्गठन, ग्राम-सङ्गठन, खादी इत्यादि रचनात्मक कार्य

४ स्वतंत्र पेशा

५ नौकरी

उपरोक्त सातों सस्थाओंमेसे किस किसके कितने कितने स्नातक इन पाँचो कोटिके कार्योंमेंसे किस किस कोटिके कार्यमे लगे है—यह अगले पृष्ठकी तालिकासे प्रगट होगा।

संस्थाका नाम	अध्यापन और अध्ययन	पत्र सम्पादन	रचनात्मक राष्ट्रीय-कार्य	स्वतन्त्र पेशा	नौकरी	योग	जिनके सम्बन्धमें मालूम नहीं	स्नातकोंकी कुल संख्या
गुरुकुलकाँगड़ी	५६	१२	२५	८१	×	१७४	४	१८४
गुरुकुलवृन्दावन	१५	×	४	१४	×	३३	×	३३
काशी विद्यापीठ	११	४	१४	१७	५	५१	×	५१
गुजरात विद्यापीठ	४७	११	२७	×	८	९३	२०४	२९७
बिहार विद्यापीठ	२१	८	६	१२	१	४८	१४	६२
तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ	४२	३	९	१५	१०	७९	१५२	२३१
जामिया मिल्लिया इसलामियाँ	×	×	×	×	×	×	७१	७१
	१९२	३८	८५	१३९	२४	४७८	४४५	९२९

इस तालिकासे यह स्पष्ट है कि जिन ४७८ स्नातकोंके सम्बन्धमें जानकारी हासिल हो सकी है उनमेसे ३१५ (१६२ + ३८ + ८५ = ३१५) अध्यापन, पत्रसम्पादन तथा कांग्रेस, समाज सुधार, ग्राम-सङ्गठन, खादी कार्य इत्यादि राष्ट्रीय कार्योंमें लगे है, १३६ कृषि व्यापार आदि स्वतन्त्र पेशोमे लगे है और केवल २४ अन्य संस्थाओ या व्यक्तियोंकी नौकरी करते है। इसका अर्थ यह हुआ कि इनमेसे ६६ प्रतिशत सार्वजनिक कार्यों मे है ३० प्रतिशत स्वतन्त्र रूपसे व्यापार व्यवसाय आदि कर रहे है और ४ प्रतिशत नौकरी करते है। शायद यह कहनेकी आवश्यकता नही कि जो लोग प्रत्यक्ष रूपसे किसी सार्वजनिक कार्यमे नही लगे हुए है, वे भी अपनी जीविकोपार्जनका कार्य करते हुए अपने अपने स्थानके सार्वजनिक कार्योंमे दिलचस्पीसे भाग लेते है। ऊपरकी तालिकासे स्नातकोंके कार्योंका विश्लेषण करके केवल यह दिखलानेका प्रयत्न किया गया है कि उनका अधिकांश राष्ट्रीय कार्योंमे लगा हुआ है। बेकारीकी समस्या तो अभी इन संस्थाओंके सामने है ही नही, और जबतक इन्ही सिद्धान्तोपर काम होता रहेगा तबतक आवेगी भी नही। क्योकि आज कल जितने स्नातक प्रतिवर्ष निकलते है उनसे अधिककी राष्ट्रीय कार्योंके लिये मॉग रहती है। ऐसे लोगोकी संख्या कम नही है जो राष्ट्रीय विद्यालयोमें अपने बालकोको भेजनेमे केवल इसीलिये हिचकते है कि वहॉसे निकलने-पर उनकी जीविकाका कोई प्रबन्ध न होगा। ऊपरके अङ्कोंसे स्पष्ट है

स्नातक पहलेसे ही इस कठिनाईका सामना करनेके लिये तैयार रहते है। इस दृष्टिसे तो उनकी अवस्था उस १ प्रतिशतसे भी अच्छी है जिसे सरकारी नौकरी मिल तो जाती है लेकिन न मिलनेपर जिसके लिये कोई दूसरा चारा ही नही है।

ऊपरके ब्यारेमे विश्वभारती और दक्षिणामूर्ति विद्यार्थीभवन के सम्बन्धमे कोई बात नही कही गई है। विश्वभारतीने अपना पाठ्यक्रम कलकत्ता विश्वविद्यालयसे मिला कर रक्खा है और कुछ को छोड कर प्राय सभी विद्यार्थी उक्त विश्वविद्यालयकी परीक्षाओ के लिये ही तैयार किये जाते है। दक्षिणामूर्ति विद्यार्थीभवनको स्थापित हुए अभी इतने दिन नही हुए कि उसके विद्यार्थियोके जीवनसे उस सस्थाकी महत्ता परखी जा सके।

अभीतक इन सस्थाओकी उपयोगिताका हिसाब केवल उनके स्नातकोके कार्योको देख कर लगया गया है। किन्तु देशी भाषाओ-के साहित्यकी उन्नति करनेमे भी उन्होने बहुत हाथ बटाया है। प्राय सभी मुख्य मुख्य सस्थाओने एक एक प्रकाशन विभाग खोल रक्खा है और उसके द्वारा उस प्रान्तकी भाषामे विविध विषयोके ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते है। भारतीय भाषाओमे स्कूलो और कालेजोके लिये पाठ्य पुस्तके मिलनेमे जितनी कठिनाई आजसे दस वर्ष पहले थी उतनी आज नही है। अन्य पुस्तक प्रकाशकोका भी इन सस्थाओके कारण प्रोत्साहन मिला है। स्त्रीशिक्षा विषयक

साहित्यके प्रकाशित करनेकी ओर जालन्धरके कन्यामहाविद्यालयने विशेष प्रयत्न किया है। इसकी स्थापनाके समय हिन्दी भाषामे कन्या पाठशालाओमे रखी जाने योग्य पुस्तके थी ही नही। किन्तु आज सभी विषयोकी पुस्तके मौजूद है जो अन्य प्रान्तोकी कन्या पाठशालओमे भी पाठ्य पुस्तको के तौरपर रखी गई है।

यहाँतक तो रुपये पैसेके रूपमे या अङ्कोंसे प्रगट किये जाने योग्य हानि लाभकी तुलना हुई। किन्तु ससारके सभी लाभ सिक्को या अङ्कोके द्वारा व्यक्त नही किये जा सकते। राष्ट्रीय सस्थाओका वास्तविक महत्व उनके उस प्रयत्नमे है जो देशके वर्तमान वातावरण और समाजके दूषित-परम्परामूलक मनोवृत्तिको बदलनेके लिये किया जा रहा है। यह तो अङ्को या व्यक्तिगत लाभोके रूपमे प्रगट नही किया जा सकता। सरकारी विद्यालयोके पाठ्यक्रममे जो सुधार हुआ है और होता जा रहा है उसके मूलमे राष्ट्रीय शिक्षाका आन्दोलन ही है। देशपरसे विदेशी सरकारके आतङ्कको कम करनेमे, और निर्भयताका सचार करनेमे इन सस्थाओसे जो सहायता मिली है और मिल रही है उसका नाप किसी पैमानेके द्वारा तो किया नही जा सकना। राष्ट्रके लिये त्याग करनेकी जो भावना दिन प्रति दिन बढती जा रही है उसे किन अङ्कोके द्वारा प्रगट किया जा सकता है! शासनकार्यके लिये आज सिविल सर्विसके ओहदोपर बड़ी बड़ी तनख्वाहे पानेवाले अधिकांश विदेशी और कुछ देशी लोग नियुक्त

है। हिन्दोस्तानकी आर्थिक अवस्थाके साथ इन तनख्वाहोका कोई मेल नही बैठता। राष्ट्रीय सस्थाओकी प्रवृत्ति इस घातक असामञ्जस्यको दूर करनेकी ओर है। उनकी चेष्टा यह है कि बडीसे बडी योग्यताके लोग निकले, किन्तु वे अपने कार्योंके लिये उतनी ही बडी तनख्वाहे भी न मॉगे। यह इन सस्थाओकी चेष्टामात्र नही है, किन्तु इसमे वे सफल भी हो रहे है। इन सस्थाओके कार्यकर्त्ता और यहॉसे निकले हुए स्नातक जितने पुरस्कारपर राष्ट्रका काम करते है उतने पुरस्कारपर उसी योग्यताके अन्य व्यक्ति कठिनाईसे मिलेगे।

अब स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी संस्थाओकी ओर दृष्टि डालिये। इनमे चार मुख्य है। कन्यामहाविद्यालय जालन्धर, कन्यागुरुकुल देहरादून, अनाथबालिकाश्रम हिगणे और श्रीमतीनाथीबाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ पूना। इन संस्थाओके द्वारा सबसे बडा लाभ तो यह हुआ है कि इनके द्वारा स्त्रीशिक्षाके लिये देशमे एक नई लहर उठी। सरकारकी ओरसे तो इसके लिये कोई प्रयत्न ही नही किया गया। जिन दिनो जालन्धरमें कन्या महाविद्यालय या हिगणेमे महिलाश्रम स्कूलकी स्थापना हुई थी उन दिनो उन प्रान्तोमे इने गिने लोग ही ऐसे थ जो स्त्रियोकी शिक्षा-समस्यापर विचार करते थे। उनके मार्गमे अनेक प्रकारकी कठिनाइयॉ आई किन्तु उन सबका सामना करते हुए वे अपना काम करते गये। आज सारा देश इसकी आवश्यकताका अनुभव करते

हुए उसके लिये प्रयत्नशील है। समाजकी अनुचित रूढियोको तोडनेमे भी स्त्री शिक्षासे बहुत सहायता मिली है। पञ्जाब तथा महाराष्ट्रमे लडकियोका विवाहवय बढानेमे इन सस्थाओका विशेष हाथ रहा है। जातपाँतके अनुचित भेदभावको तोडनेमे भी इनसे बहुत सहायता मिली है। सन् १६२६ के आरम्भ तक पूनेके महिला विद्यापीठसे ६२ तथा जालन्धरके कन्यामहाविद्यालयसे ३४ स्नातिकाए निकल चुकी थी। उनके अतिरिक्त विद्यापीठकी एएट्रेन्स परीक्षासे २५०, सेकेण्डरी स्कूल सर्टीफिकेट परीक्षासे ४१ तथा प्राइमरी स्कूल अध्यापन परीक्षासे ४६ विद्यार्थिनियाँ उत्तीर्ण हो चुकी थी। इन सबने तथा नार्मल स्कूलसे निकली हुई अध्यापिकाओने शिक्षा प्रचारका कार्य बहुत अधिक किया है। पूनेके महिला विद्यापीठने १० वर्षके भीतर महाराष्ट्रमे स्त्रीशिक्षाकी इतनी सस्थाएं कायम की है जितनी आरम्भसे आजतक सरकारने नही की। किन्तु ऐसी सस्थाओकी उपयोगिताका अनुमान इन कार्योकी अपेक्षा उन देवियोके जीवनसे अधिक लगाया जा सकता है जो यहाँसे शिक्षा पाकर अपने अपने परिवारको शिक्षित और सुन्दर बनानेमें लगी है। इसका तो कोई लेखा उपस्थित किया नही जा सकता।

ऊपरका विवरण इस बातको अच्छी तरह सिद्ध करता है कि राष्ट्रीय शिक्षा सस्थाओको अपने कार्यमे काफी सफलता मिल रही है। प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो ही प्रकारसे वे देशको लाभ पहुँचा रही

है। जो लोग कहते है कि राष्ट्रीय शिक्षाका प्रयोग असफल हो रहा है उनकी एक बडी दलील यह होती है कि इन सस्थाओकी सख्या घटती जा रही है। असहयोग आन्दोलनके समय जितने राष्ट्रीय विद्यालय थे उनमेसे अनेक बन्द हो चुके और जो थोडेसे रह गये है, उनमे भी विद्यार्थियोकी सख्या बहुत कम है। यह बात बिलकुल सत्य है, किन्तु इससे यह नही साबित होता कि राष्ट्रीय शिक्षाका प्रयोग असफल हो रहा है या इन सस्थाओकी उपयोगिता कम है। असहयोगके समय यदि इन विद्यालयो और उनके विद्यार्थियोकी सख्या अधिक थी और आज कम है तो इन दोनो ही बातोका कारण राजनैतिक है। असहयोगकी तरहका ही दूसरा आन्दोलन आरम्भ होनेपर ऐसी सस्थाओं और उनके विद्यार्थियोकी सख्या फिर बढ सकती है, लेकिन केवल इसी कारण उस अवस्थामे यह नहीं कहा जा सकेगा कि ऐसी सस्थाओका प्रयोग सफल हो रहा है। भावावेशमे किये गये कामसे वास्तविकताका पता नही लगता। इन विद्यालयोकी तुलना सरकारी विद्यालयोसे करनेके लिये देखना यह होगा कि स्थायी रूपसे समाजको कौन अधिक हानि या लाभ पहुँचा रहा है। और इस दृष्टिसे राष्ट्रीय विद्यालयोकी उपयोगिता बिलकुल स्पष्ट है। विद्यार्थियोकी सख्या कम है, किन्तु उसका कारण तो सरकारी नौकरियोंके मोहके सिवाय और कुछ नही है। महाराष्ट्रमे खामगांव, येवला, वाई, नलेगांव और सासवने आदि

स्थानोके विद्यालय इस बातके प्रमाण है कि जिस स्थानके लोग अपनी जीविकाके लिये सरकारी नौकरियोकी अपेक्षा नही रखते, वहां राष्ट्रीय विद्यालयोमे ही अधिक विद्यार्थी जाते है। महाराष्ट्रके उपरोक्त स्कूल बहुत ही सफलता पूर्वक चल रहे है।

छठवाँ अध्याय ।

वर्तमान आवश्यकताएँ और भावी कार्यक्रम ।

पिछले तोन अध्यायोमे वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षा सस्थाओके उद्देश्य, उनकी वर्तमान अवस्था और आजतककी सफलतापर सक्षेपमे विचार किया गया है। उससे प्रगट होता है कि बहुत सी बातोमे इनमे परस्पर समानता है और बहुत सी बातोमे भिन्नता भी है। भिन्नता विस्तारकी बातोमे है, और एकता सिद्धान्तकी बातोमे। राष्ट्रकी उन्नतिके लिये शिक्षाकी व्यवस्था करना सभीका प्रधान लक्ष्य है। गुरुकुल आदिने धार्मिक और सामाजिक दृष्टिसे इस कामको उठाया, कुछ संस्थाओने औद्योगिक दृष्टिसे और असहयोगके समयकी सस्थाओने राजनैतिक दृष्टिसे। गुरुकुलोने सामाजिक और धार्मिक प्रचारक उत्पन्न किये, औद्योगिक विद्यालयोंने कार्यकुशल इञ्जीनियर और कारीगर, तथा विद्यापीठोने राजनैतिक और सामाजिक कार्यकर्ता। ये सब सस्थाएं शिक्षा सस्थाएं तो है ही, किन्तु शिक्षाकी योजना बनाते समय अपने लक्ष्यकी ओर

ही विशेष ध्यान रखती है। उस लक्ष्य तक पहुँचनेके लिये तत्काल जिन बातोंकी आवश्यकता प्रतीत होती है उनपर विशेष जोर दिया जाता है। शेषकी उपेक्षा तो नहीकी जाती किन्तु शिक्षा, शिक्षाकी दृष्टिसे ही दी जाय इस प्रकारका उदार विचार भी नही रक्खा जाता। अबतक इसकी सम्भावना भी न थी। जिन परिस्थितियोमे इन सस्थाओंकी स्थापना हुई उन परिस्थितियोमे उन विशेष बातोंकी ओर ही ध्यान देना एक मात्र आवश्यक और अनिवार्य था। किन्तु अब परिस्थिति बदलती जा रही है और कार्यक्षेत्र अधिकाधिक समतल और विस्तृत होता जा रहा है। ऐसी अवस्थामे शिक्षाकी योजनामे केवल तत्कालीन अथवा साम्प्रदायिक आवश्यकताओका ही खयाल रखना उचित न होगा। ऐसा कहनेका यह अभिप्राय नही है कि तत्कालीन आवश्यकताओका खयाल न रखा जाय या उनपर जोर न दिया जाय। उनका विचार करना तो अनिवार्य है किन्तु उनके साथ साथ अन्य स्थायी बातोकी भी अब उपेक्षा नही की जा सकती। इस दृष्टिसे जो पाठ्यक्रम बनाया जायगा और जो शिक्षा प्रणाली निश्चितकी जायगी उसका पूरा पूरा लाभ इसी समय दृष्टिगोचर न होगा किन्तु आगे चलकर राष्ट्रनिमाणके कार्यमें उससे बहुत अधिक सहायता मिलेगी।

शिक्षाके नवीन प्रकारोंका हम बहुत कम उपयोग करते है। अपने देशमे बाल-शिक्षाको कोई विशेष महत्व नही दिया

जाता। यहाँ प्रायः यह समझा जाता है कि बच्चोके पढानेके लिये किसी विशेष योग्यताकी आवश्यकता नही है। पर बात ऐसी नही है। शिशु-शिक्षाका महत्व सबसे अधिक है। अपने देशमें शिशु-शिक्षा-के प्रति जो उपेक्षाभाव हम पाते हे वह अन्यत्र कही नही दिखलाई पडता। यदि हम बालकोकी आरम्भिक शिक्षाका समुचित प्रबन्ध करे तो इससे देशकी एक बडी कमी पूरी होगी और हम इस प्रकार अन्य संस्थाओको भी इस विषयमे आवश्यक सुधार करनेके लिये विवश कर सकेंगे। पाश्चात्य देशोमे शिक्षाकी कई प्रणालियाँ इस समय प्रचलित है। नित्य नये नये प्रयोग होते रहते है और इन प्रयोगोका फल प्रकाशित होता रहता है। हमको भी चाहिये कि इस शिक्षाके विभिन्न प्रकारोकी परख करे और जो प्रकार हमको उपयुक्त जॅचे उसे प्रयोगमे लावे। शिक्षाके सिद्धान्तोको ध्यानमे रखकर हम-को एक सुन्दर शिक्षा-प्रणालीका निर्माण करना चाहिये। इन्ही सिद्धान्तोंके अनुसार पाठ्य-पुस्तकोकी भी रचना होनी चाहिये। राष्ट्रीय विद्यालयोंको मिलकर अध्यापकोके लिये एक ट्रेनिंग कालेज भी खोलना चाहिये, जहाँ शिक्षाके सिद्धान्तो और प्रकारोका अध्ययन किया जाय और नवीन प्रकारोका अनुसन्धान भी हो सके। राष्ट्रीय शिक्षाकी सबसे बडी आवश्यकता यह है कि उसके लिये ऐसे उत्साही और योग्य शिक्षक मिले जिन्होंने शिक्षाको अपने जीवनका मुख्य ध्येय बना लिया हो।

दूसरा प्रश्न देशी भाषाओंका है। प्रत्येक सस्थामे शिक्षाका माध्यम उस प्रान्तकी भाषा है। बाहरी दुनियांकी प्रगतिसे सम्बन्ध बनाये रखनेके लिये तथा पाठ्यपुस्तकोंकी कमीके कारण अँगरेजी भाषा भी एक प्रकारसे अनिवार्य रूपसे ही सिखाई जाती है। किन्तु अपने ही देशके अन्य प्रान्तोंकी भाषासे विद्यार्थीका परिचय नही होने पाता। नतीजा यह होता है कि अन्य प्रान्तोंकी रीति रिवाज सम्बन्धी विशेषताओं तथा उसके साहित्यसे वह सर्वथा अनभिज्ञ रहता है। यह एक बडी कमी है और इसको दूर करने-का प्रयत्न किया जाना चाहिये। जिन प्रान्तोंकी मातृभाषा हिन्दो-स्तानी नही है उन प्रान्तोंके राष्ट्रीय विद्यालयोंने तो राष्ट्रभाषाके तौर पर हिन्दोस्तानी भाषाकी थोडी बहुत शिक्षा अनिवार्य रूपसे देनेका प्रयत्न आरम्भ किया है। किन्तु अभी तक हिन्दी भाषा भाषी प्रान्तोंमे अन्य प्रान्तीय भाषाओंकी शिक्षाका प्रबन्ध नही किया गया। बॅगला और गुजराती तो ऐसी भाषाएं है जिन्हे हिन्दी बोलने वाले बहुत ही कम प्रयाससे सीख लेते है। पाठ्यक्रममे इनका कोई स्थान न रहने पर भी विद्यार्थी इन भाषाओंकी पुस्तकें पढने लगते है। यही बात हिन्दीके सम्बन्धमे बगाल या गुजरात वालोंकी है। बहुत ही थोडे प्रयत्नसे वे हिन्दी भाषा सीख सकते है। किन्तु उत्तर भारत वालोंके लिये दक्षिणकी और दक्षिण वालोंके लिये उत्तरकी भाषाएं इतनी सुगम नही है। उत्तर और दक्षिणके बीच

घनिष्टता बढ़ानेके लिये यह आवश्यक है कि दोनो हीको एक दूसरेकी भाषाओंका ज्ञान हो। अत: उत्तर भारतकी प्रत्येक संस्थामे मराठी, कर्नाटकी, तेलगू आदि भाषाओंमेंसे किसी एक की शिक्षाका प्रबन्ध अवश्य होना चाहिये। दक्षिण प्रान्तोंमें तो राष्ट्र भाषा प्रचारके रूपमें यह प्रयत्न किया ही जा रहा है।

तीसरा प्रश्न विदेशी भाषाका है। बाहरकी दुनियाँसे बौद्धिक सम्बन्ध स्थापित रखने तथा भिन्न भिन्न देशोंके उन्नत साहित्यका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये विदेशी भाषाका जानना आवश्यक है। अभी तक इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये अँगरेजी ही एक मात्र भाषा रही है। विद्यापीठोका पाठ्यक्रम बनानेमे सिद्धान्त तो यही रक्खा गया है है कि कोई भी विद्यार्थी किसी भी विदेशी भाषाका ज्ञान प्राप्त किये बिना भी अपने विद्यापीठकी ऊँचीसे ऊँची परीक्षा पास कर सके। महाराष्ट्र प्रान्तीय शिक्षा सम्मेलन द्वारा पाठ्यक्रमपर विचार करनेके लिये नियुक्त कमेटीने पिछले वर्ष अपनी रिपोर्टमे कहा था कि जिस विद्यालयके विद्यार्थियोके लिये विदेशी भाषाकी शिक्षा अनिवार्य हो वह विद्यालय राष्ट्रीय विद्यालय नही कहा जा सकता। सिद्धान्त रूपमे तो यह बात बिलकुल ठीक है, किन्तु व्यावहारिक कठिनाइयोके कारण अभीतक राष्ट्रीय विद्यालयामें अगरेजी भाषाको एक प्रकारसे अनिवार्य स्थान प्राप्त है। जबतक प्रान्तीय भाषाओंका साहित्य समृद्ध न हो जाय और अँगरेजीके स्थानपर किसी

दूसरी विदेशी भाषाकी शिक्षाका प्रबन्ध न हो तबतक परिस्थिति ऐसी ही रहेगी। किन्तु इससे बहुत अधिक हानि हो रही है। हम पश्चिमकी जितनी चीजे देखते या सुनते है वह सब इङ्गलैण्डकी आँख और कानसे। अन्य यूरोपीय भाषाओकी जो पुस्तकें अँगरेजीमें अनुवादित होकर आती है—उनके द्वारा ही हम मूल ग्रन्थका कुछ अनुमान कर पाते है। अतः अन्य यूरोपीय देशोके साहित्यके सम्बन्धमे हमारा ज्ञान अधूरा और कभी कभी भ्रमात्मक भी होता है। इस असहायावस्थाको दूर करनेका प्रयत्न होना आवश्यक है। और इसके लिये मुख्य मुख्य विद्यापीठोमे जर्मन फ़्रेंच आदि यूरोपीय भाषाओकी शिक्षाका प्रबन्ध होना चाहिये। अँगरेजीकी अपेक्षा इन भाषाओंके लिये अध्यापक प्राप्त करनेमे कठिनाई होगी। किन्तु इसे दूर करनेका यह उपाय हो सकता है कि प्रत्येक विद्यापीठमे सभी भाषाओंकी शिक्षाका प्रबन्ध न किया जाकर एक एक विद्यापीठमे एक एक भाषाके लिये प्रबन्ध रहे। इस प्रकार यह कठिनाई भी दूर हो जायगी और हमारे ज्ञानका मार्ग भी विस्तृत होगा। यह बात तो यूरोपीय देशोकी भाषाओके सम्बन्धमे हुई। लेकिन ज्यो ज्यो एशियामे जागृति बढती जायगी त्यो त्यो एशियाई देशोका पारस्परिक सम्बन्ध अधिक घनिष्ट होता जायगा। अतः किसी एक एशियाई भाषाका ज्ञान होना भी आवश्यक है और इसके लिये फारसी ही सबसे अधिक उपयुक्त है। हिन्दोस्तानके लोगोके लिये उसका सीखना भी

बहुत आसान है और उसके लिये शिक्षक मिलनेमे भी कठिनाई नही पडेगी। उत्तर भारतके प्रत्येक विद्यापीठमे फारसी पढानेके लिये एक मौलवी रखे जा सकते है। किन्तु ऊपरकी पङ्क्तियोका यहँ तात्पर्य नही है कि जर्मन, फ्रेञ्च या फारसी भाषाकी शिक्षा, पाठ्यक्रमका एक अनिवार्य अग हो। इन भाषाओंकी शिक्षाका केवल प्रबन्ध होना चाहिये और विद्यार्थियोंको उन्हे सीखनेके लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

चोथा प्रश्न औद्योगिक शिक्षाके सम्बन्धमे है। धीरे धीरे यह विषय विवादके परे होता जा रहा है कि केवल बौद्धिक, या केवल औद्योगिक शिक्षा बिलकुल अपूर्ण होती है। सरकारी विद्यालयों और अधिकाँश राष्ट्रीय विद्यालयोकी शिक्षाप्रणालीमें औद्योगिक शिक्षाको कोई स्थान ही नही दिया गया है। किन्तु आरम्भिक श्रेणियो/मे शिक्षाकी दृष्टिसे ही हाथसे काम करनेका अभ्यास कराना आवश्यक है। और माध्यमिक विद्यालयोके पाठ्यक्रमका तो स्वरूप ही बदल दिया जाना चाहिये। जो विद्यार्थी माध्यमिक विद्यालयकी शिक्षा समाप्त करके कालेजमे जाना चाहे उनका पाठ्यक्रम एक प्रकारका हो और जो कालेजमें न जाकर किसी उद्योग धन्धेके द्वारा जीविका उपार्जन करना चाहें उनका दूसरे प्रकारका हो। प्रथम प्रकारके विद्यार्थियोंको भी औद्योगिक शिक्षा दी तो अवश्य जाय लेकिन वह साधारण ही हो। लेकिन दूसरे प्रकारके विद्यार्थियोंको

उद्योग ही प्रधान रूपसे सिखलाया जाय। पाठ्यक्रम बनाते समय इस सम्बन्धमे विस्तारसे विचार किया जा सकता है।

पांचवाँ प्रश्न शारीरिक शिक्षा और व्यायामका है। महाराष्ट्रको छोडकर अन्य प्रान्तोके सम्बन्धमे यह कहा जा सकता है कि वहाँकी संस्थाओमे इसके लिये कुछ भी ध्यान नही दिया जाता। महाराष्ट्रमें तो प्रत्येक सस्थाके साथ उसके साधनोके अनुरूप एक व्यायाम-शाला है। किन्तु अन्य प्रान्तोमे इसकी कोई व्यवस्था नही है। व्यायाम शिक्षक रक्खे जाते है, किन्तु इस विषयको काफी महत्व नही दिया जाता। आवश्यकता इस बातकी है कि प्रत्येक सस्थाके साथ एक अच्छी व्यायामशाला हो जहाँ विद्यार्थियोका शारीरिक बल बढ़ानेके अतिरिक्त उन्हें आत्मरक्षा कर सकने योग्य बनाया जाय।

राष्ट्रीय विद्यालयोमेसे अधिकाँशमे शिक्षा निःशुल्क है। यदि कही शुल्क लिया भी जाता है तो बहुत कम। फिर भी विद्यार्थियोंके भरण पोषणका भार उनके माता पिता पर ही रहता है। कुछ सस्थाओकी ओरसे कुछ योग्य विद्यार्थियोको सहायता दी जाती है, किन्तु शिक्षासस्थाओके लिये यह सम्भव नही है कि वे अपने खर्चसे सब विद्यार्थियोंके लिये परवरिशका प्रबन्ध कर सके। यदि कुछ ऐसे उपाय किये जा सकें जिनके द्वारा विद्यार्थी, अध्ययन करते समय भी अपनी जीविका या उसका कोई अश उपार्जन कर सकें तो शिक्षाके प्रचारमे बडी सहायता मिले। यूरोप-आदि देशोंमें भी विद्यार्थियोंको

स्वावलम्बी बनानेके उपाय खोजे जारहे है और इस भावको प्रोत्साहन दिया जा रहा है। भारत ऐसे ग़रीब देशमे तो इसकी और भी अधिक आवश्यकता है। किन्तु यूरोपकी परिस्थितिमे और यहाँ की परिस्थितिमें बहुत अन्तर है। जिन कामोंके द्वारा वहाँके विद्यार्थी जीविका उपार्जन करते है, वे काम, यहाँके विद्यार्थियोको मिल ही नही सकते। इसके सिवाय प्रत्येक प्रान्तके लिये यह काम भिन्न भिन्न प्रकारका होगा। किन्तु शिक्षा सस्थाएं यदि इसका खयाल रक्खें और विद्यार्थियोको काम दिलानेका प्रबन्ध करें तो बहुत कुछ हो सकता है। गरमी या बरसातकी लम्बी छुट्टियोमे विद्यार्थी प्रचार कार्यके लिये गाँवोमे भेजे जा सकते है। देहातके लोगोको अक्षर ज्ञान करानेका यह एक अच्छा तरीका हो सकता है। इन शिक्षा सस्थाओके अतिरिक्त कुछ अन्य सस्थाएँ इस कामको अपने हाथमे लेकर विद्यार्थियोसे यह काम करावें तो बडी आसानीसे दोनो ही काम हो सकते है। इससे विद्यार्थियों द्वारा द्रव्योपार्जन तथा देहातियोंके बीच अक्षरज्ञान बढनेके अतिरिक्त एक बडा लाभ यह होगा कि शहर और गाँवके बीचकी खाई कम होती जायगी और विद्यार्थियोको छोटी उम्रसे ही अपने देशकी अवस्थाका और देशवासियोका परिचय मिलने लगेगा। यह तो बडी छुट्टियोके समयका काम हुआ। किन्तु अध्ययन कालमे भी उपार्जन करनेके तरीके निकाले जा सकते है।।

यहां तक तो वे सब बातें हुई जो प्रत्येक विद्यालयके द्वारा अलग

अलग की जानी चाहिये और जो इस प्रकार अलग अलग की भी जा सकती है। किन्तु बहुतसे कार्य ऐसे है जो राष्ट्रीय शिक्षाके प्रचारके लिये आवश्यक है, किन्तु किसी एक संस्थाके द्वारा ही उनका होना असम्भव है। पाठ्यपुस्तकोकी रचनाको ही लीजिये। सभी भाषाओमे सभी कोटिकी पाठ्य पुस्तकोकी आवश्यकता है। भिन्न भिन्न संस्थाएँ इसके लिये प्रयत्न भी कर रही हैं। किन्तु जहां तक ग्रन्थ रचनाकी बात है वहां तक यदि सब संस्थाए मिल कर काम करें तो इतनी ही शक्तिसे बहुत अधिक काम हो सकता है। इसके लिये यह आवश्यक होगा कि एक पाठ्यक्रम समिति हो जिसमे सभी संस्थाओंके प्रतिनिधि रहे। यह समिति इस बातका निश्चय करे कि किस किस विषय पर किस किस कोटिकी पुस्तकोंकी आवश्यता है और इसका निश्चय होने पर योग्य व्यक्तियो द्वारा वे पुस्तके लिखवाई जायें। फिर अन्य भाषाओमे उन्ही पुस्तकोंके अनुवाद करा लिये जायें। इससे एक ही प्रकारकी भिन्न भिन्न पुस्तकें लिखनेका श्रम बचेगा, जो अन्य आवश्यक ग्रन्थोकी रचनामे लगाया जा सकेगा।

दूसरा कार्य हो सकता है अन्य देशोके विश्वविद्यालयोंसे अपना सम्बन्ध स्थापित करने, तथा वहाँ अपने विद्यार्थियो और स्नातकोकी शिक्षाके लिये सुविधा करानेका। यदि प्रत्येक विद्यापीठ इसके लिये अलग अलग प्रयत्न करे तो यह कार्य बहुत कठिन हो जायगा और इसीमे बहुत कुछ शक्ति लग जायगी। किन्तु सभी

संस्थाओंका एक प्रतिनिधि मण्डल इस कामको अपने हाथमे लेकर इसे अच्छी तरह पूरा कर सकता है।

जितनी आवश्यकता अन्य देशोके विश्वविद्यालयोंसे अपना सम्बन्ध स्थापित करने की है, उससे कही अधिक आवश्यकता इस बातकी है कि राष्ट्रीय विद्यालयोके बीच आपसमें सम्बन्ध स्थापित हो। एक स्थायी राष्ट्रीय शिक्षा समितिके द्वारा यह कार्य भलीभाँति हो सकता है। इसके द्वारा इस बातका भी प्रबन्ध किया जा सकता है कि प्रत्येक विद्यापीठके एक या अधिक अध्यापक कुछ कुछ समयके लिये दूसरे विद्यापीठोमे रहे। इस प्रकार कुछ दिनोंके बाद सभी विद्यापीठोमे कुछ ऐसे लोग हो जायँगे जो सभी संस्थाओंकी कार्य प्रणालीसे अच्छी तरह परिचित होगे। इससे एक दूसरेसे बहुत कुछ सीखने और अपनी कार्यप्रणालीमे आवश्यक और अधिक लाभदायक परिवर्तन करते रहने की अच्छी सुविधा रहेगी।

इन सब तथा सामूहिक रूपसे किये जाने योग्य अन्य कार्योंको पूरा करनेके लिये एक 'स्थायी राष्ट्रीय शिक्षा समिति' की अत्यन्त आवश्यकता है। यह समिति न केवल समस्त राष्ट्रीय विद्यालयोंकी एक प्रतिनिधि संस्था होगी, बरन् वह ऐसे कार्य भी कर सकेगी जो शिक्षाप्रचार तथा शिक्षा सम्बन्धी समस्याओंको हल करनेके लिये आवश्यक होगे। इसके द्वारा समय समयपर अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन भी कराये जा सकते है और इस प्रकार विचार विनियमसे

बहुत कुछ लाभ हो सकता है। यह समिति विद्यालयोका नियन्त्रण नहीं करेगी, बरन् उचित सलाह देकर उनका मार्ग प्रदर्शन करती रहेगी। अपनी आन्तरिक व्यवस्थाके सम्बन्धमे तो सभी विद्यालय स्वतन्त्र रहेगे। यह अच्छा होगा कि इस समितिमे राष्ट्रीय विद्यालयोके प्रतिनिधियोके अतिरिक्त ऐसे शिक्षा शास्त्री भी रहे जिनका किसी राष्ट्रीय विद्यालयसे सम्बन्ध न हो। यदि उनका सम्बन्ध किसी सरकारी या अर्धसरकारी सस्थासे हो तो भी इस कार्यके लिये उनकी व्यक्तिगत सहायता लेना अनुचित न होगा।

सरकारी विद्यालयो और राष्ट्रीय विद्यालयोके बीच अभी तक कोई सम्बन्ध नही रहा है। इसका हो सकना भी असम्भव था। दोनो, एक दूसरेसे अलग रहते थे और एक दूसरेको अपना विरोधी ही समझते थे। कुछ दिनोमे सरकारी विद्यालयोने तो अपना रुख बदला है। राष्ट्रीय विद्यालयोके अस्तित्वको वे स्वीकार करने लगे है और समय समयपर उनकी सहकारिता भी प्राप्त करना चाहते है। राष्ट्रीय विद्यालयोको भी अब अपनी नीति बदलनी चाहिये। जहाँ तक दोनो मिल सकते है वहाँ तक मिलकर काम करनेका प्रयत्न करे और जहाँ न मिल सकें वहाँ अलग रहे। साथ ही सरकारके प्रति भी हमे अपनी नीति बदलनी चाहिये। जहाँ तक सरकारी नियन्त्रणसे स्वतन्त्र रहनेकी बात है वहाँ तक तो इस नीतिमे किसी प्रकारके परिवर्त्तनकी आवश्यकता नही है। लेकिन हमे यह

नही भूलना चाहिये कि सरकारी नियन्त्रणमे देशके अधिकाँश विद्यालय चल रहे है। वहाँकी शिक्षाप्रणालीके दोषोको दूर करनेके लिये स्वराज्य प्राप्त होने तक ठहरना, देशके लिये बहुत ही घातक होगा। अत. हमे आन्दोलन और प्रचारके द्वारा सरकारी विद्यालयोंकी शिक्षाप्रणालीको भी अपने अनुसार करनेका प्रयत्न करना चाहिये। निस्सन्देह इस प्रकारका काम उसी समय किया जा सकता है—जब कि देशमे सरकारसे असहयोग करनेका कार्यक्रम न चल रहा हो।

जिस राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलनकी योजना की जा रही है उसके सम्मुख ये सब तथा शिक्षासे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य विषय विचारार्थ उपस्थित होगे। शिक्षाकी समस्या स्वभावत ही गम्भीर होती है, फिर भारतवर्षमे तो उसके मार्गमे नयी नयी कठिनाइयाँ है। ऐसी अवस्थामे इस सम्मेलनका कार्य शीघ्रतासे समाप्त करनेकी चेष्टा न होनी चाहिये। यह इस प्रकारका पहला ही सम्मेलन है। अत. इसमे विचार विनियमके लिये जितना ही अधिक अवसर मिलेगा, इसके निर्णय उतने ही अधिक गम्भीर और स्थायी हो सकेंगे। काशी विद्यापीठने लगभग एक वर्ष पूर्व इस सम्मेलनका आयोजन आरम्भ किया था। तबसे लगातार इसके लिये काम हो रहा है। अन्य सस्थाओके प्रतिनिधि तथा शिक्षाविशेषज्ञ भी अपना बहुमूल्य समय और धन खर्च करके दूर दूरसे आवेंगे। इतने आयोजनके बाद इस सम्मेलनका कार्य किसी प्रकार शीघ्रतासे समाप्त कर देना,

उचित न होगा। इतना काम तो होना ही चाहिये जिससे इसके आयोजनमे लगने वाले श्रम और सम्पत्तिका प्रतिफल मिल सके। अच्छा हो यदि आरम्भके दो एक दिन भिन्न भिन्न सस्थाओके प्रतिनिधियोंको अपना अपना दृष्टिकोण समझानेके लिये दिये जायँ। उसके बाद दो एक दिन शिक्षाकी भिन्न भिन्न समस्याओपर विशेषज्ञोके भाषण हो, और तब प्रस्तावोपर विचार हो एवम् भावी कार्यक्रम निश्चित किया जाय।

पहला अध्याय ।

अनाथ बालिकाश्रम, हिंगणे ।

अन्य प्रान्तोंकी भाँति महाराष्ट्रमे भी स्त्रीशिक्षा और समाज सुधारके आन्दोलन साथ साथ ही चलते है। दोनो एक दूसरेपर अपना प्रभाव डालते है। समाजके अनुचित रूढियोके टूटने तथा विचारमे उदारता आनेसे शिक्षाके मार्गकी कठिनाइयाँ दूर होती है, और शिक्षाप्रसारसे सामाजिक कुरीतियोके दूर होनेमे सहायता मिलती है। जालन्धर कन्यामहाविद्यालयके संस्थापक और सञ्चालक लाला देवराजकी तरह आचार्य कर्वेको भी महाराष्ट्र प्रान्तमे स्त्री शिक्षाका प्रचार करनेमे अनेक तरहकी कठिनाइयोका सामना करना पडा है। पर आज उन्हे आश्चर्यकारक सफलता मिल चुकी है। जो बीज सन् १८९६ ईसवीमे अनाथ बालिकाश्रमके रूपमे अङ्कुरित हुआ था उसने अब भारतवर्षकी सर्वप्रथम महिला विद्यापीठका विशाल रूप धारण कर लिया है।

सन् १८९३ ईसवीमे पूनेमे एक विधवा विवाहोत्तेजक मण्डली

की स्थापना की गई थी। इसके सञ्चालकोंमे आचार्य कर्वे मुख्य थे। थोडे ही दिनो बाद सञ्चालकोने देखा कि इसका नाम भ्रमात्मक है। संस्थाका उद्देश्य यह नही था कि विधवाओंको विवाह करनेके लिये प्रोत्साहित किया जाय, बरन् उसका उद्देश्य यह था कि विधवाओंको किसी भी अवस्थामे विवाह न करने देनेकी जो अनुचित रूढि समाजमें प्रचलित है उसे तोडा जाय और जो विधवाएँ अपना विवाह करना चाहे उनकी इस सम्बन्धमे सहायता की जाय। अतः सन् १८९५ मे इसका नाम बदल कर विधवा विवाह प्रतिबन्ध निवारक मण्डली रक्खा गया। इसी बीच आचार्य कर्वेका ध्यान विधवाओंकी असहायावस्थाकी ओर आकर्षित हुआ। उन्होने देखा कि परिवारके लोग तो विधवाओंकी उपेक्षा करते हैं, और वे स्वयं न तो अपना भरणपोषण करनेमे ही समर्थ रहती है और न समाजमे उनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व ही रहता है। अतः १४ जून सन् १८९६ ईसवीको उन्होने पूनेमें अनाथ बालिकाश्रमकी स्थापना की। गरीब विधवाओंको सुशिक्षा देकर स्वावलम्बिनी बनाना ही इसका उद्देश्य रक्खा गया। बहुत दिनो तक इस संस्थाको तरह तरहके विरोधों-का सामना करना पडा। एक तो पुराने खयालके लोग स्त्रीशिक्षाके ही विरोधी थे, दूसरे, जो लोग विधवाओंकी सहायताके लिये इस तरहकी शिक्षाको उचित भी समझते वे इस भयसे कि, यहाँ पहुँच कर वह पुनर्विवाह करनेके लिये शिक्षित की जायँगी—विधवाओंको

यहाँ भेजनेमे हिचकिचाते थे। इसके सिवाय सस्थाको बदनाम करनेके उद्देश्यसे प्रचार करने वाले लोग तो मौजूद थे ही। अनाथ-बालिकाश्रमके अधिकारियोने यह स्पष्ट रूपसे विज्ञापित कर दिया कि विधवा विवाह आन्दोलन इस सस्थाका कोई उद्देश्य नहीं है—यह तो केवल उन्हे शिक्षित बनाकर वैधव्यावस्थामें उन्हे स्वावलम्बी बनानेका प्रयत्न करती है। हर तरहसे बचे रहनेके लिये इन्होने यहाँ तक किया कि यदि आश्रमकी कोई विधवा अपनी इच्छासे भी अपना पुनर्विवाह करना चाहती तो भी आश्रमके अधिकारी उसमे योग न देते और न उस कृत्यमे सम्मिलित होते। इसका कारण यह न था कि वे विधवा विवाहके विरोधी हो गये थे या अपने कार्यकी तुलना-मे उस कार्यको कम महत्वपूर्ण समझते थे। वे केवल यह प्रदर्शित करना चाहते थे कि इस संस्थाका विधवा विवाह आन्दोलनसे कोई सम्बन्ध नही है, ताकि कोई व्यक्ति गलतफहमीके कारण विधवाओ-को यहाँ भेजनेसे न रुके। आरम्भमे इस आश्रममे केवल एक विधवा थी। धीरे धीरे इनकी सख्या बढती गई। स्थापनाके चार वर्ष बाद ईसवी सन् १९०० के जून महीनेमे यह आश्रम पूनेसे चार मीलकी दूरी पर हिंगणे नामक स्थानमे लाया गया, जहाँ आज तक है। धीरे धीरे आश्रमकी उन्नति होने लगी और आगे चलकर सधवा स्त्रियो और अविवाहित लडकियोके लिये भी एक विद्यालयकी आवश्यकता-का अनुभव किया जाने लगा। अन्तमे ४ मार्च सन् १९०७ ईसवीको

एक महिला विद्यालय खोला गया। आजकल प्रारम्भिक पाठशालाओंके लिये अध्यापिकाएँ तैयार करनेके लिये एक अध्यापिका शाला भी है। इस प्रकार इस आश्रमके अन्तर्गत आजकल तीन शालाएँ हैं—प्राथमिक शाला, महिलाश्रम (हाइस्कूल), और अध्यापिका शाला (नार्मलस्कूल)। आरम्भसे ही इनका पाठ्यक्रम बिलकुल स्वतंत्र रहा है! पहले यहाँकी विद्यार्थिनियाँ न्यूइंग्लिशस्कूलके मार्फत बम्बई विश्वविद्यालयकी मैट्रिकुलेशन परीक्षामे बैठा करती थीं। पर सन् १६१६ ईसवीमे भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ (वर्तमान श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ) के स्थापित होनेपर ये सब संस्थाएँ उसीसे सम्बद्ध कर दी गई और उसीके पाठ्यक्रमके अनुसार यहाँकी पढाई होती है। इस विद्यापीठकी अध्यापिका शालाके प्रमाणपत्रोंको सरकार स्वीकार करती है और अनाथ बालिकाश्रमका महिला विद्यालय भी सरकार द्वारा मान्य है।

पाठ्यप्रणालीमे इन बातोका ध्यान रक्खा गया है—(क) विधवाओंको ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वे आत्मसम्मान पूर्वक जीविका उपार्जन कर सके, (ख) अविवाहित लडकियोंकी शिक्षाका प्रबन्ध इस उम्रतक हो जिससे बालविवाहकी कुप्रथाको बन्द करनेमे सहायता मिले और (ग) विवाहिता स्त्रियोंको ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वे योग्य गृहिणी हो सके, सक्षेपमे यह कि स्त्रियोको ऐसी शिक्षा दी

जाय जिससे उनकी शारीरिक और मानसिक उन्नति हो। शिक्षाका माध्यम आरम्भसे अन्ततक मराठी भाषा है। छ वर्षसे अधिक उम्रकी कोई भी विवाहित या अविवाहित हिन्दू लडकी या २५ वर्षसे कम उम्रकी विधवा यहां भरती हो सकती है। आश्रममे दो भोजनालय है—एकका मासिक व्यय १३ रुपया और दूसरेका ११ रुपया है। दूध और जलपान आदिका खर्च इसमे शामिल नही है। शिक्षा शुल्क १ से २ रुपये तक लगता है। साधारणतया सभी विद्यार्थिनियोको शिक्षाशुल्क और भोजनका व्यय देना पडता है। पर गरीब विधवाओका सब खर्च माफ भी कर दिया जाता है। १ जनवरी सन् १९२९ ईसवीको आश्रममे विद्यार्थिनियोकी संख्या इस प्रकार थी—

	अविवाहित,	विवाहित	विधवा	योग
महिलाश्रम	५३	१०	३५	९८
अध्यापिकाशाला	२	२	१५	१९
प्राथमिकशाला	३२	९	२७	६८
	८७	२१	७७	१८५

इनमेसे ७५ का सब खर्च माफ था।

बौद्धिक शिक्षाका पाठ्यक्रम तो श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठद्वारा निर्धारित है जिसका विवरण उक्त विद्यापीठके वर्णनमे मिलेगा। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन विद्यालय आरम्भ होने पर १५ मिनट धार्मिक और नैतिक

शिक्षाके लिये दिया जाता है, जिसमे भगवद्गीताके श्लोक और महाराष्ट्रीय साधुसन्तोके भजनों द्वारा प्रवचन होते है। ऊपरकी कक्षाओमे सनातनधर्मकी सुसम्बद्ध शिक्षा भी दी जाती है। सन्ध्या समय भी प्रार्थना होती है जिसमे पुराणके प्रवचन या भजन होते है। विद्यालयके समय विभागमे शारीरिक व्यायामके लिये भी समय रक्खा गया है जिसमे भिन्न भिन्न उम्रकी लडकियोके शारीरिक गठनके अनुसार खेल और कवायद होते है। विद्यार्थिनियोकी एक वाद सभा है ओर वे हाथसे लिखकर अपना एक मासिकपत्र भी निकालती है।

अध्यापिकाशालासे सन् १६२८ तक ३८ अध्यापिकाएँ निकल चुकी थी, और सन् १६२६ के आरम्भमे २० वहाँ शिक्षा पा रही थी।

दूसरा अध्याय ।

कन्यागुरुकुल, देहरादून ।

पञ्जाबकी आर्यप्रतिनिधि सभाने गुरुकुल कांगडीके २१ वे वार्षिकोत्सवके अवसरपर एक कन्यागुरुकुल खोलनेका निश्चय किया था। दिल्लीके स्वर्गीय सेठ रघूमलसे इस कार्यके लिये दान मिलनेपर २३ कार्तिक सम्वत् १९८० को दिल्लीमे इसकी स्थापना हुई और तीन साल बाद यह देहरादून लाया गया। तबसे यही है। इसके सारे नियमोपनियम कन्याओंके सम्बन्धमे उपयुक्त परिवर्तनके साथ गुरुकुल कांगडीकी ही तरह है। केवल ऐसी वैदिक धर्मकी विश्वासिनी सदाचारिणी विदुषी ही इस शिक्षणालयमे अध्यापिका पदपर नियुक्त हो सकती है जो वैदिकधर्मके उन ५१ सिद्धान्तोको मानती हो जिन्हे महर्षि दयानन्द सरस्वतीने माना है। किन्तु अन्तरङ्ग सभाको अधिकार है कि किसी अध्यापिका विशेष (आचार्याके अतिरिक्त) के सम्बन्धमे वैदिकधर्मविश्वास तथा ५१ सिद्धान्तोको माननेके नियमको जहाँतक उचित समझे शिथिल कर दे। यहाँ पुरुष अध्यापक नियुक्त नही हो

सकते। इस गुरुकुलमे साधारणतया छः से आठ वर्ष तककी उम्रकी और विशेष अवस्थामे ६ वर्षकी उम्र तककी वे ही ब्रह्मचारिणियाँ प्रविष्ट हो सकती है जिनके माता पिता वा संरक्षक यह प्रतिज्ञा करे कि कमसे कम १६ वर्षके पूर्व ब्रह्मचारिणीका वाग्दान या विवाह संस्कार न करेंगे। अभिभावकोको यह भी प्रतिज्ञा करनी पडती है कि ब्रह्मचारिणीको गुरुकुलमे प्रविष्ट करानेके पश्चात् उसकी १६ वर्षकी उम्र होने तक उसे गुरुकुलसे नही ले जायँगे। किसी विशेष अवस्थामे उसे कुछ कालके लिये घर जानेकी अनुमति मिल सकती है। इस गुरुकुलका पाठ्यक्रम ११ वर्षोका है जो दो भागोमे बँटा हुआ है—विद्यालय ८ वर्ष और महाविद्यालय ३ वर्ष। शिक्षा आरम्भसे अन्त तक निःशुल्क है। किन्तु भरण पोषणके लिये अभिभावकोको विद्यालयमे १५ रुपये मासिक देना पडता है। महाविद्यालयके लिये कुछ अधिक लिया जाता है। यह रकम प्रति मास सीधे अध्यक्षके पास भेजी जाती है, और ब्रह्मचारिणियोका सारा प्रबन्ध गुरुकुलकी ओरसे किया जाता है। अन्तरङ्ग सभाको अधिकार है कि होनहार अनाथो तथा ऐसी बालिकाओ वा संश्रिताओकी शिक्षाका प्रबन्ध—जिनके माता पिता समस्त वा एक अंशमे भरणपोषणका व्यय न दे सकते हो—अपने खर्चसे करे।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस गुरुकुलका पाठ्यक्रम ११ वर्षोंका है जो दो भागोमे बँटा है—विद्यालय ८ वर्ष और महाविद्यालय ३ वर्ष। विद्यालयकी अन्तिम दो श्रेणियोंकी परीक्षा

अधिकारी परीक्षा कहलाती है, जिसमे उत्तीर्ण होनेपर ब्रह्मचारिणी-को महाविद्यालयमे प्रवेशका अधिकार मिलता है। विद्यालयकी प्रथम छ श्रेणियोमे आर्यभाषा (हिन्दी), धर्मशिक्षा, गणित, इतिहास, भूगोल और कलाकौशलकी शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त आरम्भकी श्रेणियोमे शिशुवाटिका और वस्तुपाठ, चतुर्थ और पञ्चम श्रेणियोमे सस्कृत तथा छठी श्रेणीमे वाद्यकी भी शिक्षा दी जाती है। अधिकारी परीक्षा अर्थात् सप्तम और अष्टम श्रेणियोके लिये, संस्कृत साहित्य और व्याकरण, आर्यभाषा (हिन्दी) धर्म-शिक्षा, इतिहास, गणित, वाद्य और कलाकौशल रखे गये है। इनके अतिरिक्त बॅगला, गुजराती और मराठी इन तीन देशी भाषा-ओमेसे भी कोई एक लेना पडता है। कलाकौशलमे सीने, पिरोने और बुननेकी तथा वाद्यमे सितार आदिकी शिक्षा दी जाती है। पाठके समयसे बाहर, चरखा कातने, खड्डी चलाने और भोजन बनानेके काम सिखलाये जाते है। सप्ताहमें दो बार रोगीसेवा और स्वास्थ्यरक्षापर व्याख्यान दिये जाते हैं। इन सबमे उपस्थित रहना तथा उत्तीर्ण होना आवश्यक है। कृषि तथा अन्य प्रकारके देशी खेलोंके अतिरिक्त कन्योपयोगी व्यायामोका भी प्रबन्ध किया गया है। महाविद्यालयमे धार्मिक शिक्षा, सस्कृत साहित्य, इतिहास, पदार्थविज्ञान और मनोविज्ञानकी शिक्षा दी जाती है। ॲगरेजी ऐच्छिक विषयके तौरपर ली जा सकती है।

बालिका समाजके नामसे ब्रह्मचारिणियोकी एक सभा है। अनध्यायके दिन इसकी बैठके होती है। भजन और प्रार्थनाके पश्चात् ब्रह्मचारिणियोके भाषण और वादविवाद होते है। समय समयपर अन्य सभाएँ भी होती है। सन् १९२९ मे ब्रह्मचारिणियोकी सख्या १५० थी। अभीतक स्नातिकाएँ नही निकली है पर दसवी श्रेणीतककी शिक्षा होने लगी है और एक वर्ष बाद स्नातिकाएँ भी निकलने लगेगी। यहाँ समस्त ब्रह्मचारिणियोको केवल खादीके ही वस्त्र पहिननेके लिये दिये जाते है।

कन्या गुरुकुलका पाठ्यक्रम तैयार करते समय जो बाते ध्यानमे रक्खी गई है उन्हे स्पष्ट करते हुए पाठ्यक्रमकी भूमिकामे कहा गया है कि '—

"स्त्री पुरुष जीवनभरके साथी है। भारतवर्षमे तो एक बार विवाह हो चुकनेके पश्चात् उसका तोडा जाना धार्मिक आज्ञाके प्रतिकूल समझा जाता है। किन्तु समता न होनेपर तो एक मिनट भी किसीसे बात करना दूभर हो जाता है, फिर जीवनभरका साथ तो सर्वथा ही असम्भव है। अत' स्त्रीपुरुषमे पारिवारिक सुख बढानेके लिये उनमे समता लाना ही मुख्य साधन है।

"परन्तु यह समता कैसे लायी जाय? कई समझते है कि बालको और बालिकाओको एक ही प्रकारकी शिक्षा देनेसे उनमे समता आ सकती है। वे बालकोंसे बालिकाओके प्राकृतिक भेदोंका

ध्यान न रखते हुए दोनोको एक प्रकारकी शिक्षा देकर उनमे समता लानेका प्रयत्न करते है। परन्तु यह बडी भारी भूल है। इसी भूलका यूरुपको शिकार बनना पड रहा है। दोनोकी, प्रकृतिने पृथक् पृथक् रचनाकी है और दोनोकी अलग २ आकॉक्षाएँ है। मानव शरीरकी रचना की इन भिन्नताओको दृष्टिमे रखते हुए ही उनकी पाठविधिका निर्णय होना चाहिये, अन्यथा अन्धाधुन्ध करनेसे स्त्रियॉ शिक्षिता तो हो जॉयगी परन्तु जिस उद्देश्यसे 'स्त्री-शिक्षा' की आवश्यकता है वह उद्देश्य हल नही होगा।

"कन्या गुरुकुलकी पाठविधिमे प्रयत्न किया गया है कि इसके अनुसार शिक्षिता स्त्री सुशिक्षित पुरुषसे बहुत कम न रहे, स्वतन्त्र विचार कर सके और सभ्यससारको वह साहित्य दे सके जो स्त्री-जातिके सिवाय और कोई नही दे सकता। परन्तु इतनेसे इस भूल-मैं न पड जाना चाहिये कि इस पाठविधिके अनुसार स्त्री पुरुषोकी एक ही पाठविधि रक्खी गई है। पुरुषोकी पाठविधिसे मिलाते हुए भी इसे उससे बहुत भिन्न रक्खा गया है। इस पाठविधिमे निम्नलिखित बातोपर विशेष ध्यान रक्खा गया है.—

"संस्कृत साहित्य.—साहित्यका अनुभाव (Emotions) से अधिक सम्बन्ध है। स्त्री जातिका भी अनुभाव (Emotions) का हिस्सा बढा हुआ होता है। अतः साहित्य तथा स्त्री जातिका घनिष्ठ सम्बन्ध है। पुरुषोको जीवनरूपी सग्राममे कृतकार्यतासे लडनेके

लिये जितना आवश्यक विज्ञानो (Sciences) का पढाना है, उतना ही आवश्यक स्त्री जातिको अपने विशेष प्रेमसञ्चारक मिशनको कृतकार्य बनानेके लिये साहित्यका पढाना है। प्रत्येक भाषाके साहित्यकी वृद्धिमे स्त्रियाँ जितनी कृतकार्य हो सकती है उतनी कृतकार्यता बहुत-से पुरुष नही प्राप्त कर सकते। हम अपने साहित्यकी उन्नति करना चाहते है अत' हम स्त्रियोको साहित्य पढाना चाहते है। परन्तु सस्कृत साहित्य क्यो पढाया जाय ? इसी बातमे विवाद हो जाता है। किन्तु इसका उत्तर स्पष्ट है। उर्दूका पण्डित होनेके लिए फारसी जितनी आवश्यक है, अग्रेजीको अच्छी तरह सीखनेके लिये लैटिन आदिका पढना जितना जरूरी है, उससे भी बढ कर जरूरी आर्यभाषाके लिए सस्कृतका पढना है। आर्यभाषा दिनों दिन उन्नति कर रही है परन्तु उसका खजाना सस्कृत भाषा ही है। बिना सस्कृतके आर्यभाषामे हाथ डालना अधूरी शिक्षाका—बल्कि, अधूरी-से भी कही कम शिक्षाका सूचक है।

"वेदः—आर्यसमाजका जीवन ही वेदके पुनर्जीवनके लिये है। श्री स्वामी दयानन्दजी महाराजका जीवन भी इसी उद्देश्यकी पूर्तिमे लगा, गुरुकुलको भी इसी उद्देश्यको सन्मुख रख कर खोला गया। कन्यागुरुकुल महाविद्यालयकी पाठविधि बनाते हुए स्मरण रखा गया है कि इस समय हम वृक्षकी जडको, मकानकी नीवको, ठीक करनेके लिये प्रयत्न कर रहे है। दृढ आर्य वही है जो वेदोंको खुली

आँखसे पढ सके, उन्हें समझ सके और तदनुसार अपना जीवन व्यतीत कर सके। परन्तु ऐसे आर्य पैदा होनेसे पहिले इस प्रकारकी देवियोकी आवश्यकता है जो ऐसी सन्तानोको जन्म दे सकें।

"उपनिषद् तथा दर्शन—ऊपर कहा जा चुका है कि स्त्रियोंमें अनुभाव (Emotions) की प्रधानता है। जीवनका रहस्य ही अनुभाव (Emotions) मे छिपा हुआ है। उपनिषदोमे वही रहस्य खुला हुआ है। फिर क्या सन्देह हो सकता है कि स्त्रियोके लिये उपनिषदोसे अच्छा कोई भी ग्रन्थ नही मिल सकता। मनावेशो (Emotions) को ठीक करनेमे और उन्हे ठीक दिशाको तरफ बढानेमे उपनिषदें सहायता देंगी–उन्हे सुन्दर तथा सुललित आर्यभाषामे प्रकट करनेके लिये सस्कृत भाषा सहायता देगी। अनुभाव (Emotions) के लिये जो काम उपनिषदे करेगी, ज्ञानके (Intellect) लिये वही काम दर्शन करेंगे। इस पाठविधिमे सारे दर्शन नही रक्खे गये। दिग्दर्शन करानेके लिए प्रशस्तपादभाष्य तथा योगदर्शन ही पर्याप्त समझे गये है। इसका कारण यही है कि स्त्रियोके लिए बहुत दार्शनिक प्रपचोमे पडना उनके दैनिक जीवनमे बहुत सहायक नही हो सकता। किन्तु जितनी जरूरत है वह इतनेसे ही पूरी हो सकती है। जिन कन्याओको दर्शन पढनेके लिए विशेष रुचि हो उनके लिए पृथक् स्नातकोत्तर शिक्षा-पद्धतिका प्रबन्ध हो सकता है।

"निरुक्त तथा व्याकरण.—वेदार्थमे इन दोनोकी बहुत आवश्यकता है। निरुक्तकी सहायता तो शब्द शब्दपर लेनी पडती है। बिना निरुक्तके वेदार्थ ही नही हो सकता। व्याकरण भी सस्कृत ज्ञानके लिये आवश्यक होनेके कारण रक्खा गया है। ।

"गणितः—घरका काम स्त्रियोके आधीन होता है अतः व्यावहारिक गणितकी उनके लिये विशेष आवश्यकता है। इसी लिये इस पाठविधिमे गणितके लम्बे चौडे हिसाबोकी अपेक्षा व्यवहारिक गणितको स्थान देना अधिक अच्छा समझा गया है।

"साइन्स प्राकृतिक घटनाओंको न जाननेके कारण स्त्रियाँ बच्चोंमे भूतो और पिशाचोकी कहानियाँ सुना कर ऐसा भय उत्पन्न कर देती है जिसका प्रभाव सन्तानके बडे होकर प्रचण्ड पण्डित हो जानेके पीछे भी नही हटता। बालक को झूठी कहानियाँ न सुना कर उसके प्रश्नोका ठीक ठीक उत्तर दे सकनेकी योग्यता प्रत्येक मातामे होनी चाहिये, और यह क्षमता बिना साइन्सके साधारण ज्ञानके सर्वथा असम्भव है। बचपनके बडे सस्कार किसे स्मरण नही, और उनके कारण कितने जन आज कष्ट उठा रहे हे ?" ।

"इतिहास.—झूठको हटाकर सचाईको, और गप्पों, किस्सों, कहानियोंको हटाकर वास्तविक घटनाओको इतिहासका स्थान देनेका प्रयत्न किया गया है। सीताके पतिव्रत धर्मको सुनकर किस स्त्रीके हृदयमे धर्मके लिये मरनेकी लहर न उठ खडी होगी ? पूर्वजोके इति-

हासको पढकर किसमे जाति, धर्म, देशसेवाकी अग्नि न प्रज्वलित हो जायगी ? जो जिस देशमे उत्पन्न हुआ है उसे उस देशका इतिहास भी न आता हो—इससे बढकर शोचनीय दशा क्या हो सकती है ?

"देश सम्बन्धी ज्ञान आजकलके लोग घरोमे नही बैठते। क्योंकि घरमे उनसे देशकी वर्तमान दशापर विचार करनेवाला साथी कोई नही होता। परन्तु स्त्री पुरुषका सम्बन्ध ही क्या हुआ अगर पुरुषोको अपनी प्रत्येक इच्छाको पूर्ण करनेके लिये घरसे बाहर भागना पडे । स्त्रियोके अपने हितके लिये, उनके पतियों के हितके लिये, और देशके हितके लिये, यह आवश्यक है कि उन्हें देश सम्बन्धी ज्ञानकी भी कुछ शिक्षा दी जाय।

"आर्य भाषा तथा अन्य देशी भाषाएँ.—इस बातकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कि आर्यभाषाके पक्षमे भी कोई युक्ति दी जाय। अन्य देशी भाषाओंमेसे किसी एकको चुन लेना प्रत्येक कन्याकी अपनी सम्मतिपर छोडा गया है। अन्य भाषाओकी आवश्यकता इसलिये समझी गई है कि आर्यभाषाकी अपेक्षा उनका साहित्य ऊँचा है और वे पढी भी बडी सुगमतासे जा सकती है। " ।

"धात्री शिक्षा और शिशुपालन (Midwifery and child Nursing), आलेख्य, सीना पिरोना तथा गानाः—ये चारो ऐसे विषय है जिनके पक्षमें लिखनेकी कोई भी आवश्यकता प्रतीत नही होती। स्त्रियोके लिये ये आवश्यक ही नही परन्तु अत्यन्त आवश्यक

तीसरा अध्याय

कन्या महाविद्यालय, जालन्धर।

उत्तर भारतके समाज सुधार और स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी इतिहासमे जालन्धरका कन्या महाविद्यालय और उसके संस्थापक लाला देवराजका नाम विशेष महत्व रखता है। सन् १८८६ ईसवीके सितम्बर महीनेमे 'जनाना स्कूल' के नामसे इस महाविद्यालयका आरम्भ हुआ था। उस समय इस स्कूलमे केवल ३ लडकियाँ थी। स्थानीय आर्य समाजकी ओरसे इसे सहायता दी जाती थी, पर उसकी दृष्टिमे उस समय यह स्कूल कितने महत्वका था इसका अन्दाज इसी बातसे लगाया जा सकता है कि इसके खर्चके लिये समाजने एक रुपये मासिक देनेका प्रस्ताव स्वीकार किया था। जालन्धर आर्यसमाजके सन् १८८६ की वार्षिक रिपोर्टमे इस स्कूलका जिक्र करते हुए कहा गया है कि "आर्य समाज़ने एक जनाना स्कूल भी खोला है जिसमें १२ विद्यार्थिनियाँ है। किन्तु योग्य शिक्षकोके अभावमे इसकी शिक्षा सम्बन्धी अवस्था अच्छी नही है।" आगे

चलकर आर्य समाजकी ओरसे मिलने वाली एक रुपया मासिककी सहायता भी बन्द कर दी गई। आरम्भसे ही स्कूल, लाला देवराज-की माताके उत्साहसे चल रहा था। और समाजके बिलकुल हाथ खीच लेने पर उसका आर्थिक भार भी पूर्णतया उन्हीं पर रहा। ३० अगस्त सन् १८९० ईसवीको लाला देवराजने जालन्धर आर्य-समाजमे इस आशयका प्रस्ताव उपस्थित किया कि आर्यसमाजकी ओरसे एक कन्याशालाकी स्थापना की जाय। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया और नियमादि बनाने तथा चन्दा उगाहनेके लिये एक कमेटी भी बनाई गई, पर उसके द्वारा कोई काम न हो सका। सन् १८९१ ईसवीमे उपरोक्त जनानां स्कूलका नाम आर्य कन्या पाठशाला रक्खा गया। जालन्धर आर्य समाजके सन् १८९३के वार्षिक रिपोर्टमे कहा गया है कि "आर्य कन्या पाठशालामे—जो एक दिन कन्या महा-विद्यालय हो जायगा—५५ विद्यार्थिनियां है। पाठशालाके सम्बन्ध मे विशेष उल्लेख योग्य बात यह है कि यहॉ शिक्षा पाने वाली अनेक लडकियोंने आभूषण पहनना छोड दिया है।" अन्तमे १५ जून सन् १८९६ ईसवीको कन्या महाविद्यायनके नामसे इसका अन्तिम नाम करण सस्कार हुआ। इसी नामसे यह आज तक विख्यात है। जालन्धरके अतिरिक्त अन्य स्थानोसे आकर विद्यालयमे शिक्षा प्राप्त करने वाली लडकियोंकी सुविधाके लिये सन् १८९५ ईसवीमे एक छात्रालय खोला गया। विद्यालय द्वारा प्रकाशित एक पुस्तिकामे

कहा गया है कि 'यह छात्रालय न केवल भारतवर्षमे किन्तु उस समयके समस्त एशियाई देशोमे अपने तरहकी पहली सस्था थी।'

कन्या महाविद्यालयको अपने जन्मकालसे ही अनेक तरहकी बाहरी और भीतरी कठिनाइयोका सामना करना पडा है। इसकी स्थापनाके समय पञ्जाबके हिन्दू समाजकी और उसमे विशेषकर स्त्रियोकी अवस्था बहुत गिरी हुई थी। शिक्षाका सर्वथा अभाव था। यदि कोई लडकी थोडी बहुत शिक्षा प्राप्त कर लेती तो साधारण समाज उसे नीची दृष्टिसे देखने लगता। बाल-विवाहकी प्रथा भयानक रूपसे प्रचलित थी। परदेकी प्रथा जोरोपर थी। पुरोहितो और पण्डोंका समाजपर काफी प्रभाव था और वे अपने अज्ञानवश स्त्रियोका शिक्षिता होना महाअनर्थकारी समझते थे। अनेक सामाजिक बुराइयो और आत्मसम्मानके झूठे भावके कारण पञ्जाबके अनेक जिलोमे कन्यावधकी गर्हित और रोमाञ्चकारी प्रथा भी प्रचलित थी। साधारण समाजमे प्रत्येक जातिके चौधरीका अपनी जातिवालोपर बडा प्रभाव था, और वह तो स्त्रियोके शिक्षिता किये जानेकी बाततक अपने खयालमे नही ला सकता था। ऐसी परिस्थितिमे स्त्री शिक्षाका कार्य आरम्भ करनेवालोंकी कठिनाइयोका अनुमान भली प्रकार किया जा सकता है। एक तो ऐसे वातावरणमे पाठशालाके लिये लडकियोंका मिलना ही कठिन था, और यदि किसी प्रकार अभिभावकोको समझा बुझाकर, उनपर जोर डालकर

उनकी लडकियाँ पाठशालामे भरती भी की जायँ तो बाल-विवाह और परदेकी कुप्रथाके कारण उन्हें बहुतही शीघ्र पाठशालासे अलग होना पडता। जितने दिनोंतक वे पाठशालामें रहती उतने दिनोंतक भी मानों उनके मां बाप पाठशालाके अधिकारियोंपर एक तरहका अहसान करते। इस अहसानका भार उठाते हुए, पाठशालाके अधिकारियोंको उन लडकियोंके लिये पुस्तक, कापी और स्लेट आदिका प्रबन्ध अपनी ओरसे करना पडता। और यह भी उस समय जब कि हिन्दी भाषामे पाठ्यपुस्तकोंका सर्वथा अभाव था।

ऐसी अवस्थामे स्त्रीशिक्षा और समाज सुधार, एक ही कार्यके दो अङ्ग थे। सामाजिक रीतिरिवाजोंमे उदारताका भाव आये बिना स्त्रियोंमे शिक्षाका प्रचार करना असम्भव था, और स्त्री-शिक्षाका आवश्यक परिणाम होता सामाजिक कुरीतियोंका दूर होना। किन्तु विद्यालयकी शिक्षिता लडकियाँ यदि किसी सामाजिक बुराईसे अपना नाता तोडती तो, शिक्षाका यह शुभ परिणाम ही, विद्यालयके अधिकारियोंकी कठिनाइयोंको और बढा देता। समाजमे विद्यालयके खिलाफ एक आन्दोलन खडा हो जाता। सुधारकी प्रवृत्तिपर धर्मभ्रष्टताका आरोप किया जाता। महाविद्यालयकी लडकियोंमे यदि अनुचित भयका भाव दूर होकर उनके चेहरेपर आत्मसम्मानका भाव दिखाई देता तो लोग उन लडकियोंको स्त्री-सुलभ लज्जा और सङ्कोचके भावसे वञ्चित कहने लगते। यह तो हुआ उन रूढि-

वादियोंका विरोध जो हर तरहके उदार विचार और समाज सुधार-के खिलाफ थे। किन्तु कन्या महाविद्यालयको उन लोगोंके विरोधका भी सामना करना पड़ा जो सामाजिक बुराइयोंको दूर करनेके काममे विद्यालयके अधिकारियोके साथ कन्धेसे कन्धा मिलाकर चलते थे। ये वही दिन थे जब कि लाहौरमे दयानन्द एङ्गलो वैदिक कालेजकी स्थापना हो चुकी थी और आर्यसमाजका एक दल उसे हर तरहसे सफल बनानेके लिये सिरतोड परिश्रम कर रहा था। एक दूसरा दल इस कालेजकी कार्यप्रणालीसे असन्तुष्ट होकर गुरुकुल शिक्षा प्रणालीपर नयी शिक्षा-संस्था क़ायम करने और देशमे अच्छे वेद-प्रचारक पैदा करनेकी धुनमें था। इन दोनो ही दलवालोंने कन्या-महाविद्यालयके कार्यको विशेष महत्व नही दिया, बरन् समय समय-पर उसका विरोध ही करते रहे। कालेजपार्टीवालोंको भय था कि कन्यामहाविद्यालयका काम बढनेसे जनताका ध्यान बट जायगा और कालेजके लिये काफी चन्दा न मिल सकेगा। इसलिये वे स्त्रियोंके लिये उच्च शिक्षाकी अनावश्यकता आदि कारण रखते हुए महाविद्यालयका विरोध करते। गुरुकुलपार्टीके लोग वेद-प्रचारकी परम आवश्यकताके सामने अन्य कार्योंका महत्व ही स्वीकार न करते।

किन्तु इन सब भीतरी और बाहरी विरोधोका सामना करते हुए महाविद्यालयने अपना रास्ता साफ किया। महाविद्यालयकी

सफलताका अर्थ ही यह है कि जो सामाजिक बुराइयाँ उसके मार्गमे बाधक हो रही थी उन्हे उसने बहुत हद तक दूर किया।

पञ्जाबमे लडकियोके विवाह-वयको ऊँचा करनेमें महाविद्यालयका विशेष हाथ रहा है। साथ ही जातिप्रथाकी सख्तीको ढीला करने, परदेकी कुप्रथाको दूर करने, लडकियोमे व्यायाम तथा स्वास्थ्य और शरीर-रचना सम्बन्धी ज्ञानका प्रचार करने और धार्मिक विचारोमे उदारताका भाव लानेमें विद्यालयने विशेष सफलता प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त पञ्जाबमे स्त्री अध्यापिकाओकी कमी भी इस विद्यालयके कारण बहुत हद तक दूर हुई है। शिक्षाके सम्बन्ध मे इस विद्यालयका एक विशेष महत्वपूर्ण कार्य यह भी हुआ है कि उसने हिन्दी भाषामे कन्योपयोगी साहित्यकी अच्छी वृद्धि की है। इनमेसे अधिकांश पुस्तकें लाला देवराजजीकी लिखी हुई है, जिनमेंसे अनेक पञ्जाबके सरकारी शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत है और अनेक सयुक्तप्रान्त, राजपूताना और बङ्गालकी कन्या पाठशालाओं में पढाई जाती हैं। महाविद्यालयके पास कन्योपयोगी ग्रन्थोका एक अच्छा सग्रहालय है जहाँ हर तरहकी पुस्तकें विक्रयार्थ प्रस्तुत रहती है। पिछले पॉच वर्षोंसे जलविद् सखा नामक एक मासिक पत्र भी निकल रहा है, जिसमें विद्यालय सम्बन्धी समाचारोके अतिरिक्त अन्य लेख भी प्रकाशित होते है।

महाविद्यालयका प्रबन्ध प्रान्तीय अथवा स्थानीय आर्यसमाज-

के आधीन नही है, अपितु इसके प्रबन्धके लिये एक स्वतन्त्र सभा है। आजकल महाविद्यालयके साथ, बाहरसे आई हुई छात्राओंके लिये कन्याआश्रमके नामसे एक छात्रावास, अनाथ बालिकाओंके लिये एक कन्या अनाथालय तथा विधवाओंके लिये कन्यामहाविद्यालयकी सबसे प्रथम आचार्या स्वर्गीया श्रीमती सावित्रीदेवीके नामपर 'सावित्री भवन' के नामसे एक विधवा-भवन है। विधवाओंको शिक्षिता करके स्वावलम्बी बनानेके उद्देश्यसे आजसे सात वर्ष पूर्व 'सावित्री भवन' की स्थापना हुई थी। इन्हें उपयुक्त शिक्षा देकर अध्यापनकार्यके योग्य बनानेका प्रयत्न किया जाता है। इससे वे स्वावलम्बी होनेके अतिरिक्त स्त्री शिक्षाके मार्गसे एक बडी बाधाको भी दूर करती है। सावित्री-भवनमे सन्तानरहित विधवाएँ ही निवास कर सकती है। उनसे मकान किराया, भोजन, दूध, घी, औषधि आदिके लिये नव रुपये मासिक लिये जाते है। पुस्तक और धोबी आदिका खर्च उन्हे अलगसे देना पडता है। विधवाओंका रहन सहन सादा रक्खा जाता है। वे किसी तरहका आभूषण न तो पहन सकती है और न अपने पास रख सकती है। यदि कभी किसी विधवाके सम्बन्धीकी ओरसे कोई खाने पीनेकी वस्तु आती है तो वह सबमें समान रूपसे विभक्त कर दी जाती है। सन् १९२७—२८ मे इस भवनमे विधवाओंकी संख्या २३ थी। कन्याअनाथालयमे रहनेवाली अनाथ कन्याओंकी शिक्षा, भोजन, वस्त्र आदिका

समस्त प्रबन्ध विद्यालयकी ओरसे किया जाता है। इसकी स्थापना आजसे पाँच वर्ष पहले हुई थी। जालन्धरके बाहरसे महाविद्यालयमे शिक्षा प्राप्त करनेके लिये आई हुई छात्राओंके निवासके लिये कन्या-आश्रम है जिसकी स्थापना सन् १८९५ ईसवीमे हुई थी। इसमें सात वर्ष या इससे अधिक उम्रकी अविवाहित कन्याएँ ही रह सकती है। प्रत्येक कन्यासे मकान किराया, भोजन, दूध, घी, औषधि और जलानेका तेल आदिके लिये १५ रुपये मासिक लिये जाते है। पहनने के वस्त्र, उनकी धुलाई और पुस्तकादिका व्यय कन्याओंको इसके अतिरिक्त अपने पाससे देना पडता है। कन्याएँ आश्रममे न तो किसी तरहका आभूषण पहन सकती है और न अपने पास रख ही सकती है। यदि किसीके घरसे खाने पीनेकी कोई सामग्री आती है तो वह सबोमे बाँट दी जाती है। कन्याओंको कामकाज तथा सेवा सिखानेके लिये आश्रमकी मुख्याधिष्ठात्री, उन्हें समय समयपर कुछ व्रत दिया करती है, जैसे—भोजन बनाना तथा बनानेमें सहायता देना, भोजन परोसना, हाथ धुलाना, खानेके कमरेमें पात्र आदि रखना, यज्ञशालाका प्रबन्ध करना, रोगीकी सेवा करना, औषधालयमे डाक्टर वा वैद्यकी सहायता करना, दीपक जलाना, प्रदीप साफ करना, आश्रमको स्वच्छ रखनेमें सहायता देना तथा अन्य गृह सम्बन्धी कार्य करना।

कन्यामहाविद्यालयका पाठ्यक्रम १२ वर्षोंका है जो नीचे लिखे

अनुसार पाँच भागोंमे विभाजित है—सभ्या विभाग—प्रथम पाँच श्रेणियाँ, शिक्षिता विभाग—छठी और सातवी श्रेणी, दीक्षिता विभाग—आठवी और नवी श्रेणी, उपस्नातिका विभाग—दशम श्रेणी, और स्नातिका विभाग—ग्यारहवी तथा बारहवी श्रेणी। शिक्षाका माध्यम आरम्भसे अन्त तक हिन्दी भाषा है। सभ्याविभागमे हिन्दी, गणित, धर्मशिक्षा, भूगोल, हाथका काम, सङ्गीत, चित्रकला और शिल्पका प्रबन्ध है। भूगोल, हाथका काम और सङ्गीतकी शिक्षा द्वितीय श्रेणीसे, चित्रकलाकी तृतीय श्रेणीसे और शिल्पकी चतुर्थ श्रेणीसे आरम्भ होती है। सस्कृत और अँगरेज़ी केवल पाँचवी श्रेणीमें पढाये जाते है और विद्यार्थिनियोंको इन दोनोंमेसे केवल एक विषय ही लेना पडता है। हाथके काममें, साधारण रूमाल आदि उल्हेडना, सामान्य बखिया, तारकशीका मामूली काम और क्रोशियेका साधारण काम सिखलाया जाता है। शिक्षिता विभागमें हिन्दी, धर्मशिक्षा, गणित और शिल्प तथा चरखा आवश्यक विषय है। इनके अतिरिक्त संस्कृत और अँगरेजीमेसे कोई एक तथा भूगोल, सङ्गीत और चित्रकलामेसे कोई एक विषय लेना पडता है। दीक्षिता विभागमें हिन्दी, धर्मशिक्षा, इतिहास, चिकित्सा और चरखा, तथा चरशिक्षा आवश्यक विषय है। इनके अतिरिक्त सस्कृत और अंगरेजीमेंसे कोई एक तथा सङ्गीत और चित्रकलामेसे कोई एक विषय लेना पडता है। उपस्नातिका विभागका पाठ्यक्रम दीक्षिता विभागके समान ही है,

सिवाय इस अन्तरके कि इसमे चिकित्साके स्थान पर अर्थशास्त्र है। स्नातिका विभागमे धर्मशिक्षा, शिल्प और चरशिक्षा तो आवश्यक है। इनके अतिरिक्त सस्कृत, हिन्दी और अगरेजीमेसे कोई एक तथा सङ्गीत और चित्रकलामेसे कोई एक विषय लेना पडता है। जहाॅ जहाॅ चरशिक्षा दी जाती है वहाॅ वहाॅ उसके साथ बाडीका काम भी शामिल है। पाकशास्त्रमे भी परीक्षा होती है और यह आवश्यक विषय समझा जाता है। सातवी श्रेणीतक व्यायाम और खेती भी आवश्यक विषय है। चर्खा कातनेके लिये एक चरखामन्दिर भी बनाया गया है, पर समयाभावके कारण अभी केवल दूसरी और तीसरी श्रेणियोको ही चरखा सिखानेका प्रबन्ध किया गया है। कन्याओकी भाषण-शक्तिको उन्नति देनेके लिये विद्यालयमे उनकी दो सभाएँ है जिनके साप्ताहिक अधिवेशन होते है। इस महाविद्यालयमें अध्यापनकार्यके लिये महिलाओके अतिरिक्त पुरुष भी नियुक्त होते है। आरम्भसे ही इस महाविद्यालयका उद्देश्य यह रहा है कि परिवारोंके लिये योग्य देवियां उत्पन्न की जावे, और इसी उद्देश्यको सामने रखते हुए शिक्षाके सम्बन्धमे पुस्तके नियत की जाती रही है। किसी सरकारी पाठविधिके अनुसार परीक्षा पास करानेका अबतक यत्न नही किया गया। परन्तु कुछ वर्षोंसे देखा गया है कि कन्याओंकी रुचि किसी न किसी यूनिवर्सिटीकी परीक्षा पास करनेकी ओर बढ रही है। विद्यालय-कमेटीने इस बात

का अनुभव करते हुए इस वर्षसे हिन्दी तथा संस्कृतके लिये ऐसी पाठविधि नियत की है जिससे कन्याओंको पञ्जाब यूनिवर्सिटीकी हिन्दी और संस्कृतकी परीक्षा पास करनेमें सुगमता हो। महाविद्यालयमें कन्याओंकी संख्या सन् १६२८ ईसवीमें १६५ थी। जालन्धर शहरमें इसकी एक और शाखा भी है जिसमें उस समय ३०० से कुछ अधिक कन्याएँ थीं।

सन् १६२६ के आरम्भतक ३४ देवियाँ महाविद्यालयसे स्नातिका हो कर निकल चुकी थीं। इनमेंसे अधिकांश गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके पहिले शिक्षा और प्रचारका कार्य करती रहीं और अनेक स्नातिकाएँ अबतक यही कार्य कर रही हैं।

चौथा अध्याय ।

काशी विद्यापीठ, काशी ।

देशकी प्रचलित शिक्षाप्रणालीकी त्रुटियोको देखते हुए काशी-वासी कुछ लोगोके मनमे बहुत दिनोसे यह बात उठ रही थी कि एक शिक्षासस्था ऐसी स्थापित होनी चाहिये जो सब प्रकारसे स्वतन्त्र हो, अर्थात् जो आर्थिक सहायता आदिके विषयमे गवर्मेण्टके अधीन न हो और उसके शिक्षाविभागके नियमोकी पाबन्द न हो, जिसमे सब प्रकारकी ऊँचीसे ऊँची शिक्षा मातृभाषा द्वारा देनेका प्रयत्न किया जाय, जिसमे मस्तिष्ककी शिक्षाके साथ साथ हृदय और हाथकी शिक्षा भी दी जाय, ज्ञानसम्पादनके साथ साथ सद्भाव और सच्चरित्रता तथा कुछ न कुछ शिल्पकलाकी भी शिक्षा हो, जिससे भारतवर्षीय सभ्यताकी उन्नति हो, जो भारतवर्षकी अवस्था और आवश्यकताओंके अनुकूल और उपयोगी हो, और जिसमे शिक्षा प्राप्त करनेके उपरान्त स्नातकोंको स्वतन्त्र जीविकाके उपार्जन करनेमें सुगमता और सहायता मिले, अर्थात् ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे

इहलोक परलोक, दीन और दुनिया, दोनो बने। जैसा किसी जैन कविने कहा है—

कला बहत्तर पुरुषकी, वामे दो सरदार।
एक जीवकी जीविका, एक जीव उद्धार॥

इस बीच भाद्रपद सम्वत् १९७७ (सितम्बर सन् १९२०) मे कलकत्तेमे कांग्रेसका जो विशेष अधिवेशन हुआ उसमे बहुत विचारके बाद यह निश्चय हुआ कि यदि भारतनिवासी अपना कल्याण चाहते है और अपने खोये हुए अधिकारोको फिरसे वापस लेना चाहते है तो वर्तमान नौकरशाहीसे शान्तिमय असहयोगके सिवाय आत्मरक्षाका कोई उपाय नही है। यह निश्चय हो जानेके उपरान्त अन्य साधनोके साथ साथ यह भी निश्चय हुआ कि अहलकारी और अर्ध अहलकारी शिक्षासस्थाओमे पढना या अपने बालकोको पढाना उचित नही है। इस उपदेशके अनुसार प्रचलित शिक्षालयोमेसे विद्यार्थियाने असहयोग करना आरम्भ कर दिया। काशीकी शिक्षासस्थाओमेसे भी कुछ विद्यार्थियोने असहयोग किया। काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके कतिपय छात्रोंने अध्यापक श्री जीवतराम भगवान्दास कृपलानीका आश्रय लेकर विद्यालयका त्याग किया और श्रीगान्धी आश्रमके नामसे सङ्घ बनाकर ईश्वरगङ्गी तालाबके निकट एक मकान किरायेपर लेकर उसमे निवास आरम्भ किया और उसमे एक पाठशाला भी आरम्भ कर दी। एक तरफ यह हो रहा

था और दूसरी ओर नई शिक्षासंस्था स्थापित करनेके अनुरागी अपने विचारोंको पूरा करनेके उद्योगमें लगे थे। सौर पूस सं० १९७७ (जनवरी सन् १९२१) में महात्मा गान्धीने श्रीभगवान्दासको पत्र लिखा कि "मुझे विश्वास है कि काशीजीमें एक महाविद्यालय शीघ्र खोलना चाहिये।" इसपर उपरोक्त विद्यानुरागी सज्जनोंने यह विचार दृढ कर लिया कि अब अपनी मनोकामनाके अनुसार कार्य करनेका समय आ गया। इसी विचारके अनुसार २८ माघ १९७७ (१० फरवरी सन् १९२१ ईसवी) का दिन इस कार्यके लिये निश्चित किया गया और महात्मा गान्धीजीसे प्रार्थना की गई कि वे अपने पवित्र हाथोंसे इसका आरम्भ करें। उन्होंने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और काशीमें पधारकर उक्त तिथिको ८ बजे प्रातःकाल काशी विद्यापीठका आरम्भ किया।

उसी दिन काशी विद्यापीठके निरीक्षकोंकी एक सभा होकर यह निश्चय हुआ कि काशीविद्यापीठका शिक्षाप्रबन्ध आदि गवर्नमेण्टके अधीन किसी प्रकारसे न रहेगा और यहाँ हिन्दुस्तानी भाषा और देवनागरी लिपिके द्वारा यथासम्भव शिक्षा देनेका यत्न किया जायगा। यह भी निश्चय हुआ कि बुद्धिका परिष्कार करनेवाली शिक्षाके साथ साथ हाथकी कारीगरीकी भी शिक्षा दी जायगी। इस विचारसे कि शिक्षासंस्थाके लिये एकाग्रताकी अधिक आवश्यकता है, जो राजनीतिके क्षेत्रमें सम्भव नहीं है, विद्यापीठके अधिकतर

सञ्चालकोंके प्रचलित असहयोग आन्दोलनमे सम्मिलित रहते हुए भी, और विद्यापीठकी देशोद्धारके उपायोके साथ पूर्णतया सहानुभूति रहते हुए भी यह सस्था कांग्रेसके अधीन नही रखी गई, और इसका नैष्ठिक अधिकार एक निरीक्षक सभाके अधीन किया गया। और निरीक्षक सभाने विद्यापीठके दिन दिनके कार्यके निर्वाहके लिये एक प्रबन्ध समितिको नियुक्त कर दिया।

स्थापनाके लगभग साढे छ वर्ष बाद २० श्रावण १६८४ (तारीख ५ अगस्त सन् १६२७ इसवी) को इस सस्थाकी रजिस्ट्री सन् १८६० ईसवीके २१ वे विधानके अनुसार कर दी गई। संकल्प-पत्रमे विद्यापीठके उद्देश्य इस प्रकार बतलाये गये है—

"अध्यात्मविद्याकी नीवपर प्रतिष्ठित भारतीय शिष्टताके सस्कार और विकासमे, तथा भारतमे बसी हुई सब जातियोके भारतीय समाजमे यथास्थान सन्निवेश और भारतमे प्रचलित आचार-विचारोके समुचित समन्वयमे, तथा स्वाधीनता और स्वदेशप्रेमके भावके साथ साथ लोकसेवा और मानवमात्रकी बन्धुताके भावके सञ्चारमे, तथा संसारके प्राचीन और नवीन शास्त्र शिल्प कला ज्ञान विज्ञान आदिकी वृद्धि और प्रचार करनेमे सहायता देना, और इस उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिये निम्नलिखित कार्य करना—

(क) ऐसी संस्थाओका स्थापन करना, कराना, सम्मिलित करना, चलाना, या आवश्यकतानुसार सहायता करना, जो किसी

प्रकारसे गवर्मेंण्टसे सहायता न लेवे और उसके अधीन न हो, और जो ऐसे प्रकारसे हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि द्वारा शिक्षा दें जो भारतवर्षकी अवस्था और आवश्यकताओके अनुकूल और उपयोगी हो। ऐसी सस्थाओके लिये, जो दूसरे प्रान्तोमे स्थापित हो जहाँकी प्रान्तीय भाषा हिन्दी नही है और विद्यापीठमे सम्मिलित होना चाहे, हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि द्वारा शिक्षा देना आवश्यक न होगा। वे अपनी प्रान्तीय भाषा और लिपिद्वारा शिक्षा दे सकेंगी। परन्तु उनके पाठ्यक्रममे हिन्दीभाषा और नागरी लिपिके ज्ञानका स्थान अनिवार्य होगा।

(ख) शिक्षाके सम्बन्धमे नये प्रकारोकी परख करना।

(ग) सस्थाओको सम्मिलित करनेके लिये नियम बनाना और सम्मिलित सस्थाओका समय समयपर निरीक्षण करना।

(घ) योग्य विद्यार्थियोंको प्रतिष्ठापत्र आदि देना और विशिष्ट विद्वानो और लोकहितकारियोंको सम्मानके चिन्ह भेंट करना।

(ज) विद्यार्थियो तथा गवेषकोको भारतवर्षमे अथवा विदेशोमे अध्ययन अथवा गवेषण करनेके लिये वृत्तियाँ देना और तत्सम्बन्धी नियम बनाना।

(झ) छात्रावास, पुस्तकागार, योग्याशाला, वेधालय, शिल्पागार, कृषिक्षेत्र आदिका स्थापन करना और चलाना।

(ट) विद्यापीठके उद्देश्यकी पूर्तिके लिये, तथा विद्यापीठ और सम्मिलित संस्थाओंके अध्यापकों और अध्येताओंके और सर्व-साधारणके कामके लिये प्राय. हिन्दी भाषा और नागरी लिपिमे शिक्षाप्रद व्याख्यान दिलाने और ग्रन्थ, निबन्ध आदिके प्रकाश करनेका प्रबन्ध करना।

(ठ) विद्यापीठ तथा सम्मिलित संस्थाओंके विद्यार्थियोंको अध्ययन समाप्त करनेपर उचित जीविका प्राप्त करनेमे सहायता देना। • • ।

(ड) अन्य सब ऐसे कार्य करना जिनसे शास्त्र और शिल्प आदिकी वृद्धि और प्रचारमे तथा भारतीय शिष्टताकी पुष्टि, संस्करण, और विकासमे सहायता मिले।"

आरम्भसे ही विद्यापीठकी आमदनीका एकमात्र जरिया श्री शिवप्रसाद गुप्त द्वारा स्थापित श्री हरप्रसाद शिक्षानिधिकी ओरसे मिलने वाली रकम ही रही है। इस निधिकी विधिवत् रजिस्ट्री २ भाद्र १९८१ (१९ अगस्त १९२४) को हुई। किन्तु श्री शिवप्रसाद जीने इसकी स्थापनाका सङ्कल्प बहुत पहलेसे हो कर लिया था और विद्यापीठको आरम्भसे ही इस निधिके नामसे सहायता मिलती रही है। इस बातका निधिके समर्पणपत्रमे स्पष्ट उल्लेख है कि इसकी जो कुछ आय हो वह काशी विद्यापीठको उस समय तक मिलती रहे जबतक निधिके सञ्चालकोंकी सम्मतिमे काशी विद्यापीठ निम्न-

लिखित उद्देश्योमेसे कुछ या कुलकी पूर्ति करता रहे। निधिका मूल धन १० लाख रुपया है।

जिन उद्देश्योकी पूर्तिके लिये निधिकी स्थापना हुई है वे ये हैं—

(क) ऐसी सस्था काशीमे स्थापित करना या यदि ऐसी कोई सस्था काशीमे विद्यमान हो, या काशीमे ऐसी सस्थाके अभावमे यदि ऐसी कोई सस्था दूसरी जगह विद्यमान हो, तो उसकी सहायता करना जहाँ हिन्दी भाषा और नागरी लिपि-द्वारा विविध प्राचीन नवीन शास्त्रो और कलाओकी शिक्षा देनेका यथा शक्ति प्रयत्न किया जाय और वाणिज्य, व्यवसाय व शिल्पसम्बन्धी विषयोकी व्यवहार रूपसे शिक्षाका भी यथा-सम्भव प्रबन्ध हो जिससे विद्यार्थियोको अपने शारीरिक परिश्रमसे भी जीवन निर्वाह करनेके साधन मिल सके।

(ख) प्रत्येक उचित प्रकारसे हिन्दी साहित्यकी वृद्धि करना, विशेषतः विज्ञान आदि विषयोपर ग्रन्थ प्रस्तुत करके हिन्दी भाषाके भण्डारके प्रत्येक उपयोगी अङ्गको परिपूर्ण करना।

(ग) उच्चकोटिके हर प्रकारके ज्ञानान्वेषणके कार्यको, विशेषकर व्याव-हारिक विज्ञानसम्बन्धी खोजको प्रोत्साहित करना, और इस अनुसन्धानके फलको हिन्दी भाषामे प्रकाशित कराना।

(घ) छात्रवृत्ति देकर सुयोग्य भारतीय विद्यार्थियोको उच्च कोटिकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिये अन्य देशोमे भेजना।

विद्यापीठके पास लगभग ११॥ एकड़ जमीन है जो ४१०००) की लागतमे खरीदी गई थी। इसमेंसे आधी जमीनका बँन्दोबस्त तो काश्तकारोके साथ है और आधीमे लगभग ६७०००) की लागत से मकानात बनवाये गये हैं जिनमे पठनपाठनका कार्य होता है।

विद्यापीठका कार्य तीन विभागोमें बटा हुआ है—विद्यालय विभाग, शिल्प विभाग और प्रकाशन विभाग। काशीके ज्ञानमण्डलने अपना पुस्तक प्रकाशन विभाग सम्वत् १६८२ से काशी विद्यापीठको दे दिया है। तबसे ज्ञानमण्डल ग्रन्थमालाकी पुस्तकें विद्यापीठकी ओर-से प्रकाशित होती है। सम्वत् १६८५ से विद्यापीठ नामकी एक उच्च कोटिकी त्रैमासिक पत्रिका विद्यापीठके कुलपति श्री भगवान्दास और प्रधानाध्यापक श्रीनरेन्द्रदेवके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिकामे इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, समाजशास्त्र, दर्शन तथा विज्ञानपर गम्भीर और गवेषणापूर्ण लेख प्रकाशित होते है। अबतक पत्रिकाके पॉच अङ्क प्रकाशित हो चुके है। प्रकाशन विभागकी ओरसे मीरकासिम, अफलातूनकी सामाजिक व्यवस्था तथा अगरेज-जातिका इतिहास (द्वितीय संस्करण) ये तीन पुस्तके प्रकाशिन हो चुकी है। पश्चिमीयूरप और हिन्दूभारतका उत्कर्ष (श्री चिन्तामणि विनायक वैद्यकी मराठी पुस्तकका अनुवाद) शीघ्रही प्रकाशित होने वाले है। हिन्दीशब्दसग्रह छप रहा है। अभिधर्मकोष और बाबर नामक ग्रन्थ लिखे जा चुके है, पर इनकी छपाई अभी नही शुरू हुई है।

विद्यापीठका शिल्पविभाग आरम्भमे केवल शिक्षाके उद्देश्यसे चलाया गया था और उसमे सूत कातने, बुनने, लकडीका काम, बेतका काम और सिलाईकी शिक्षाका प्रबन्ध था। बीचमे एक लकडीका कारखाना भी खोला गया, पर यह प्रयोग बिलकुल असफल रहा, और कारखाना बन्द कर दिया गया। विद्यापीठके विद्यालय विभागके पाठ्यक्रममे ऐसी व्यवस्था है कि कुमार विद्यालयके विद्यार्थियोको बौद्धिक शिक्षाके अतिरिक्त किसी एक शिल्पकी शिक्षा भी दी जानी चाहिये। इसी नियमकी पूर्तिके लिये आजकल शिल्पविभागमे केवल सिलाईकी शिक्षाका प्रबन्ध है।

विद्यापीठका मुख्य कार्य उसके विद्यालय विभाग द्वारा होता है जिसका पाठ्यक्रम तीन भागोमे बॉटा गया है--बालविद्यालय, कुमार विद्यालय और महाविद्यालय। बालविद्यालयकी पहली श्रेणीसे महाविद्यालयकी अन्तिम श्रेणी तककी शिक्षा १५ वर्षोमे समाप्त होती है—बाल विद्यालयकी ५ वर्षोमे, कुमार विद्यालयकी छ वर्षोमें और महाविद्यालयकी चार वर्षो मे। बाल, कुमार तथा महाविद्यालयोकी बौद्धिक शिक्षाकी तुलना मोटे तोरपर सरकारी विद्यालयोके प्राइमरी स्कूल, हाइस्कूल और कालेजके एम० ए० स्टैण्डर्ड तककी शिक्षासे की जा सकती है।

बालविद्यालयमे हिन्दी, गणित, इतिहास, भूगोल, चित्रकला तथा साधारण वस्तुपाठकी शिक्षा दी जाती है। हिन्दीमें लहेरिया-

सराय दरभङ्गा द्वारा प्रकाशित राष्ट्रीय साहित्य चौथे भाग तककी शिक्षा अपेक्षित है। इतिहासमे पुराणोकी कहानियाँ तथा भूगोलमे सयुक्त प्रान्त तकके भूगोलका ज्ञान कराया जाता है। गणितमे जोड, बाकी, गुणा, भाग, लघुत्तम समापवर्त्य, महत्तम समापवर्तक तथा भिन्नकी शिक्षा दी जाती है।

कुमार विद्यालयका पाठ्यक्रम छः वर्षों का है जो दो भागोमे विभाजित है—पहला प्रथम चार वर्षोका और दूसरा अन्तिम दो वर्षों का। अन्तिम दो वर्षोंके पाठ्यक्रमकी परीक्षा विशारद परीक्षा कहलाती है। प्रथम चार वर्षोंमे हिन्दी, गणित और महाजनी हिसाब, इतिहास, भूगोल, अगरेजी, सस्कृत, विज्ञान तथा किसी एक दस्तकारीकी शिक्षा दी जाती है। विशारद परीक्षाके लिये हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, विज्ञान, भारतीय शासन, नागरिकशास्त्र, भारतवर्षकी वर्तमान जागृतिका इतिहास, स्वास्थ्यरक्षा, शरीर रचना तथा कोई एक उद्योग ये आवश्यक विषय है। इनके अतिरिक्त विद्यार्थीको गणित, सस्कृत तथा इतिहासभूगोल इन तीन विषयोमेसे कोई एक विषय लेना पडता है। विशारद परीक्षाका कोर्स अँगरेजीको छोडकर अन्य विषयोंमे सरकारी विश्वविद्यालयोके मैट्रिकुलेशनके कोर्ससे ऊँचा है। अँगरेजी मैट्रिकुलेशनके कोर्सके बराबर है। उद्योगमे पाठ्यक्रमके अनुसार विद्यार्थी बेतका काम, बढईका काम मिट्टीका बर्तन बनाना तथा दर्जीके काममेसे कोई एक

ले सकता है। पर जैसा कि ऊपर कहा गया है आजकल केवल दर्जीके कामकी शिक्षाका प्रबन्ध है।

कुमार विद्यालयके पाठ्यक्रममे बौद्धिक शिक्षाके साथ साथ औद्योगिक शिक्षाको स्थान देनेका एक कारण यह भी है कि यदि कोई विद्यार्थी विशारद तककी शिक्षाका कोर्स समाप्त करके आगे महाविद्यालयमे प्रवेश न करना चाहे तो वह अब तक जिस उद्योगकी शिक्षा पाता रहा है उसीमे विशेष निपुणता प्राप्त करके अपनी जीविका चला सके। पर जो विद्यार्थी ऐसी औद्योगिक शिक्षाको अपनी जीविकाका साधन न बनाना चाहे उनके लिये भी केवल शिक्षाकी दृष्टिसे किसी एक हाथकी कारीगरीका साधारण ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक समझा गया है। कुमार विद्यालयका पाठ्यक्रम बनाते समय इस बातका ध्यान रक्खा गया है कि उसके प्रथम चार वर्षों-की शिक्षा समाप्त करनेपर अँगरेजीको छोड़ कर अन्य विषयोमे विद्यार्थीकी योग्यता साधारणतया मैट्रिकुलेशनके बराबर हो जाय। शिक्षाका माध्यम मातृभाषा होनेके कारण यह असम्भव नही है। इन श्रेणियोमे गणित और हिन्दीके अलावा सस्कृत, अँगरेजी और विज्ञान इन तीनो विषयोंकी शिक्षा आवश्यक समझी गई है। संस्कृतके ज्ञानके बिना भारतीय सस्कृतिका रहस्य समझमे नही आ सकता, और वर्त्तमान उन्नतिशील पाश्चात्य देशोका ज्ञान-भण्डार हमारे लिये अँगरेजी भाषाके द्वारा ही सुगमतासे प्राप्य

है। विशारद परीक्षाका पाठ्यक्रम इस प्रकार बनाया गया है कि विद्यार्थीको हिन्दी और अँगरेजी भाषाका ज्ञान होनेके अलावा भारत वर्षके वर्तमान शासन विधान तथा वर्तमान भारतके धार्मिक, सामाजिक एवम् राजनैतिक आन्दोलनोका भी साधारण ज्ञान हो जाय। इसके अतिरिक्त जिस विषयमे उसकी विशेष रुचि हो उस विषयका वह विशेष ज्ञान प्राप्त करे।

महाविद्यालय विभागका पाठ्यक्रम चार वर्षोका रक्खा गया है। प्रथम वर्षमे विद्यार्थियोंको हिन्दी, सस्कृत तथा अगरेज़ीका अध्ययन करना पडता है। इनके अतिरिक्त अर्थशास्त्र, शरीर रचना, शरीर-विज्ञान और भारतवर्षके धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक अवनतिके अध्ययनपर साधारण व्याख्यान होते है। शेष तीन वर्षोमे अग्रेजी अनिवार्य रूपसे तथा (क) दर्शन, (ख) इतिहास, अर्थशास्त्र, राजशास्त्र तथा (ग) प्राचीन भारतीय इतिहास और सस्कृति, इन तीन वैकल्पिक विषयोमेसे कोई एक लेना पडता है। द्वितीय वर्षमे हिन्दी सब विद्यार्थियोको तथा सस्कृत उन विद्यार्थियोको, जो दर्शन अथवा भारतीय सस्कृति लेना चाहते है, पढनी पडती है। वैकल्पिक विषय दर्शन लेनेवाले विद्यार्थियोको पूर्वीय और पाश्चात्यदर्शन पढ़ना पडता है। इतिहास, अर्थशास्त्र और राजशास्त्र लेनेवालोको आरम्भसे अबतकका भारतीय इतिहास, पन्द्रहवी शताब्दीसे वर्तमान कालतकका यूरोपीय इतिहास, प्राचीन भारतीय एवम्

अर्वाचीन पाश्चात्य राजशास्त्र और अर्थशास्त्रमे उसके सिद्धान्त, द्रव्य, चलन, बैंकिंग्, कम्पनी सञ्चालन, भारतीय व्यापारिक भूगोल, आर्थिक सिद्धान्तोका इतिहास और विकास, श्रमजीवी सङ्घ, सहयोग, अन्तर्जातीय व्यापार, भारतवर्षका आर्थिक इतिहास, राष्ट्रीय आय व्ययशास्त्र, भूमिविधान तथा खद्दरका अर्थशास्त्र पढना पडता है। इसके अतिरिक्त इण्डियन पिनलकोड और क्रिमिनल प्रोसीजर कोड भी पढाये जाते है। प्राचीन भारतीय इतिहास और सस्कृति लेनेवालोको आरम्भसे १२ वी शताब्दी तकका भारतका इतिहास, धर्मशास्त्र, प्राचीन भारतीय साहित्य और उसमे अलङ्कार, नाटक, कला शिल्प तथा विज्ञान, दर्शन, तथा राजशास्त्र पढाये जाते है। महाविद्यालयका पाठ्यक्रम बनानेमे इस बातका ध्यान रक्खा गया है कि विद्यार्थी अपनी प्रवृत्ति और रुचिके अनुसार कोई एक वैकल्पिक विषय चुन ले और उसीका विशेष अध्ययन करे। अन्तिम वर्षमे विद्यार्थीको अपने वैकल्पिक विषयके किसी अशपर एक निबन्ध लिखना पडता है जिसमे उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। महाविद्यालयकी अन्तिम श्रेणी तककी शिक्षा समाप्त करनेपर विद्यार्थीको शास्त्रीकी उपाधि दी जाती है।

विद्यापीठके विद्यालय विभागमे आरम्भसे अन्ततक शिक्षाका माध्यम हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि है। किन्तु इसका अर्थ केवल इतनाही है कि व्याख्यान सब हिन्दीमे होते है। महाविद्या-

लय विभागकी अधिकांश—प्राय. सब—पाठ्यपुस्तके अगरेजी भाषामे ही है, अतः विद्यार्थियोके लिये उसका पर्याप्त ज्ञान आवश्यक समझा गया है। विद्यार्थियोके लिये चरखे अथवा तकली पर सूत कातना, खादी पहिनना और खानपानमे जात्तपाँतके कारण छुआछूतका खयाल न रखना आवश्यक है। कुमार विद्यालयमे विवाहित विद्यार्थी नही लिये जाते। महाविद्यालयमे वे पढ तो सकते है पर छात्रावासमे नहीं रह सकते। विद्यार्थियोसे शिक्षा अथवा छात्रावासमे रहने आदिके लिये किसी प्रकारका शुल्क नही लिया जाता। रुग्णावस्थामे छात्रावासियोंकी चिकित्साका प्रबन्ध भी विद्यापीठकी ओरसे ही होता है। छात्रावासमे रहनेवाले विद्यार्थियोका मासिक खर्च कुमार विद्यालयमे १२ रुपये और महाविद्यालयमे १५ रुपयेके लगभग होता है। योग्य विद्यार्थियोको विद्यापीठकी ओरसे कुछ छात्रवृत्ति भी दी जाती है।

विद्यार्थी परिषद् और कुमार सभाके नामसे क्रमश. महाविद्यालय तथा कुमार विद्यालयके विद्यार्थियोकी अलग अलग सभाए है जिनका सञ्चालन वे स्वय करते है। वक्तृत्व शक्तिकी वृद्धिके लिये विद्यार्थियोकी वाद सभाएँ भी है जिनके द्वारा प्रति सप्ताह अँगरेजी और हिन्दीमे वाद विवाद होते है। हिन्दी, सस्कृत और अँगरेजीमे विद्यार्थियोकी हस्तलिखित पत्रिकाएँ भी निकलती है। मेलो और अन्य सार्वजनिक कार्योके अवसरपर यहाँके विद्यार्थी प्रबन्ध और

लोकसेवाका अच्छा कार्य करते है। आजकल विद्यापीठमे बाल विद्यालयकी शिक्षाका प्रबन्ध नही है। कुमार तथा महाविद्यालयमे विद्यार्थियोकी संख्या क्रमश ५५ और २८ है। विद्यापीठकी स्थापनाके एक वर्ष बाद कुमार एव महाविद्यालयमे विद्यार्थियोकी सख्या क्रमश २०० और १०० के लगभग थी। इसमे उत्तरोत्तर कमी आती गई। पर पिछले तीन वर्षोंसे कोई अन्तर नही हो रहा है।

विद्यापीठके नियमानुसार ऐसी अन्य शिक्षासंस्थाएँ भी इससे सम्बद्ध हो सकती है जो सरकारके नियत्रणमे न हो और शिक्षाका प्रबन्ध विद्यापीठके पाठ्यक्रमके अनुसार करती हो। आरम्भमे ऐसे सम्बद्ध विद्यालयोकी सख्या २३ थी जो सवत् १९८५ मे घटकर ५ रह गई थी। पर जब निरीक्षण करनेपर मालूम हुआ कि इनमेसे भी चारका पाठ्यक्रम विद्यापीठके नियमानुसार नही है, तब वे असम्बद्ध कर दी गई। अब केवल एक बालविद्यालय ही विद्यापीठसे सम्बद्ध है। विद्यापीठकी ओरसे कुछ सस्कृत परीक्षाएँ लेनेका भी प्रबन्ध है पर अबतक केवल तीन विद्यार्थी ही उन परीक्षाओंमें सम्मिलित होकर उत्तीर्ण हुए है।

विद्यापीठके कुमार और महाविद्यालयसे सवत् १९८६ (सन् १९२९) तक ३१४ विशारद और ५१ शास्त्री (स्नातक) निकल चुके हैं। शास्त्रियोंमेंसे २ अभी विशेष अध्ययनमें लगे हुए है, ९ राष्ट्रीय विद्यालयों तथा महाविद्यालयोमे अध्यापन कार्य कर रहे है, ४ पत्र

सम्पादन कार्यमे लगे है, ३ खद्दरका काम कर रहे है, ११ कांग्रेस, अछूतोद्धार, मजदूर सङ्गठन एवम् अन्य प्रकारके सार्वजनिक कार्योंमें लगे हुए है १७ घरके काम और व्यापार आदिमे लगे हुए हैं, और ५ अन्य स्थानोंपर नौकरी कर रहे है। सार्वजनिक कार्योंमे लगे हुए शास्त्रियोमेसे ३ लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित लोकसेवकसमितिके सदस्य है। जो शास्त्री घरके अथवा अन्य खानगी कामोमे लगे हुए है, वे भी अपने अपने स्थानके सार्वजनिक कार्योंमें अच्छा भाग लेते है। शास्त्रीमण्डलके नामसे विद्यापीठके स्नातकोंका एक सङ्घ है जिसके द्वारा सब शास्त्रियोंमें आपसमे, तथा उनके और विद्यापीठके बीच सम्बन्ध स्थापित रहता है।

सम्वत् १९८४ (सन् १९२७) से काशीकी जनताके लाभके लिये विविध शास्त्रीय विषयोपर विद्यापीठकी ओरसे नगरमे सुलभ व्याख्यान दिलानेका प्रबन्ध किया गया है।

काशी विद्यापीठका स्थापित हुए आठ वर्ष हो चुके। स्थापनाके दो वर्षोंके भीतर इसका जा स्वरूप निश्चित हो गया उसमे, यद्यपि थोडा बहुत परिवर्तन बराबर होता रहा है किन्तु कोई मौलिक अन्तर नही होने पाया है। विद्यापीठके शिक्षाक्रममे विद्यार्थियोंके आचार विचारके परिष्कारकी ओर भी विशेष ध्यान देनेका प्रयत्न किया जाता है, किन्तु यहॉका वातावरण बौद्धिक शिक्षाप्रधान ही कहा जा सकता है। विद्यापीठ एक शिक्षा संस्था होते हुए भी राजनैतिक

हलचलोसे अपनेको बिल्कुल अलग नही रख सका है। इसके अध्यापक और विद्यार्थी सार्वजनिक कार्योंमे खूब भाग लेते हैं।

सम्वत् १९८६ (सन् १९२९) में विद्यापीठकी निरीक्षक सभाने एक उपसमिति नियत की है, जिसे यह काम सौंपा गया है कि पिछले आठ वर्षोंके अनुभव और देशकी बदली हुई परिस्थितिका खयाल रखते हुए इस विषयपर विचार करे कि विद्यापीठको अपनी कार्यप्रणालीमे किस प्रकारका परिवर्तन करनेकी आवश्यकता है। इस उपसमितिकी क्या सिफारिशे होंगी और उनके अनुसार विद्या पीठके स्वरूपमे क्या परिवर्तन होगा—यह अभी नही कहा जा सकता।

पाँचवाँ अध्याय।

गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद।

गुजरात विद्यापीठ उन संस्थाओंमेंसे एक समझा जाता है, जिनका जन्म असहयोग आन्दोलनके कारण हुआ था। किन्तु इसकी स्थापनाका निश्चय देशमें असहयोग आन्दोलन आरम्भ होनेके पहले ही किया जा चुका था। श्रावण सुदी ४ संवत् १९७६ (तारीख १९ जुलाई सन् १९२० ईसवी) को चौथी गुजरात प्रान्तीय राजनैतिक परिषद्ने गुजरात प्रान्तमें राष्ट्रीय शिक्षाका प्रचार करनेके लिये एक कमेटी नियत की। इस कमेटीने उसी वर्ष आश्विन सुदी ७ (तारीख १९ अक्टूबर) को गुजरात विद्यापीठकी स्थापना की। असहयोग आन्दोलनने इसके बाह्य स्वरूपको आरम्भमें बहुत आकर्षित बनाया। आरम्भमें इसके अन्तर्गत अहमदाबाद, बम्बई और सूरतमें एक एक महाविद्यालय (कालेज) खोले गये, एक पुरातत्व मन्दिर स्थापित किया गया, अध्यापकोंकी तालीमके लिये एक अध्यापन मन्दिर खोला गया और इसके नीचे ४१ विनय

मन्दिर (हाइस्कूल) ५४ कुमार मन्दिर (प्राइमरी स्कूल), २ कुमारी मन्दिर (कन्या पाठशालाएँ) ३ अन्त्यज शालाएँ और १ रात्रिशाला चलने लगे। इन सब सस्थाओमे विद्यार्थियोकी सख्या भी पर्याप्त थी। केवल अहमदाबादके महाविद्यालयमे सन् १९२२-२३ मे २०७ विद्यार्थी थे। पर धीरे धीरे असहयोग आन्दोलनके साथ साथ इन सस्थाओकी अवस्थामे भी शिथिलता आने लगी। विद्यापीठकी नियामक सभाने पीठके कुलपति महात्मा गान्धीकी सूचनापर अपनी मार्गशीर्ष बदी ५ सवत् १९८२ की बैठकमे आचार्य श्री आनदशकर ध्रुवकी अध्यक्षतामें एक उपसमिति नियत की और उसे अन्य बातोके साथ साथ यह काम सौपा कि पिछले छः वर्षोंके अनुभव और देशकी तत्कालीन दशाका खयाल रखते हुए विद्यापीठकी शिक्षाप्रचारपद्धतिके दृष्टिकोण और उसके अनुसार महाविद्यालय तथा विनय और कुमारमन्दिरोके शिक्षणक्रम, विद्यापीठ एवम् उससे सम्बद्ध सस्थाओके आपसके सम्बन्ध, और पुरातत्व मन्दिरकी कार्यपद्धति आदि बातोके सम्बन्धमे विचार करके, विद्यापीठका भावी स्वरूप और कार्यक्रम कैसा हो—इस विषयपर अपनी सम्मति दे। इस उपसमितिकी सिफारिशोके अनुसार विद्यापीठके सङ्गठन और उसकी कार्यपद्धतिमे कई फेर फार किये गये। एक साल तक तो पुरानी परिपाटीसे ही काम चला। अन्तमे नियामक सभाने गॉधीजीसे प्रार्थना की और उनकी सम्मतिके

अनुसार ट्रस्टिओका एक स्थायी मण्डल बना, और विद्यापीठका कार्यभार उसे सौपा गया

गुजरात विद्यापीठका मुख्य उद्देश्य स्वराज्यप्राप्तिके लिये चलते हुए आन्दोलनोके लिये शिक्षा द्वारा चारित्र्यवान्, शक्ति सम्पन्न, संस्कारी और कर्त्तव्यनिष्ठ कार्यकर्त्ता तैयार करना है। विद्यापीठकी विशेषताएँ इस प्रकार गिनाई जा सकती है—

(क) यह असहयोगी सस्था है।

(ख) यहाँ, शिक्षाका प्रबन्ध इस आशा और दृष्टिसे किया जाता है कि आगे चलकर विद्यार्थी गाँवोमे जनताकी सेवा करेंगे।

(ग) शिक्षाका माध्यम स्वभाषा (गुजराती) है। हिन्दुस्तानीको राष्ट्रभाषाके तौरपर आवश्यक स्थान दिया गया है।

(घ) खादीको केन्द्रमे रखकर सब शिक्षाको योजना की गई है।

(ङ) शिक्षाकी योजनामे साहित्य, सङ्गीत, कलाका और संस्थागत जीवनमे राष्ट्रीय सस्कृतिका खयाल रक्खा गया है।

(च) देहातोकी आर्थिक स्थितिका निरीक्षण करके भारतवर्षका स्वतन्त्र अर्थशास्त्र निर्माण करनेकी आशा रक्खी गई है।

(छ) बौद्धिक (मानसिक) और औद्योगिक शिक्षाको बराबर बराबर स्थान महत्व और समय दिया जाता है।

(ज) सब धर्मो और पन्थोकी ओर समान उपेक्षाकी दृष्टि न रखकर समान आदर भावकी दृष्टि रक्खी गई है।

(झ) अस्पृश्यताको कही भी किसी भी रूपमे स्थान नही है।

(ञ) 'सा विद्या या विमुक्तये' इस ध्रुवमन्त्रको दृष्टिके सामने रख-कर यह सस्था कार्य करती है।

(ट) लडके और लडकियोंकी शिक्षाका प्रबन्ध साथ साथ है। पर लडकियोकी सख्या बहुत कम है।

गुजरात विद्यापीठका वर्तमान कार्यक्षेत्र मोटे तौरपर चार-भागोंमें बॉटा जा सकता है—(१) शिक्षण विभाग (२) ग्राम सेवा मन्दिर (३) पुरातत्व मन्दिर, और (४) प्रकाशन-विभाग । प्रकाशन विभागकी ओरसे अबतक कुमार मन्दिर (बालपाठशाला) विनय मन्दिर (हाईस्कूल) तथा महाविद्यालय (कालेज) के विद्यार्थियोंके लिये लगभग ३० उपयोगी पुस्तके प्रकाशित हुई है। गुजराती भाषामे शालोपयोगी राष्ट्रीय पाठ्यपुस्तकोंका अभाव दूर करना इस विभागका उद्देश्य है।

पुरातत्व मन्दिरमे अबतक विशेषकर बौद्ध और जैन साहित्यमे खोज सम्बन्धी काम ही होते रहे है। और इन्ही विषयोपर महत्वपूर्ण ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए है। किन्तु अब ऐसे ग्रन्थोके प्रकाशनकी ओर विशेष रूपसे ध्यान देनेका विचार है जो प्रजाके जीवनके लिये उप-योगी हो और पाठ्यक्रममे रखे जाने योग्य हों। इस विभागके भूतपूर्व आचार्य मुनि जिनविजयजी, जर्मनभाषा और सशोधनपद्धतिका अध्ययन करनेके लिये जर्मनी गये हुए है। पहिले इस विभागसे एक

ऊच्च कोटिकी पुरातत्व त्रैमासिक पत्रिका निकलती थी, किन्तु आज-कल वह बन्द है। थोडे ही दिन हुए गाँधीजीकी विशेष इच्छाके अनु-सार विद्यापीठने एक जोडणी-कोष तैयार करके उसके द्वारा गुजराती शब्दोका हिज्जे स्थायी करनेका प्रयत्न किया है। अबतक जितने अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए है उनमेसे कुछ ये है—

श्री धर्मानन्द कोसबी सपादित—

१ बौद्ध सङ्घका परिचय

२ समाधिमार्ग

३ धम्मपद

४ अभिधम्मत्थसङ्गहो

५. सुत्तनिपात

६ मज्झिम निकाय

७. बुद्धलीलासारसग्रह

पण्डित सुखलालजी और बेचरदास संपादित—

८–१२ संमति तर्क—५ विभाग (जैन न्यायशास्त्रका बृहद्ग्रथ)

१३. तत्त्वार्थ सूत्र

पण्डित बेचरदास सपादित—

१४ प्राकृत भाषाओंका व्याकरण

अन्यान्य अध्यापकोंके द्वारा सपादित—

१५ वैदिक पाठावलि

१६ उपनिषत्पाठावलि

१७ पालीपाठावलि

१८ प्राकृतकथासंग्रह

१६ काव्यप्रकाश—पूर्वार्द्ध

ग्रामसेवा मन्दिरकी स्थापना सन् १६२६ ईसवीमे, इस कार्यके लिये श्री नगीनदास अमोलखराय द्वारा मिले हुए एक लाख रुपयेके दानसे हुई है। इसका उद्देश्य है स्वराज्यकी प्राप्तिके लिये गाँवों काम करनेवाले कार्यकर्त्ता तैयार करना। इस मन्दिरमें वे ही विद्या प्रविष्ट हो सकते है जो विद्यापीठके सिद्धान्तोंको मानते हों श्र अपनी शिक्षा समाप्त करनेके पश्चात् विद्यापीठकी अधीनतामे वर्षोतक गाँवोंका काम करनेकी प्रतिज्ञा करते हो। उनका रहनर सादा होना चाहिये, साथही शारीरिक श्रमके लिये मनमे उत्साह और शरीरमे बल भी होना चाहिये। प्रवेशमे अविवाहित नौजवानोंको तरजीह दी जाती है। विनीत (मैट्रिकुलेशन) तककी शिक्षा पाये हुए विद्यार्थियोको दो वर्षोतक और स्नातकोंको एक वर्षतक शिक्षा प्राप्त करनी होती है। प्रवेशमें स्नातकोको तरजीह दी जाती है। विद्यार्थियोको विद्यापीठके छात्रावासमें ही रहना पड़ता है और उन्हें बीस रुपये मासिक तककी छात्रवृत्ति दी जाती है। शिक्षा समाप्त करनेपर उन्हे प्रमाणपत्र दिये जायँगे और वे तीससे पचास रुपये तक मासिक पुरस्कारपर गाँवोका काम करनेके लिये भेजे जायँगे। यह

पुरस्कार बढकर साठ रुपये मासिक तक हो सकता है। इन कार्य-कर्ताओसे यह आशा की जाती है कि वे अपने कामको जीविका निर्वाहका एक जरिया न समझकर उसे अपने जीवनका उद्देश्य समझेंगे।

विद्यार्थियोको गुजराती भाषा, भूगोल, महाजनी हिसाब और ङ्गीतका साधारण ज्ञान करानेके अतिरिक्त नीचे लिखे विषयोकी ात्ता दी जाती है —अर्थशास्त्रके सिद्धान्त, गुजरातके गॉवोकी आर्थिक ार सामाजिक अवस्थाका अध्ययन, धुनना, कातना, और खादी यंके लिये आवश्यक बढईगीरीकी शिक्षा, सफाई और स्वास्थ्य-ा, साधारण चिकित्सा, शिक्षा सम्बन्धी बाते और गॉवोमे पाठ-ालाओका प्रबन्ध, खेल, शारीरिक व्यायाम और कवायद, जमीनकी ैमाइश, सार्वजनिक सभाओके सञ्चालनके नियम और भारतवर्षके ेन्भ भिन्न धर्म मजहबोके साधारण सिद्धान्त। इनके अतिरिक्त मालगुजारी, गृहउद्योग, सहकारी सभाएँ, किसान सभाएँ, मजदूर सभाएँ तथा ऐसे ही अन्य विषयोपर भी व्याख्यान होगे। विद्यार्थि-योको नीचे लिखे विषयोका भी ज्ञान होना चाहिये —भोजन बनाना, दूध दुहना, गाडी हांकना, तैरना, बाजार करना, साधारण चित्र-कारी और हिन्दी बोलना। किन्तु इनके लिये कोई बाकायदा पाठ्यक्रम नही रक्खा गया है।

इस मन्दिर द्वारा शिक्षित कार्यकर्त्ताओसे नीचे लिखे कामोके

करनेकी आशा की जाती है.—कॉग्रेसका काम, खादीका काम, ग्राम्य पाठशालाओंका काम, गॉवोमे सफाई आदिके प्रचारका काम, साधारण चिकित्सा, शारीरिक शिक्षा और गॉवोमें युवक सभाओंकी स्थापना, भजन मण्डलियोंका सङ्गठन, सामाजिक तथा धार्मिक सुधार, गॉवोंकी आर्थिक और सामाजिक अवस्थाके अध्ययनके लिये अङ्क एकत्रित करना, और पञ्चायतका काम।

शिक्षा विभागका काम तीन भागोमे बॅटा हुआ है—कुमार मन्दिर (प्रारम्भिक पाठशाला) विनय मन्दिर (हाईस्कूल) और महाविद्यालय (कालेज)। सम्पूर्ण-पाठक्रम १४ वर्षोंका है—कुमार मन्दिर ४ वर्षोंका, विनय मन्दिर ६ वर्षोंका और महाविद्यालय ४ वर्षोंका। कुमारमन्दिरकी चारों श्रेणियॉ अहमदाबाद शहरमे है और विनय मन्दिर तथा महाविद्यालय शहरके बाहर विद्यापीठके निजी स्थानमे है। विनयमन्दिरमे गुजराती, गणित, विज्ञान, हिन्दी, सङ्गीत, चित्रकला, इतिहास, भूगोल, अर्वाचीन भाषा, प्राचीन भाषा और किसी एक उद्योगकी शिक्षा दी जाती है। अर्वाचीन भाषामे पाठ्यक्रमके अनुसार विद्यार्थी अगरेजी, बॅगला, हिन्दी और मराठीमेसे कोई एक ले सकते है। पर आजकल केवल ऑगरेजीका प्रबन्ध है। इसी तरह प्राचीन भाषामे सस्कृत, प्राकृत, पाली और फारसीमेसे कोई एक ले सकते है, पर आजकल केवल संस्कृतका प्रबन्ध है। हिन्दी और प्राचीन भाषाकी शिक्षा विनयमन्दिरकी क्रमशः द्वितीय और तृतीय

श्रेणियोंसे आरम्भ होती है। इतिहास भूगोलमेसे प्रथम तीन श्रेणियोमें केवल भूगोल, चतुर्थ और पञ्चममे केवल इतिहास और छठीमे इतिहास भूगोल दोनोंकी शिक्षा दी जाती है। उद्योगमे, बुनाई (रँगाई और छपाईके साथ), बढ़ईगीरी, लोहारी, चमारी, पशुपालन एवम् खेती आदि राष्ट्रपोषक कार्योंकी शिक्षाका प्रबन्ध होनेवाला है। पर आजकल केवल बुनाई और बढ़ईगीरीका ही प्रबन्ध है। प्रतिदिन आधा समय मानसिक शिक्षाके लिये और आधा औद्योगिक शिक्षा-के लिये दिया जाता है।

महाविद्यालयके प्रथम वर्षमे प्रत्येक विद्यार्थीको गुजराती निबन्ध, अर्वाचीन भाषा, उर्दू, सम्पत्तिशास्त्रके मूल तत्व, ससारके इतिहासकी रूपरेखा, राष्ट्रीय प्रगतिका इतिहास और सस्कृतकी शिक्षा दी जाती है। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्षोंके लिये भारतीय सम्पत्तिशास्त्र, गाँवोकी आर्थिक अवस्थाका अध्ययन और अङ्क-शास्त्र, बही खाता, हिन्दी, और उर्दू अथवा सस्कृत ये आवश्यक विषय है। इनके अतिरिक्त प्रत्येक विद्यार्थीको साहित्य मन्दिर समाजविद्या मन्दिर, और वाणिज्य मन्दिर—इन तीन मन्दिरोमेसे किसी एक मन्दिरका पाठ्यक्रम ऐच्छिक विषयके तौरपर लेना पड़ता है। साहित्य मन्दिरमे प्रत्येक विद्यार्थीको गुजराती, सस्कृत और अंगरेजीमेसे किन्ही दो भाषाओंके साहित्य, मानस शास्त्र, समाजके प्रेरक तत्वोका साहित्य और विज्ञानका विस्तार—इन विषयोंका

केन्द्रमें रखकर की गई है। अध्यापकोंका सग्रह करनेमें इस बातका ध्यान रक्खा जाता है कि अध्यापक खादी धारी, खादी सेवक, चारित्र्य सम्पन्न, और स्वराज्यनिष्ठ हो, सत्य और अहिंसामे उन की श्रद्धा हो, उद्योग और श्रमकी ओर उनकी अरुचि न हो, स्वभाषाकी ओर अनन्य भक्ति हो, गरीबीका अभिमान हो, सादगीकी आदत हो, कौटुम्बिक आश्रितोका भार उनपर बहुत न हो, ब्रह्मचर्यका महत्व समझते हो और किसी भी धर्म और जातिसे द्वेष न रखते हो। अध्यापकोके लिये भी प्रति दिन अपना आधा समय उद्योगके लिये देना आवश्यक है। विद्यार्थियोंके लिये प्रतिदिन सूत कातना और हमेशा शुद्ध खद्दरके वस्त्र पहिनना अनिवार्य है। प्रतिदिन प्रार्थनाके उपरान्त पढाई शुरू होती है। छात्रावासमें भी साय प्रात. प्रार्थना होती है। विद्यार्थियोंका जीवन सादा है। भोजनोपरान्त अपनी थालियाँ वे स्वय धोते है। कपडे धोनेके लिये भी कोई धोबी नही है। विद्यार्थी स्वय धोते हैं।

विद्याशुल्क महाविद्यालयके विद्यार्थियोसे ७२ रुपये वार्षिक लिया जाता है जिसमेसे २ रुपया विद्यार्थीमण्डलके जिम्मे किया जाता है। यही शुल्क विनयमन्दिरमे कक्षाके अनुसार १॥ रुपयेसे तीन रुपये तक और कुमारमन्दिरमे १ रुपयेसे डेढ रुपये तक मासिक है। छात्रावासमे एक भोजनालय है जिसमे प्रत्येक छात्रावासीको भोजन करना पडता है। यहाँ जातपाँतके कारण छुआछूत

का खयाल नही रखा जाता और केवल निरामिष भोजन ही दिया जाता है। भोजनव्यय लगभग ११ से १३ रुपये तक मासिक पडता है। विद्यार्थियोको विद्यापीठकी ओरसे बाकायदा छात्रवृत्ति तो नही दी जाती, किन्तु महाविद्यालयके कुछ गरीब विद्यार्थियोको शुल्कके बराबर धन कर्ज दिया जाता है जिस पर सूद नही लिया जाता, और उनसे आशा की जाती है कि शिक्षा समाप्त करनेके पॉच वर्षोंके भीतर उसे वे अदा कर देगे। अब विद्यापीठमे ऐसा प्रबन्ध हो रहा है जिससे गरीब विद्यार्थी शारीरिक मेहनत करके अपनी आजीविका प्राप्त कर सकें। कुछ लडके इस प्रकार स्वावलम्बी होकर शिक्षा प्राप्त कर रहे है। विद्यापीठकी ओरसे ३ रात्रिशालाएँ चलती है, और विद्यापीठके भङ्गी, चपरासी आदि सेवकोके लिये भी एक वर्ग चलता है। यह सब काम थोडेसे गरीब विद्यार्थी अपने खाली वख्तमे करते है जिसके लिये उन्हे वेतन दिया जाता है। विनयमन्दिरके अधिकॉश विद्यार्थियोसे विद्याशुल्क नही लिया जाता। लडके और लडकियोकी शिक्षा तो साथ साथ होती है। पर लडकियोके लिये छात्रावासका प्रबन्ध नही है। विनय मन्दिरके छात्रालयमे अब केवल अविवाहित लडके ही लिये जाते है। पहलेके जो थोडे विवाहित लडके है उनको घर नही जाने दिया जाता।

विद्यापीठ द्वारा प्रत्यक्ष रूपसे सञ्चालित महाविद्यालय, पुरा-

तत्व मन्दिर, ग्रामसेवा मन्दिर, विनयमन्दिर और कुमारमन्दिरके अतिरिक्त ११ अन्य विनय और कुमारमन्दिर भी विद्यापीठसे सम्बद्ध है। इन सबमे मिला कर आजकल विद्यार्थियोकी संख्या लगभग ७०० है जिनमेसे ३४ अहमदाबादके महाविद्यालय और लगभग १०० विनयमन्दिरमे है। सन् १९२१—२२ मे विद्यापीठद्वारा प्रत्यक्षरूपसे सञ्चालित और सम्बद्ध सस्थाओकी सख्या ४६ थी जिनमे ग्यारह हजारसे ऊपर विद्यार्थी थे।

सन् १९२९ के आरम्भतक विद्यापीठसे कुल १११८ विनीत (अर्थात् विनयमन्दिरकी अन्तिम परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थी) और २९७ स्नातक निकल चुके थे। इनमेसे शायद ही किसी स्नातकको जीविकाप्राप्तिमे कठिनाई पडी हो। चारोओरसे राष्ट्रीय कार्योंके लिये इनकी मॉग रहती है। इस कारण अभी तक उन्हे उदर निर्वाहके लिये कठिनाई नही पडी है। सन् १९२५ मे स्नातकोकी एक सूची तैयार कर उनके कार्योंका पता लगाया गया था। उस समय तक २६८ स्नातक निकल चुके थे। इनमेसे १९२ के कार्योंका पता लग सका जो इस प्रकार था— अध्यापन कार्यमे ६६, पत्रसम्पादन कार्यमे ८, देशके रचनात्मक कार्योंमे ४०, स्वतत्र पेशोमे २५, और नोकरीमे ५३। किन्तु हाल ही मे विद्यापीठके स्नातकसङ्घकी ओरसे फिर इसका हिसाब लगाया गया है। इस हिसाबमे आज तकके २९७ मे से ९३ स्नातकोके

कार्योंका जो ब्योरा मालूम हुआ है, वह इस प्रकार है—१४ गुजरात विद्यापीठमे अध्यापक है, ११ अन्य राष्ट्रीय शालाओमे अध्यापक है, २२ अन्य सस्थाओमे काम कर रहे है, २७ बारडोली तालुका, मजदूर सङ्घ, अन्त्यज सेवामण्डल, और चरखा सङ्घ इत्यादिके द्वारा राष्ट्रीय कार्योंमे लगे है, ११ पत्र सम्पादनका काम कर रहे है, और ८ सरकारी शिक्षा संस्थाओमे है। समस्त स्नातकोमेसे कमसे कम १२० ऐसे है जो केवल शुद्ध खादीके कपडे पहनते है। देश-के अग्रगामी राजनैतिक आन्दोलनको विद्यापीठके विद्यार्थी और स्नातक अच्छी सहायता पहुँचाते है। बारडोलीके सत्याग्रहमे उन्होने बहुत काम किया। विद्यापीठके स्नातकोका एक स्नातकसङ्घ है जिसके द्वारा सभी स्नातकोमे परस्पर, तथा उनके और विद्या-पीठके बीच सम्बन्ध बना रहता है।

गुजरात विद्यापीठका प्रबन्ध अब 'गुजरात विद्यापीठ मण्डल' के हाथोमें है जिसमे १८ सदस्य है। विद्यापीठका खर्च बराबर चन्दे से चलता है। कोई स्थायी कोष नही है। रुपया जमा करके उसके सूदसे काम चलानेकी इसकी नीति ही नही है। अबतक लगभग पन्द्रह लाख रुपये खर्च हो चुके है। जमीन खरीदने, मकान बनवाने और अन्य सस्थाओको सहायता देनेके मदोको छोड देने पर, आज-कल विद्यापीठका चलता खर्च लगभग साठ हजार रुपये वार्षिक है। जमीन और मकानमे अबतक ३ लाख रुपये खर्च हो चुके है।

छठवाँ अध्याय।

गुरुकुल काँगड़ी।

सन् १८८३ ईसवीमे स्वामी दयानन्द सरस्वतीका देहान्त होनेपर स्थान स्थानपर जो शोकसभाएँ हुई उनमेसे अधिकांशमे स्वामीजीके स्मारकमे एक शिक्षा संस्था स्थापित करनेके प्रस्ताव हुए। ये प्रस्ताव फीरोजपुर, मुल्तान और लाहौरकी सभाओमे करीब करीब एक ही साथ रक्खे गये। लाहौरकी सभा तारीख ९ नवम्बर १८८३ ईसवीको हुई थी, और इस प्रस्तावके स्वीकृत होनेपर 'दयानन्द एङ्गलो वैदिक कालेज इन्स्टिट्यूशन' की स्थापनाके लिये सभास्थलपर ही सात आठ हजार रुपये एकत्रित हो गये। आखिर नीचे लिखे उद्देश्यको लेकर इस संस्थाकी स्थापना हुई—

'स्वामी दयानन्द सरस्वतीकी पुण्य स्मृतिमे उनके स्मारक स्वरूप पञ्जाबमे एक एङ्गलो वैदिक कालेज स्थापित करना जिसमे एक स्कूल, एक कालेज और एक छात्रावास हो और जिनके उद्देश्य ये हो—

(१) हिन्दू साहित्यके अध्ययन और उसकी उन्नतिका प्रबन्ध करना और उसे प्रोत्साहन देना।

(२) प्राचीन संस्कृत और वेदोंके अध्ययनका प्रबन्ध करना और उसे प्रोत्साहन देना।

(३) अँगरेजी साहित्य, तथा सैद्धान्तिक एवम् व्यावहारिक विज्ञानकी शिक्षाका प्रबन्ध करना और उसे प्रोत्साहन देना।'

इस संस्थाके द्वारा सन् १८८६ ईसवीमे एक स्कूलकी और सन् १८८९ ईसवीमे एक कालेजकी स्थापना हुई जो दयानन्द एङ्गलो वैदिक कालेजके नामसे विद्यमान है। कालेजको स्थापित हुए मुश्किलसे दो वर्ष बीतने पाये थे जब कि उसके संस्थापकोंमे शिक्षाके आदर्शके सम्बन्धमे मतभेद हो गया। कुछ लोगोंका खयाल हुआ कि इस संस्थाकी शिक्षाप्रणाली वैदिक शिक्षाके आदर्शोंके अनुकूल नही है। उन्होने यह भी देखा कि कालेजके व्यवस्थापक उत्तम राष्ट्रीय शिक्षाकी ओर ध्यान देनेकी अपेक्षा विश्वविद्यालयके परीक्षाफलकी ओर अधिक ध्यान देते है, और सरकारी विश्वविद्यालयसे कालेजका सम्बन्ध रहनेके कारण उसकी रीति नीति और पाठ्यक्रममे अधिक परिवर्तन करना भी सम्भव नही है। इन सारी बातोंको देखते हुए वैदिक शिक्षाका पक्षपाती दल,—जिसमे महात्मा मुशीराम प्रमुख थे—दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेजसे अलग होकर वैदिक आदर्शोंके अनुसार एक शिक्षा संस्थाकी स्थापनाका प्रयत्न करने लगा। यही प्रयत्न

गुरुकुल काँगडीकी स्थापनाके रूपमे सफल हुआ। एक अमेरिकन यात्री श्री मायरन फेल्प्सको गुरुकुलकी स्थापनाका इतिहास बतलाते हुए उसके सस्थापक महात्मा मुशीरामने कहा था 'स्वामी दयानन्दने अपनी पुस्तक सत्यार्थप्रकाशमे शिक्षा सम्बन्धी अपने जो विचार प्रगट किये है उन्हीको पूरा करनेके उद्देश्यसे दयानन्द एग्लो वैदिक कालेजकी स्थापना हुई थी। बादको इस बातपर मतभेद खडा हुआ कि इस कालेजमे प्रधान स्थान पश्चिमी विज्ञानको दिया जाय या वेदोको। यह बात सन् १८६१ में हुई। इस समय तक हम सब लोग कालेजके लिये काम करते थे।' विशेष कर शिक्षा-सम्बन्धी आदर्शको लेकर ही पञ्जाबकी आर्य प्रतिनिधि सभामे भी दो दल हो गये और दो सभाएँ तक कायम हो गई। गुरुकुल पार्टीकी आर्य प्रतिनिधि सभाकी अन्तरङ्ग सभाने तारीख २६ नवम्बर सन् १८६८ ईसवीको निश्चय किया कि इस कार्यके लिये तीस सहस्र रुपया एकत्रित किया जावे जिसमेसे आठ सहस्र मिल जानेपर गुरुकुलकी स्थापना की जावे। किन्तु इस कुलके कुलपिता महात्मा मुंशीराम (बादमे स्वामी श्रद्धानन्द) तारीख २६ अगस्त सन् १८६६ ईसवी को यह दृढ प्रतिज्ञा करके निकले कि जब तक तीस सहस्र रुपये एकत्रित न कर लूँगा, घरमे पैर न रक्खूँगा। लगभग सात महीनोके प्रयत्नसे ही उनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। अब वे इस संस्थाके लिये एक उपयुक्त स्थानकी खोजमे ही थे कि स्वर्गीय

मुंशी अमनसिंहने अपना सम्पूर्ण काँगडी ग्राम—जो हरद्वार स्टेशनसे साढेचार मीलकी दूरीपर हिमालय और गङ्गाके बीच है—इस कार्यके लिये अर्पित किया। यह जमीन ९०० एकड है। तारीख २ मार्च सन् १९०२ ईसवी (फाल्गुन बदी १० संवत् १९५८) को ३२ ब्रह्मचारियों सहित महात्मा मुशीरामने इस भूमिमे पदार्पण किया और उसी दिनसे इस गुरुकुलकी स्थापना हुई। यह गुरुकुल प्राथमिक चार श्रेणियोसे प्रारम्भ हुआ था। सम्वत् १९६५ (सन् १९०८) मे इसने महाविद्यालय और सवत १९६८ (सन् १९११) मे विश्वविद्यालयका रूप धारण किया। सवत् १९८० (सन् १९२३) से इस विश्वविद्यालयके अन्तर्गत वेदमहाविद्यालय, महाविद्यालय (आर्ट्स कालेज) और आयुर्वेद महाविद्यालय ये तीन महाविद्यालय है। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न स्थानोपर अब तक इसकी निम्नलिखित छ शाखाएँ भी खुल चुकी है--गुरुकुल मुलतान, गुरुकुल कुरुक्षेत्र, गुरुकुल मटिण्डू, गुरुकुल रायकोट, गुरुकुल सूपा, और गुरुकुल झज्झर।

नियमावलीमे गुरुकुलकी परिभाषा इस प्रकार दी हुई है 'गुरुकुल उस वैदिक शिक्षणालयका नाम है जिसमे वे बालक वा बालिकाएँ, जिनका यथोचित वेदारम्भ सस्कार हो चुका हो, शिक्षा और विद्या प्राप्त करें।' काँगडीके गुरुकुलमे केवल बालकोकी शिक्षाका प्रबन्ध है। बालिकाओंके लिये २३ कातिक १९८० (तारीख ८ नवम्बर १९२४ ईसवी) से देहलीमे पृथक गुरुकुल स्थापित किया

गया था जो अब देहरादून आ गया है। अध्यापक सम्बन्धी नियमो मे कहा गया है कि केवल ऐसे वैदिक धर्मके विश्वासी विद्वान् ही इस शिक्षणालयमे नियुक्त होनेके अधिकारी होगे जो सदाचारी हो और वैदिक धर्मके उन ५१ सिद्धान्तोको मानते हो जिनको महर्षि दयानन्द सरस्वती जीने माना है, किन्तु अन्तरङ्ग सभाको अधिकार होगा कि किसी अध्यापक विशेष (आचार्यके अतिरिक्त) के सम्बन्धमे वैदिक धर्मविश्वास, तथा ५१ सिद्धान्तोके माननेके नियमको यथासम्भव जहाँ तक उचित समझे, शिथिल कर दे।

गुरुकुलमे ६ से ८ वर्ष तककी उम्रके, और विशेष अवस्थामे अन्तरङ्ग सभाकी अनुमतिसे १० वर्षकी उम्र तकके ऐसे ही ब्रह्मचारी प्रविष्ट हो सकते है जिनकी शारीरिक तथा मानसिक अवस्था ठीक हो और जिनके माता-पिता वा सरक्षक यह प्रतिज्ञा करे कि कमसे कम २५ वर्षकी आयुके पूर्व ब्रह्मचारीका वाग्दान या विवाह न करेगे। एक वर्ष पहिले तक सरक्षकोको यह भी प्रतिज्ञा करनी पडती थी कि जब तक ब्रह्मचारी गुरुकुलकी सम्पूर्ण शिक्षा समाप्त न कर लेगा तब तक उसे गुरुकुलसे नही ले जायँगे। पर अब ऐसी प्रतिज्ञा नही करनी पडती। अभिभावक चाहे जिस समय ब्रह्मचारीको गुरुकुलसे ले जानेके लिये स्वतन्त्र है। कुछ दिन पहले तक ऐसा नियम था कि ब्रह्मचारी, गुरुकुलकी शिक्षा समाप्त करनेके पहले घर नही जा सकता था। स्वयं ब्रह्मचारीके कठिन रोगग्रस्त

होने अथवा उसके किसी निकट सम्बन्धीके कठिन रोगग्रस्त होने, या उसके मृत्यु होने, या किसी विशेष आवश्यक कार्यके आजाने पर ही कुछ दिनोके लिये घर जा सकनेकी अनुमति मिलती थी। पर अनुभव-के बाद इस नियममे शिथिलता की गई। अब महाविद्यालय विभाग अर्थात् अन्तिम चार श्रेणियोके विद्यार्थी बरसातकी दो महीनोकी छुट्टियोमे घर जा सकते है। पर प्रथम १० श्रेणियोके विद्यार्थी नही जा सकते। उन्हे रोकनेका अभिप्राय यह है कि विद्यार्थीके जीवनपर गुरु-कुलके ही रहन सहन एवम् वातावरणका पूरा पूरा असर पडे। १० वर्ष रह चुकनेपर वे बहुत कुछ वहाँके रंगमे रँग जायँगे और तब अन्तिम चार वर्षोमे यदि वे समय समयपर घर हो आया करें तो कोई हानि न होगी। बल्कि यह अच्छा और आवश्यक समझा गया है। क्योकि इससे, ससारमे प्रवेश करनेके पहिले ससारके व्यावहारिक जीवनसे उनका परिचय होने लगेगा। किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि प्रारम्भिक १० श्रेणियोके विद्योर्थी हमेशा गुरुकुल भवनमे ही रहते है। सात्रिक छुट्टियोमे अकसर वे अध्यापकोके साथ पर्यटनके लिये बाहर भेजे जाते है। प्रथम आठ श्रेणियोंके विद्यार्थियोंको अपने सर-क्षकोंसे पत्रव्यवहार करनेकी आज्ञा नही है। उच्च कोटिके विद्यार्थी मासमे १ बार आचार्यके द्वारा पत्र लिख सकते है। गुरुकुलमे शिक्षा निःशुल्क दी जाती है, किन्तु संरक्षकोंको ब्रह्मचारियोंके भरण-पोषणका व्यय दे ा पडता है। यह व्यय प्रथम पाँच श्रेणियोके लिये

पन्द्रह रुपये, छठवीसे दसवी श्रेणी तकके लिये बीस रुपये, और अन्तिम चार श्रेणियो अर्थात् महाविद्यालय विभागके लिये पचीस रुपये मासिक होता है। यह रकम सीधे मुख्याधिष्ठाताके पास भेजी जाती है और ब्रह्मचारियोके रहन सहन और खानपानका सारा प्रबन्ध गुरुकुलको ओरसे किया जाता है। अन्तरङ्ग सभाको अधिकार है कि होनहार अनाथो एवम् ऐसे बालको वा संश्रितोकी—जिनके माता पिता समस्त वा एक अंशमे भरणपोषणका व्यय न दे सकने हो—शिक्षाका प्रबन्ध अपने व्ययसे करे। ऐसे विद्यार्थियोके लिये गुरुकुलको लगभग सात हजार रुपये प्रतिवर्ष खर्च करने पडते है। नियमावलीमे इस आशयका एक नोट है कि कुछ समयमे पर्याप्त धन एकत्रित हो जानेपर समस्त ब्रह्मचारियोका शिक्षादान तथा उनका पालन पोषण बिना किसी तरहका व्यय लिये किया जायगा।

सस्कृत भाषा और वैदिक साहित्यके अध्ययनको विशेष स्थान देना, आरम्भसे अन्तिम श्रेणी तक हिन्दी भाषाके माध्यम द्वारा शिक्षा देना, सस्थामे जातपॉतके कारण छुआछूत अथवा ऊँचनीचके भावका न होना, ब्रह्मचर्य तथा चरित्रसङ्गठन पर विशेष जोर देना—ये गुरुकुल शिक्षाप्रणालीकी विशेषताऍ कही जा सकती है। गुरुकुलका सम्पूर्ण पाठ्यक्रम १४ वर्षो का है जो तीन भागोमें बॉटा जा सकता है—प्रारम्भिक शिक्षा चारवर्षोकी, माध्यमिक शिक्षा छः वर्षोकी और उच्च शिक्षा चार वर्षो की। प्रारम्भिक चार वर्षोमें सस्कृत

व्याकरण, संस्कृत साहित्य, आर्य भाषा (हिन्दी), गणित, आलेख्य (चित्रकला), धर्मशिक्षा, वस्तुपाठ और इतिहास भूगोलकी शिक्षा दी जाती है। माध्यमिक विद्यालयके प्रथम चार वर्षोंमे अर्थात् पाँचवींसे आठवीं श्रेणियों तक उपरोक्त विषयोंके अतिरिक्त आँग्लभाषा और विज्ञानकी भी शिक्षा दी जाती है। आँग्ल भाषाकी शिक्षा पाँचवीं श्रेणीसे और विज्ञानकी छठीसे आरम्भ होती है। माध्यमिक विद्यालयकी अन्तिम दो श्रेणियों अर्थात् नवीं और दसवीं श्रेणियोंकी परीक्षा अधिकारी परीक्षा कहलाती है। इसके लिये वेदाङ्ग, संस्कृत साहित्य, आँग्लभाषा, गणित, धर्मशिक्षा, आर्यभाषा (हिन्दी), और इन सबके अतिरिक्त पदार्थ विद्या या इतिहासमेंसे कोई एक विषय लेना पडता है। अधिकारी परीक्षामे उत्तीर्ण होने पर विद्यार्थी तीन महाविद्यालयों—वेद महाविद्यालय, गुरुकुल महाविद्यालय (आर्ट्स कालेज) और आयुर्वेद महाविद्यालय—मेंसे किसी एकमें प्रवेश कर सकता है। प्रत्येक महाविद्यालयका पाठ्यक्रम चार वर्षोंका है।

वेद महाविद्यालयमें वेद वेदाङ्ग, उपाङ्ग (दर्शन), संस्कृत साहित्य या व्याकरण और आर्यसिद्धान्त ये आवश्यक विषय हैं। इनके अतिरिक्त इतिहास, पाश्चात्य दर्शन, अर्थशास्त्र तथा रसायन इन चार ऐच्छिक विषयोंमेंसे कोई एक लेना होता है। वेद तथा दर्शनोंके पाठपर विशेष बल दिया जाता है, संस्कृत भाषामें उत्तम वक्ता तैयार करनेका यत्न किया जाता है और तुलनात्मक दृष्टिसे

भिन्न भिन्न मतोकी समीक्षा की जाती है। उत्तम कोटिके वेदप्रचारक उत्पन्न करना इस महाविद्यालयका लक्ष्य है।

गुरुकुल महाविद्यालय (आर्ट्स कालेज) मे वेद वेदाङ्ग, उपाङ्ग (दर्शन), सस्कृत तथा आर्यभाषा (हिन्दी) साहित्य और अँग-रेजी ये आवश्यक विषय है। इनके अतिरिक्त इतिहास, अर्थशास्त्र, पाश्चात्यदर्शन, या रसायन इन चार ऐच्छिक विषयोंमेसे कोई एक लेना पडता है। इस महाविद्यालयमे वेद तथा दर्शनोकी पढाई कुछ थोडीसी न्यून है। आंग्लभाषा, द्वितीय भाषाके तौरपर आवश्यक रूपसे पढाई जाती है और भिन्नमत समीक्षाका विषय इसमे नही रक्खा गया है। इस महाविद्यालयका ध्येय सच्चे देशसेवक, सम्पादक और लेखक पैदा करना है।

आयुर्वेद महाविद्यालयमे प्राच्य और पाश्चात्य दोनो प्रकारके आयुर्वेदोको सिखलाते हुए प्राच्य आयुर्वेदके महत्त्वको प्रस्फुटित किया जाता है। इस महाविद्यालयका उद्देश्य ब्राह्मणवृत्तिके वैद्य उत्पन्न करना है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, गुरुकुलमे केवल छ: से आठवर्ष तककी और विशेष अवस्थामे दस वर्षकी उम्र तकके विद्यार्थी ही प्रविष्ट होते है। येही अधिकारी परीक्षा तकका पाठ्यक्रम समाप्त करके उपरोक्त तीनो महाविद्यालयोमेसे किसी एकमे प्रवेश कर सकते है। किन्तु आयुर्वेद महाविद्यालयके सम्बन्धमे इस नियम में कुछ शिथिलता कर दी गई है। सस्कृतमे काशीकी मध्यमा परीक्षा

और मेट्रिकुलेशनकी समकक्ष परीक्षाकी योग्यता रखनेवाले बाहरी विद्यार्थी भी इस विद्यालयमे प्रवेश कर सकते है। पर उनके रहने आदिका प्रबन्ध गुरुकुलके ब्रह्मचारियोसे पृथक् रहेगा। यो तो अधिकारी परीक्षा उत्तीर्ण होनेपर विद्यार्थी तीनमेसे किसी भी महाविद्यालयमे प्रवेश कर कसता है पर गुरुकुलके सञ्चालक यह पसन्द करते है कि अधिकतर ब्रह्मचारी वेदमहाविद्यालयमे प्रवेश करे।

महाविद्यालयोकी अन्तिम परीक्षामे उत्तीर्ण स्नातकोको उनके विषयमें विद्यालंकारकी उपाधि दी जाती है। गुरुकुलकी ओरसे एक स्नातकोत्तर परीक्षाकी भी व्यवस्था की गई है। वेद महाविद्यालय तथा गुरुकुल महाविद्यालयके जिन स्नातकोंकी सिफारिश उनके उपाध्याय (अध्यापक) गण करेंगे वे ही इस परीक्षामे सम्मिलित होनेके अधिकारी होगे। इसके लिये अध्ययन करनेवाले विद्यार्थीको आचार्य द्वारा निर्दिष्ट उपाध्यायोके निरीक्षणमे कमसे कम दो वर्षों तक गुरुकुलमे रहकर अध्ययन करना पडता है। विशेष अवस्थामे अन्तरङ्ग सभा, निवास और अध्ययन सम्बन्धी नियमोको ढीला भी कर सकती है। इस परीक्षामे उत्तीर्ण होनेपर स्नातकोंको उनके विषयमे वाचस्पतिकी उपाधि दी जाती है। गुरुकुलकी अधिकारी परीक्षाका पाठ्यक्रम सरकारी विद्यालयोके मैट्रिकुलेशनसे कुछ ऊँचा तथा महाविद्यालयका एम० ए० के स्टैण्डर्डका है।

विद्यार्थियोंकी वक्तृत्व शक्ति तथा लेखन शक्ति बढ़ानेके लिये

कई सभाएँ है तथा कई हस्तलिखित पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं। वेदमहाविद्यालय तथा गुरुकुल महाविद्यालयकी ओरसे प्रति सप्ताह क्रमशः सस्कृत और इङ्गलिशकी सभाएँ होती हैं जिनमें दोनो महाविद्यालयोंके विद्यार्थी भाग लेते हुए सस्कृत और अगरेजीमे वक्तृत्वशक्ति बढानेका अभ्यास करते है। इसके अतिरिक्त साहित्य परिषद्, वाग्वर्धिनी, सस्कृतोत्साहिनी विज्ञान परिषद्, वेद-परिषद्, आयुर्वेद परिषद्, कालेज यूनियन, हिन्दी साहित्य मण्डल आदि सभाएँ भी है। इनका सञ्चालन और प्रबन्ध विद्यार्थी स्वय करते हैं। साहित्य परिषद्की ओरसे वर्षमे एक बार पार्लमेण्ट भी की जाती है जिसकी सम्पूर्ण कार्रवाई बृटिश पार्लमेण्टकी तरह होती है। शारीरिक उन्नतिके लिये गदका, लाठी बनैठी तथा अन्य उपयोगी देशी खेलोके अतिरिक्त हाकी आदि पश्चिमी देशोंके खेलोका भी प्रबन्ध है। इसके सिवाय जङ्गलको खुली हवामे रहनेका लाभ तो गुरुकुलके विद्यार्थियोंको है ही। गुरुकुलमे अध्यापको और विद्यार्थियोका सम्बन्ध उत्तम है। हमेशा परस्पर मिलते जुलते रहते है। गुरुकुलमे रहने वाले समस्त विद्यार्थियोके साथ अधिकारियों का व्यवहार एक समान रहता है। न तो जातपाँतकी उँचाई निचाई का खयाल रखा जाता है, और न धन वैभव अथवा सामाजिक मान-प्रतिष्ठाका। प्राय. गुरुकुलमे रहने वाले विद्यार्थी एक दूसरेके जन्म जातसे भी अनभिज्ञ रहते हैं। विद्यार्थियोमे इस भावको भरनेका

विशेष प्रयत्न किया जाता है कि वे सब एक ही परिवारके है। गुरुकुलमे रहने वाले विद्यार्थियोका रहन सहन बहुत सादा होता है। साधारणतया आप उन्हे एक कुरता और धोती पहने हुए देखेगे। न पैरमे जूता है और न सर पर टोपी। साधारणतया इन्हे अब खादीके ही वस्त्र पहननेके लिये दिये जाते है। ब्रह्मचारियोमे जिम्मेदारीके साथ नियम पालन करनेकी प्रवृत्तिको प्रोत्साहन देनेके लिये व्रताभ्यास परीक्षाकी प्रणाली चलाई गई है। इसका उद्देश्य यह है कि प्रत्येक ब्रह्मचारी अपने वैयक्तिक और सामाजिक कर्तव्योको दण्डके भयसे नही, किन्तु उनकी उपयोगिता और उनका महत्व समझ कर पूरा करे। हर एक ब्रह्मचारीके पास एक व्रताभ्यास पञ्चिका रहती है जिसमें वह प्रतिदिन यह लिखते जाता है कि किन किन नियमोका उसने पालन किया और किन किनका नहीं किया। जिन नियमोका पालन न किया हो उनके सम्बन्धमे कारण भी देना होता है। मासके अन्तमे इन पञ्चिकाओके आधारपर अङ्क दिये जाते है।

गुरुकुलके अधिकारी एक 'श्रद्धानन्द शिल्पविद्यालय' और आयुर्वेद विभागमे 'आयुर्वेदिक ड्रग्स' की परीक्षाके लिये एक लेबोरेटरी खोलनेका विचार कर रहे है। प्रथमोक्तकेलिये सवा लाख और शेषोक्तके लिये १५ हजार रुपयोकी आवश्यकता है। शिल्पविद्यालयके लिये तीस हजार रुपये मिल चुके है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है। इस गुरुकुलकी छः शाखाएँ भी है। मुख्य गुरुकुल तथा शाखा गुरुकुलोमे मिलाकर विद्यार्थियोकी सख्या लगभग ८५० है। सम्वत् १९८४ के अन्त तक गुरुकुलसे १८४ स्नातक निकल चुके थे। इनमेंसे ६ का देहान्त हो चुका है। ४ के सम्बन्धमे यह मालूम नही कि वे किस कार्यमे है। शेष १७४ भिन्न भिन्न धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक कार्योंमे लगे हुए है। ५० अध्यापक है। ३ राजनैतिक कार्योंमे लगे है जिनमेसे एक लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित 'सर्वेण्ट्स आफ दि पीपुल सोसाइटी' के सदस्य है। १२ पत्रसम्पादनका कार्य कर रहे है। २२ सामाजिक और धार्मिक प्रचारके कार्योंमे लगे है। ३७ चिकित्सक है। ४४ व्यापार व्यवसाय आदिमे लगे है। ६ अभी उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे है। गुरुकुलके स्नातकोमेंसे ६० अच्छे लेखक है और इनमेसे २९ ने पुस्तके लिखी है।

सातवाँ अध्याय।

गुरुकुल वृन्दावन।

जिला बुलन्दशहरके सिकन्दराबाद स्थानमें सन् १९०० ईसवीमे एक गुरुकुलकी स्थापना हुई थी। सयुक्त प्रान्तकी आर्य प्रतिनिधि सभाने तारीख १ दिसम्बर सन् १९०५ ईसवीको इसे अपने अधिकारमे लिया। वहाँ जल वायुकी प्रतिकूलता, मलेरिया तिल्ली आदिकी प्रधानता, और पर्याप्त भूमिकी कमी आदि कारणोंसे तारीख १७ सितम्बर सन् १९०७ ईसवीमे यह गुरुकुल फरुख्खाबादमे लाया गया। फरुख्खाबादमें गुरुकुलके पास अपना निजी स्थान न था, इसलिये गुरुकुलके लिये स्थायी रूपसे निजी स्थानका प्रबन्ध करना आवश्यक हुआ। अक्टूबर सन् १९११ ईसवीमे राजा महेन्द्रप्रतापने वृन्दावनमे गुरुकुलके लिये अपनी कुछ भूमि दानमें दी। उस समय उसकी कीमत १५ हजार रुपये कूती गयी थी। तारीख १६ दिसम्बर सन् १९११ ईसवीसे गुरुकुल इसी स्थान पर वृन्दावनमे आ गया और तबसे यहीं है।

इस गुरुकुलका उद्देश्य प्राचीन ब्रह्मचर्य प्रणालीके अनुसार वेद वेदाङ्ग आदि संस्कृत साहित्यके अनुसन्धानशील आर्यविद्वान् और वैदिक धर्मके प्रचारक तैयार करना है। अध्यापक सम्बन्धी नियमोंमें कहा गया है कि 'केवल ऐसे वैदिक धर्मके विश्वासी विद्वान् इस विद्यालयमे नियत होने योग्य होंगे जो सदाचारी हो और वैदिक धर्मके उन ५१ सिद्धान्तोंको मानते तथा तदनुकूल आचरण करते हो जिनको महर्षि दयानन्द सरस्वतीजीने माना है।' विद्यालयमे ८ से १० वर्षकी उम्र तकके विद्यार्थी प्रविष्ट हो सकते हैं। पहिले यहाँ भी यही नियम था कि कोई भी विद्यार्थी प्रविष्ट होनेके उपरान्त गुरुकुल-की सम्पूर्ण शिक्षा समाप्त करनेके पहिले कुलसे अलग न हो सकेगा। पर अब यह नियम इस हद्दतक शिथिल कर दिया गया है कि यदि प्रवेशके समय ही ब्रह्मचारीके अभिभावक यह प्रगट कर दे कि उनका अन्तिम लक्ष्य ब्रह्मचारीसे किसी यूनिवर्सिटीकी परीक्षा दिलाना है तो वह ब्रह्मचारी दशवीं श्रेणीसे उत्तीर्ण होनेपर गुरुकुलसे अलग हो सकेगा। इस शिथिलताका कारण बतलाते हुए नियमावलीमे कहा गया है कि 'साधारणतया गुरुकुलकी दसवीं श्रेणीके उत्तीर्ण ब्रह्मचारियोंको योग्यता हाईस्कूल परीक्षा तथा शास्त्री मध्यमाकी योग्यतासे कहीं अधिक हो जाती है। और जो संरक्षक ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरुकुलकी शिक्षाको उत्तम जानते हुए भी यूनिवर्सिटी शिक्षाके लक्ष्य-की दृष्टिसे अपने बालकोंको गुरुकुलमे प्रविष्ट नहीं कराते थे वे अब

सहर्ष प्रविष्ट करा सकेंगे।' गुरुकुलका पाठ्यक्रम १४ वर्षोंका है। शिक्षा आरम्भसे अन्ततक निःशुल्क है। भोजनादि व्ययके लिये पहली से पाँचवी श्रेणी तक १५ रुपये छठीसे दसवी श्रेणीतक १८ रुपये और ग्यारहवींसे चौदहवी श्रेणी तक बाईस रुपये मासिक लिया जाता है। उन पुरुषोंके पुत्रो वा सश्रितोंसे, जो वास्तवमे समग्र वा एक अशमे भोजनादि व्यय न दे सकते हो, यदि गुरुकुलोपसभा उन्हें सहायता योग्य समझे, तो उनका समग्र या एक अश भोजनादि व्यय भी नही लिया जाता। आजकल इस प्रकारके लगभग ४० विद्यार्थियोंका खर्च गुरुकुलके ऊपर है। नियमावलीमें लिखा है कि 'जब कुछ दिनोमे इस विद्यालयके व्ययके लिये पुष्कल धन एकत्रित हो जावेगा तो प्रविष्ट हुए सब विद्यार्थियोंका पोषण, खर्च लिये बिना किया जायगा।'

जैसा कि ऊपर कहा गया है इस गुरुकुलका पाठ्यक्रम १४ वर्षोंका है जो दो भागोमे विभक्त है—विद्यालय १० वर्षोंका और महाविद्यालय ४ वर्षोंका। विद्यालयमें सस्कृत व्याकरण, सस्कृत साहित्य, धर्मशिक्षा हिन्दी, और गणितकी शिक्षा पहली से दशवी श्रेणियोतक दी जाती है। इनके सिवाय प्रथम आठ श्रेणियोंमें भूगोल और इतिहास तथा छठीसे दसवीं श्रेणीतक अँगरेजी भी पढाई जाती है। महाविद्यालयमें प्राच्य सस्कृत साहित्य और दर्शन तथा अँगरेज़ी ये आवश्यक विषय है। इनके अतिरिक्त प्रत्येक विद्यार्थीको वेद

और आयुर्वेद इन दो मे से कोई एक अथवा आर्यसिद्धान्त, पाश्चात्य दर्शन और तर्क तथा नव्य दर्शन--इन तीनमेंसे कोई दो विषय लेने पडते है। महाविद्यालयके आयुर्वेद विभागमें गुरुकुलके शिक्षापटल द्वारा निश्चित प्रवेशिका परीक्षा पास, बाहरके विद्यार्थी भी भरती हो सकते है। उनसे भोजनादि व्ययके अतिरिक्त शिक्षाशुल्क भी लिया जाता है। जो विद्यार्थी दसवी श्रेणीके पश्चात् महाविद्यालयमे विशेष विषय वेद या आर्यदर्शन लेते है उनसे भोजन व्यय नही लिया जाता। जो ब्रह्मचारी अपने निर्वाहके लिये गुरुकुलपर आश्रित रहते है उन्हे गुरुकुलकी इच्छानुसार वैकल्पिक विषय लेने पडते है। यहाँ अँगरेज़ी इस दृष्टिसे पढाई जाती है कि स्नातक अगरेजी साहित्यको समझ सकें और उस भाषाका उपयोग कर सकें। सन् १९२९ ईसवी मे गुरुकुलमे शिक्षा पानेवाले ब्रह्मचारियोकी सख्या १८३ थी।

गुरुकुलकी सम्पूर्ण शिक्षा समाप्त करनेपर स्नातकोको उनके विषयमे शिरोमणिकी उपाधि दी जाती है। जैसे, वेदशिरोमणि, आयुर्वेदशिरोमणि, तर्कशिरोमणि आदि। सन् १९२८ तक इस गुरुकुलसे ३३ स्नातक निकल चुके थे जिनमेसे १५ अध्यापन कार्यमे ४ धर्मोपदेशमे, १० वैद्यकमे और ४ अन्य कार्योंमे लगे हुए थे।

आठवाँ अध्याय।

जामिया मिल्लिया इस्लामियाँ, दिल्ली।

जामिया मिल्लिया इस्लामियाँकी स्थापना २६ अक्तूबर १६२० ईसवीको अलीगढमें हुई थी। आरम्भमे केन्द्रीय खिलाफत कमेटीसे इसको आर्थिक सहायता मिलती थी। यद्यपि जामिया, खिलाफत कमेटीके अधीन न था तथापि उसके कार्यकर्ता आरम्भसे ही आर्थिक स्वतन्त्रताकी आवश्यकता अनुभव करते थे और जानते थे कि बिना अपना कोष हुए संस्थामे स्थिरता न आवेगी। इसलिये स्थापनाके कुछ समय बाद ही जामिया-फण्ड कायम करनेका बिचार पैदा हुआ। इसके लिये समय समयपर प्रयत्न होते रहे, कुछ धन भी एकत्र हुआ पर ऐसा कोई स्थायी कोष अब तक न बन सका जिसके सहारे निश्चिन्त जीवन व्यतीत हो सके। जामियाको बराबर आर्थिक चिन्ता बनी ही रहती है। इस कारण संस्था इच्छानुसार उन्नति और विस्तार नहीं कर सकती।

इस संस्थाकी एक विशेषता यह है कि यहाँ धार्मिक शिक्षा

सबके लिये अनिवार्य है। हिन्दू विद्यार्थियोको भी धार्मिक शिक्षा दी जाती है। उनको सस्कृत भाषा, धर्मशास्त्र, भगवद्गीता और तुलसीकृत रामायण पढाई जाती है और उनको उपासना करना पडता है।

जामियाका पाठ्यक्रम तीन भागोमे बॉटा गया है—(१) मकतब, (२) मनजिल इब्तदाई और (३) मनजिल सानूई। मकतबकी पढ़ाई एक वर्षकी रक्खी गई है। इसमें बच्चेको लिखना, पढ़ना और हिसाबमे गिनती, सरल जोड और बाकी बताई जाती है। स्पष्ट और शुद्ध उच्चारणपर विशेष जोर दिया जाता है। मनजिल इब्तदाईमे छः श्रेणियॉ है। इनमे धार्मिक शिक्षाके अतिरिक्त उर्दू, गणित, ड्राइंग, अगरेज़ी, शिल्प, इतिहास, भूगोल और साधारण ज्ञानकी शिक्षा दी जाती है।

मनजिल इब्तदाईमें ५ श्रेणियॉ है। पहिली तीन श्रेणियोमे धार्मिक शिक्षाके साथ साथ उर्दू, फारसी, अगरेजी, गणित, इतिहासभूगोल, भौतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र इन विषयोंकी पढाई होती है। अन्तिम दो वर्षोमें विद्यार्थीको उर्दू और अगरेजी अनिवार्य रूपसे पढना पडता है और वैकल्पिक विषयोंमेसे कोई एक विषय लेना पडता है। वैकल्पिक विषयोमेसे कुछ ये है—(१) अरबी, (२) इसलामका इतिहास, (३) भारतीय इतिहास।

१ जूलाई, सन् १९२५ ई० को जामिया अलीगढसे दिल्ली ले जाया गया।

जामियामें एक कालेज और एक स्कूल है, इनके अतिरिक्त शहरमे एक शाखा स्कूल भी है, पेशावर और रङ्गूनके एक एक हाई स्कूल जामियासे सम्बद्ध है।

विद्यार्थियोंकी सख्या इस प्रकार है—

जामियाँका कालेज	३४
दिल्लीके स्कूल	२१४
रंगूनका स्कूल	३००
पेशावरका स्कूल	२००
	७४८

जामियाँसे आज तक ७१ स्नातक निकले हैं, इनमेसे कुछ विशेष अध्ययनके लिये योरप गये है। बाकी शिक्षा, पत्र-सम्पादन, व्यापार आदि कार्योंमे लगे है।

नवाँ अध्याय।

तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना।

कांग्रेसके असहयोग सम्बन्धी प्रस्तावके अनुसार महाराष्ट्रके जिन विद्यार्थियोने सरकारी कालेजोमे पढना छोड दिया, उनकी शिक्षाका प्रबन्ध करनेके लिये ८ दिसम्बर सन् १९२० ईसवीको पूनेमे तिलक महाविद्यालयके नामसे एक राष्ट्रीय कालेजकी स्थापना हुई। आगे चलकर बसईके महाराष्ट्र प्रान्तीय सम्मेलनके अधिवेशनमे तारीख ६ मई सन् १९२१ ईसवीको निश्चय हुआ कि लोकमान्य तिलककी स्मृतिमे एक राष्ट्रीय विद्यापीठ स्थापित किया जाय। इसी निश्चयके अनुसार पूनेमें तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठकी स्थापना हुई और उपरोक्त तिलक महाविद्यालय उसके आधीन हो गया। विद्यापीठके मुख्य उद्देश्योंमेसे कुछ ये है—

(१) सरकारी सहायता न लेते हुए शिक्षा प्रचार करना।

(२) विद्यार्थियोको ऐसी शिक्षा देना जिससे वे स्वावलम्बी और राष्ट्र कार्यक्षम हो।

(३) इन्ही उद्देश्योको लेकर काम करने वाली सस्थाओंकी सहायता करना और उन्हे विद्यापीठसे सम्बद्ध करना ।

(४) उच्च प्रकारके सशोधन और ग्रन्थ प्रकाशनका कार्य करना ।

आजकल प्रत्यक्ष रूपसे विद्यापीठके सञ्चालनमे एक महाविद्यालय (पूनेका तिलक महाविद्यालय) और एक वैदिक संशोधन मण्डल, ये दो सस्थाएँ ही है । इनके अतिरिक्त महाराष्ट्र प्रान्तकी प्राय सब राष्ट्रीय पाठशालाएँ विद्यापीठसे सबद्ध या स्वीकृत है । विद्यापीठकी ओरसे कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित हुई है और एक त्रैमासिक पत्रिका निकल रही है ।

तिलक महाविद्यालयका कार्य कई शिक्षा विभागोमे बटा हुआ है जैसे वाङ्मय, व्यापार, स्थापत्य, वैद्यक इत्यादि । पाठ्यक्रम चार वर्षोका है । अन्तिम वर्षकी परीक्षामे उत्तीर्ण होनेपर विद्यार्थीको उसके विषयमे विशारदकी उपाधि दी जाती है जैसे वाङ्मय विशारद, आयुर्विद्या विशारद इत्यादि । कोई भी विद्यार्थी विशारद होनेके कमसे कम दो वर्ष बाद पारङ्गत उपाधिकी परीक्षा दे सकता है । इसके लिये पहले एक निबन्ध लिखकर देना होता है । परीक्षामे उत्तीर्ण होने पर विद्यार्थीको उसके विषयमे पारङ्गतकी उपाधि दी जाती है—जैसे आयुर्विद्यापारङ्गत । आजकल इस महाविद्यालयके अन्य सब विभागोकी अपेक्षा आयुर्वेद विभाग अधिक सफलता पूर्वक चल रहा है । सन् १९२९ मे महाविद्यालयके समस्त विभागों-

में ३६ विद्यार्थी थे जिनमेसे ३० आयुर्वेद विभागके थे। विद्यार्थियोको व्यावहारिक शिक्षा देने तथा लोकसेवाके उद्देश्यसे एक धर्मार्थ आयुर्वेदीय रुग्णालय भी खोला गया है। इसमे एक लाख तक रुपया लगाकर इसका काम बढानेका विचार है और इसके लिये प्रयत्न भी किया जा रहा है। आयुर्वेद विभागके आधीन एक रस-शाला भी है, जिसमे शास्त्रीय विधिसे उत्तमोत्तम औषधियाँ बनाई और बेची जाती है।

वैदिक सशोधन मण्डलकी स्थापना तारीख १ अगस्त सन् १९२८ ईसवीको की गई थी। इसके उद्देश्य ये है--

(१) वैदिक साहित्यके अध्ययनमे सुविधा पहुँचाना।

(२) वैदिक साहित्यकी हस्तलिखित एवम् मुद्रित पुस्तकोका सग्रह करना

(३) निबन्ध, सूचीपत्र, टिप्पणी इत्यादि इस प्रकारका साहित्य तैयार करना जिससे वैदिक साहित्यके अध्ययनमे सुविधा हो।

(४) वैदिक साहित्यके मूल ग्रन्थ प्रकाशित करना।

फ़िलहाल नीचे लिखे कार्योंकी ओर विशेष रूपसे ध्यान दिया जा रहा है।

(१) ऐसे ग्रन्थोका सग्रह करना जिनसे वैदिक साहित्यके अध्ययनमे सहायता मिले।

(२) वैदिक साहित्यकी सूची तैयार करना।

(३) जर्मन या फ्रेञ्च भाषामे इस विषयपर जो साहित्य हो उसे संस्कृत या मराठी भाषाके द्वारा उपलब्ध करना।

(४) सायन भाष्य सहित ऋग्वेदका एक संस्करण प्रकाशित करना।

जितने प्राथमिक या माध्यमिक स्कूल विद्यापीठसे सम्बद्ध है-- वे सब, अबतक अपनी भिन्न भिन्न श्रेणियोंका पाठ्यक्रम स्वतः निश्चित करते थे, विद्यापीठ केवल प्रवेश परीक्षा अर्थात् माध्यमिक शालाकी अन्तिम श्रेणीकी परीक्षाका पाठ्यक्रम निश्चित करना था। किन्तु हालहीमे विद्यापीठने आरम्भसे अन्ततककी सभी श्रेणियोके लिये पाठ्यक्रम तैयार किया है जिसे सभी विद्यालयोने थोडे बहुत परिवर्तनके साथ स्वीकार कर लिया है। यह पाठ्यक्रम संक्षेपमे इस प्रकार है--

सम्पूर्ण पाठ्यक्रम तीन भागोमे बॉटा गया है—प्राथमिक ५ वर्षोका, माध्यमिक ५ वर्षोका और प्रवेश परीक्षा २ वर्षोंका। प्राथमिक श्रेणियोमे मराठी, अङ्कगणित, इतिहास, भूगोल, चित्रकला, वस्तुपाठ, गायन आदि विषय सिखलाये जाते है। माध्यमिक श्रेणियोमे मराठी, संस्कृत, हिन्दी, गणित और खाता बही, इतिहास-भूगोल, विज्ञान, दस्तकारी और चित्रकलाकी शिक्षा दी जाती है। प्रवेश परीक्षाका पाठ्यक्रम दो भागोंमे बॅटा है—एक तो उन लोगोंके

लिये जो इसके अनन्तर महाविद्यालयमे शिक्षा प्राप्त करेंगे और दूसरा उन लोगोके लिये जो जीविका उपार्जन करनेमे लग जायँगे। निम्नलिखित विषय दोनो ही विभागोंके विद्यार्थियोंके लिये आवश्यक है—व्यायाम, वैयक्तिक व सार्वजनिक आरोग्यशास्त्र, व्यावहारिक वैद्यक, इङ्गलैण्ड, अमेरिका, फ्रान्स, स्विटजलैंण्ड, रशा आदि देशोकी शासन पद्धतिका साधारण ज्ञान, भारतीय शासन पद्धतिका विशेष ज्ञान, कॉंग्रेसके सङ्गठन और उसकी कार्यप्रणाली, नागरिक शास्त्र, कानूनका साधारण ज्ञान, अर्थशास्त्रके मूल तत्व और ससारका अर्वाचीन इतिहास। इनके अतिरिक्त महाविद्यालयमें जाने वाले विद्यार्थियोको वैद्यक, व्यापार साहित्य, राजशास्त्र, शिक्षा शास्त्र, धर्मप्रचार, स्थापत्य और यन्त्र विद्या इनमेसे कोई एक विषय लेना पडता है। जो विद्यार्थी महाविद्यालयमे न जाना चाहते हो उन्हे मुनीमी, बढईगीरी, बुनाई, रॅगाई, बागवानी, पुरोहिती, आदि २० व्यावसायिक कार्योंमेसे किसी एककी शिक्षा दी जाती है। प्रत्येक विद्यालय अपनी सुविधाके अनुसार इन कार्योंमेसे कुछ या सबकी शिक्षाका प्रबन्ध कर सकता है।

सन् १९२९ मे ८ माध्यमिक एवम् ७ प्राथमिक शालाएँ विद्यापीठसे सम्बद्ध थी। इनके अतिरिक्त तीन माध्यमिक पाठशालाएँ विद्यापीठसे मान्य या स्वीकृत थी। इन सबमें पढनेवाले विद्यार्थियोंकी संख्या ९११ थी। जिन दिनो असहयोग आन्दोलन जोरपर था

उन दिनो महाराष्ट्र प्रान्तमे राष्ट्रीय विद्यालयोकी संख्या लगभग ४० थी जिनमें १०००० के करीब विद्यार्थी पढते थे।

सन् १९२८ के अक्टूबर तक इस विद्यापीठसे २३१ स्नातक निकल चुके थे। ये सब किस किस कार्यमे लगे है इसका पता लगानेपर मालूम हुआ कि प्राय. सभी किसी न किसी काममे लगे है। ७९ स्नातकोके कार्योंके सम्बन्धमे निश्चित रूपसे जो समाचार मिला वह इस प्रकार है—४२ अध्यापनकार्यमे, ३ पत्रसम्पादनमे, ९ देशके रचनात्मक कार्योंमे, १५ स्वतन्त्र पेशोंमें और १० नौकरीमे लगे है।

दसवाँ अध्याय।

श्री दक्षिणामूर्ति विद्यार्थीभवन, भावनगर।

श्री दक्षिणामूर्ति विद्यार्थीभवनकी स्थापना २८ दिसम्बर सन् १६१० ईसवीको हुई थी। शिक्षा विषयक नये नये प्रयोग करना और पश्चिमके देशोमे इस सम्बन्धमे जो जो पद्धतियाँ प्रचलित हो रही है, उनमे भारतीय स्थितिके अनुसार परिवर्तन करके उन्हे अपने यहाँ चलाना इस सस्थाकी विशेषता है। सभी विभागो और श्रेणियोमे सहशिक्षणकी प्रणाली प्रचलित है—लडकियाँ और लडके साथ साथ पढते है। शिक्षा नि.शुल्क है। इसका वर्तमान कार्यक्रम निम्न लिखित पाँच भागोमे विभक्त है—

(१) बालमन्दिर

(२) विनयमन्दिर

(३) अध्यापनमन्दिर

(४) विद्यार्थीगृह, और

(५) प्रकाशन मन्दिर

बालमन्दिरमें ३ से १० वर्षकी उम्र तकके बालक लिये जाते है। इन्हें माएटीसरी पद्धतिके अनुसार शिक्षा दी जाती है। शिक्षाकी योजना बनाते समय इस बातका खयाल रक्खा गया है कि विद्यार्थी स्वतन्त्रताके वातावरणमे रहते हुए अपने शरीर, मन और आत्माका विकास कर सकें। इनाम, भय अथवा परीक्षामे अच्छे नम्बरोंसे पास होनेकी लालचसे विद्यार्थियोंको बिलकुल अलग रक्खा जाता है। मन्दिरका वातावरण एक कुटुम्बसा है। बच्चे निर्भयताके साथ अध्यापकोंसे मिलते हैं। छोटे छोटे लडके और लडकियाँ एक साथ पढते, खाते, पीते और खेलते है। इस प्रकार मिल जुल कर रहनेका भाव पुष्ट होता है। कमरा साफ करना, भोजन परोसना, अपनी वस्तुओंको व्यवस्थित रूपसे रखना, आदि बातोंकी व्यावहारिक शिक्षा बच्चोको दी जाती है। वे हाथसे सूत भी कातते है। लिखना, पढना, गणित, चित्रकला आदिकी शिक्षा देनेके अतिरिक्त उन्हें सङ्गीत और नाटक आदिका भी अभ्यास कराया जाता है। लिखना पढना आदि रटाकर नही सिखलाया जाता, बरन् विद्यार्थियोमे जाननेकी ऐसी इच्छा उत्पन्न की जाती है जिससे वे स्वयं चावके साथ पूछ पूछ कर ये विषय सीख ले। उनके शारीरिक विकासके लिये छोटे छोटे प्रवास और कलाके प्रति रुचि उत्पन्न करनेके लिये सङ्गीत, चित्रकला और ग्राम्यगीत आदिकी सहायता ली जाती है। बालकगण अपने हाथसे लिखकर कई मासिक पत्रिकाएँ निकालते है।

बालमन्दिर, इस बातका भी प्रयत्न करता है कि बालकोके माता-पिता भी उनकी शिक्षासम्बन्धी बातोमें दिलचस्पीके साथ भाग लें, यह समझ कर न बैठ रह जायँ कि यह काम केवल अध्यापकोका है।

विनयमन्दिर (माध्यमिक विद्यालय) मे डाल्टन पद्धतिसे शिक्षा दी जाती है और इस बातका प्रयत्न किया जाता है कि नईसे नई शिक्षापद्धतिका प्रयोग किया जाय। पाठ्यपुस्तकोपर अधिक जोर नही दिया जाता। विद्यार्थियोके मनमे परीक्षाका भय नही समाने पाता। कक्षाओमे नम्बर नही होता। पाठ्यक्रम भी ऐसा नही बनाया गया है कि अमुक अमुक विषय विद्यार्थियोको पढने ही होंगे। उन्हे उनकी रुचि और योग्यताके अनुसार शिक्षा दी जाती है। पाठ्यक्रममें धर्मशिक्षा, सङ्गीत शिक्षा और राष्ट्रभाषा हिन्दीकी शिक्षा भी आवश्यक है। वातावरण कौटुम्बिक जीवनकासा है। विद्यार्थी और अध्यापक छोटे बडे भाई बहनोंके समान रहते हैं। अन्तिम ३ श्रेणियोंमे दस्तकारीकी शास्त्रीय शिक्षा दी जाती है। कातने और बुननेकी शिक्षाके लिये एक स्वतन्त्र शाला है जहां कताई बुनाई सम्बन्धी सभी कामोंके अतिरिक्त रँगाईकी भी शिक्षा दी जाती है। इस मन्दिरके शिक्षकोके लिये उपयुक्त पुस्तकोका एक छोटासा अच्छा पुस्तकालय है। प्रति सप्ताह शिक्षकमण्डलकी बैठक होती है, जिसमे निबन्धपाठ और वार्तालापके द्वारा शिक्षकगण परस्पर विचार विनिमय करते है। 'शारदा' नामकी एक हस्तलिखित

मासिक पत्रिका भी निकलती है जिसमे शिक्षापद्धति और उसके प्रयोगोसे सम्बन्ध रखनेवाले लेख निकलते है।

अध्यापनमन्दिरके ७ विभाग है--

(१) ग्राम्यशिक्षक अध्यापनमन्दिर

(२) माण्टीसरी अध्यापनमन्दिर

(३) प्राथमिक शिक्षक अध्यापनमन्दिर

(४) माखाप अध्यापनमन्दिर

(५) गृहपति अध्यापनमन्दिर

(६) डाल्टन अध्यापनमन्दिर, और

(७) माध्यमिक शिक्षक अध्यापनमन्दिर

आजकल इनमेसे (१), (२), (५), (६) और (७) का ही प्रबन्ध है। ग्राम शिक्षक अध्यापनमन्दिरसे गाँवोके लिये योग्य शिक्षक तैयार किये जाते है। माण्टीसरी अध्यापनमन्दिरमे इस पद्धतिसे शिक्षा देना सिखलाया जाता है, सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनो प्रकारकी शिक्षा दी जाती है। गृहपति अध्यापनमन्दिरमे छात्रावासका प्रबन्ध करनेकी शिक्षा दी जाती है। डाल्टन अध्यापनमन्दिरमें डाल्टन-पद्धतिसे शिक्षा देना सिखलाया जाता है। माध्यमिक शिक्षक अध्यापनमन्दिरमें शिक्षाके साधारण सिद्धान्त और यूरोपीय शिक्षा पद्धतिका इतिहास बतलाया जाता है।

विद्यार्थीगृहका उद्देश्य यह है कि यहाँ रहते हुए विद्यार्थी

स्वतन्त्र और सुव्यवस्थित गृहजीवन व्यतीत करे और आगे चलकर उत्तम मनुष्य बन सके। विद्यार्थी खुली हवामे रक्खे जाते है। उन्हे पौष्टिक भोजन दिया जाता है। व्यायाम आदिके लिये अखाडेका प्रबन्ध है। गृहका सारा प्रबन्ध विद्यार्थी अपने विद्यार्थीमण्डलके द्वारा करते है। 'विद्यार्थी' नामका एक हस्तलिखित मासिकपत्र भी निकलता है। विद्यार्थियोके प्रतिदिनके उपयोगकी वस्तुओकी एक दूकान है जिसका प्रबन्ध विद्यार्थी स्वयम् करते है और हिसाब किताब भी खुद ही रखते है। प्रतिदिन सामूहिक प्रार्थना होती है। नाटक आदि भी समय समय पर खेले जाते है। विद्यार्थियो को स्वावलम्बी बनानेका विशेष रूपसे प्रयत्न किया जाता है। अपने बर्तन कटोरे आदि वे स्वय साफ करते है और अधिकांश कपडे भी स्वय धो लेते है।

प्रकाशन विभागके द्वारा उपयोगी पाठ्यपुस्तके और शिक्षा-पद्धति पर शास्त्रीय विवेचनायुक्त ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते है। 'श्री दक्षिणामूर्ति' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका भी निकलती है। भगवान् बुद्ध और हजरत मुहम्मद साहब इत्यादि धर्मप्रवर्तकोंके जीवनचरित्र प्रकाशित करनेकी योजना की गई है। बालकोंके लिये सरल और मनोरञ्जक पुस्तकें भी प्रकाशित की जाती है। तात्पर्य यह कि यहाँसे शिक्षा सम्बन्धी सब प्रकारकी अच्छी पुस्तकें निकलती है।

सन् १९२९ ईसवीमें विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियोकी संख्या इस प्रकार थी—

	लडके	लडकियॉ
बालमन्दिर	२७	३६
विनयमन्दिर	८०	१५
अध्ययनमन्दिर	७	४
	११४	५५

ग्यारहवाँ अध्याय।

नवीन श्री समर्थविद्यालय, तलेगाँव।

प्रोफेसर विष्णु गोविन्द बीजापुरकरके मनमे सरकारी शिक्षा-प्रणालीकी बुराइयाँ बहुत दिनोसे खटक रही थी और वे महाराष्ट्रमे एक स्वतन्त्र शिक्षणसंस्था स्थापित करनेकी बात सोच रहे थे। जब काशीमे एक हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करनेकी चर्चा शुरू हुई तो उन्होंने इस विचारका जोरोसे समर्थन किया और एप्रिल सन् १९०९ के 'इण्डियन रिव्यू' मे 'नीड फार ए हिन्दू यूनिवर्सिटी' (एक हिन्दू विश्वविद्यालयकी आवश्यकता) शीर्षक देकर एक लेख भी लिखा। उन दिनो वे कोल्हापुरके राजाराम कालेजमे अध्यापक थे। बङ्गभङ्गके बाद स्वदेशीका आन्दोलन तीव्र होता जा रहा था और सारे देशमे केवल स्वदेशी वस्तु व्यवहार करनेका उत्साह बढ़ता जा रहा था। सन् १९०५ के सेप्टेम्बर महीनेमें राजाराम कालेजमे परीक्षा हो रही थी। विद्यार्थियोको जो उत्तरपत्रिकाएँ दी गई वे विदेशी कागजकी थी। उन्होने स्वदेशी कागजकी पत्रिकाएँ माँगीं।

१६१२ मे प्रोफेसर बीजापुरकर जेलसे छूट कर आये और उस विद्यालयको फिरसे चलानेका प्रयत्न करने लगे। बहुत कोशिशके बाद सरकार इस शर्तपर राजी हुई कि विद्यालयकी प्रबन्ध समितिके अध्यक्ष उसके (सरकारके) विश्वासपात्र सर महादेवराव चौबल हो। विद्यालयकी पहली सञ्चालक सभा महाराष्ट्र विद्याप्रसारक मण्डल कहलाती थी। तारीख १७ नवम्बर सन् १६१८ को 'नूतन महाराष्ट्र विद्याप्रसारक मण्डल' के नामसे इसका फिरसे सङ्गठन किया गया और उसके दूसरे दिनसे विद्यालय भी 'नवीन श्री समर्थविद्यालय' के नामसे खुल गया। मण्डलके अध्यक्ष सर महादेवराव चौबल हुए। सन् १६२० ईसवीसे देशमे असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ। फलस्वरूप देशके अन्य प्रान्तोंकी भाँति महाराष्ट्रमे भी 'तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ' के नामसे एक विद्यापीठकी स्थापना हुई। प्रोफेसर बीजापुरकर काँग्रेसकी शिक्षासम्बन्धी असहयोगी नीतिसे पूर्णतया सहमत न थे। लेकिन राष्ट्रीय शिक्षाके आन्दोलनसे उनकी पूरी सहानुभूति थी और तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठके कार्योंमे भी वे भाग लेते थे। सर महादेवरावको यह बात पसन्द न आई। सन् १६२१ में मण्डलके पदाधिकारियोका नया निर्वाचन होना था। सर महादेवराव इस समय मण्डलसे अलग हो गये और सरकारको सूचना दे दी कि इस मण्डलसे अब मेरा कोई सम्बन्ध नही रहा। यदि साधारण समय होता तो सरकारने फिर इस विद्यालयपर बज्रपात किया

होता। किन्तु देशका राजनैतिक आन्दोलन बहुत प्रौढ हो चुका था और इस कारण वह विद्यालयको इस प्रकारकी क्षति न पहुँचा सकी।

आरम्भसे ही इस विद्यालयकी ये विशेषताएँ रही है—

(१) शिक्षाका माध्यम विद्यार्थियोकी मातृभाषा मराठी है।

(२) सभी विद्यार्थियोके लिये छात्रावासमें ही रहना आवश्यक है, ताकि विद्यार्थियो और अध्यापकोके बीचका सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ रहे।

(३) ब्रह्मचर्यपर जोर दिया जाता है।

(४ पाठ्यक्रम और परीक्षाप्रणाली ऐसी है कि विद्यार्थियोंके मस्तिष्कपर व्यर्थका बोझ न पडने पावे।

(५) बौद्धिक शिक्षाके साथ साथ औद्योगिक शिक्षा भी दी जाती है।

(६) धार्मिक शिक्षा हिन्दुओके ऊँचे आदर्शोके अनुसार दी जाती है। किन्तु अन्य धर्मोंके प्रति भी आदरका भाव रक्खा जाता है।

विद्यालयका पाठ्यक्रम ७ वर्षोका है। प्रारम्भिक श्रेणियोकी शिक्षा समाप्त किये हुए विद्यार्थी ही इसमें प्रविष्ट हो सकते है। सातो वर्षोका पाठ्यक्रम मोटे तौरपर तीन भागोमें बाँटा जा सकता है—प्रथम दो वर्ष, मध्यके तीन वर्ष और अन्तके दो वर्ष। प्रथम दो वर्षोंमें मराठी, गणित, इतिहास, भूगोल, अँगरेजी और चित्रकारी-

की शिक्षा दी जाती है। मध्यके तीन वर्षोमे उपरोक्त विषयोंके अतिरिक्त सस्कृत भी पढाई जाती है। इन दोनोही भागोमे धर्मशास्त्र पढाया जाता है। अन्तिम दो वर्षोमे केवल मराठी और अँगरेजीकी पढाई होती है। यहाँतक केवल बौद्धिक शिक्षणका पाठ्यक्रम हुआ। इसके अतिरिक्त औद्योगिक शिक्षा भी सातो श्रेणियोमे दी जाती है। प्रथम दो वर्षोंमे हाथके काममे रुचि उत्पन्न करनेका ही प्रयत्न किया जाता है। मध्यके तीन वर्षोंमें बुनाई, खेती और बढईगीरीकी साधारण शिक्षा एक एक वर्षतक दी जाती है। अन्तिम दो वर्षोंमे नीचे लिखे विषयोमेसे किसी एककी शिक्षा दी जाती है--खेती, बढईगीरी और लोहारी, चित्रकला, और घटविद्या (मिट्टीके बर्तन बनाना)। प्रथम पॉच वर्षोमे विद्यालयका तीन चतुर्थांश समय बौद्धिक शिक्षाके लिये और एक चतुर्थांश औद्योगिक शिक्षाके लिये दिया जाता है। किन्तु अन्तिम दो वर्षोंमे एक चतुर्थांश समय बौद्धिक शिक्षाके लिये और तीन चतुर्थांश औद्योगिक शिक्षाके लिये दिया जाता है। शारीरिक शिक्षा और व्यायामका अच्छा प्रबन्ध है। विद्यार्थियोको लाठी, तलवार, कुश्ती, मलखम आदिकी अच्छी शिक्षा मिलती है। विद्यालयके विद्यार्थियोको देशकालका साधारण ज्ञान अच्छा रहता है। वे हाथसे लिखकर अपनी पत्रिकाएँ भी निकालते है।

यह विद्यालय किसी विद्यापीठसे सम्बद्ध नहीं है। किन्तु यहाँ को शिक्षा समाप्त किये हुए विद्यार्थियोको पूनेके तिलक महाविद्या-

लय और 'नेशनल कौंसिल आफ एज्युकेशन, बेङ्गाल' के 'कालेज आफ् इञ्जीनियरिङ्ग एण्ड टेकनालाजी' मे प्रवेश मिलता है। जो विद्यार्थी सरकारी विश्वविद्यालयोकी मैट्रिकुलेशन परीक्षामे बैठना चाहें वे यदि यहाँकी पाँचवी श्रेणी तककी शिक्षा समाप्त करके एक वर्ष और अभ्यास कर ले तो उन्हें कुछ भी कठिनाई नही पडेगी। सन् १९२९ मे इस विद्यालयमे ६० विद्यार्थी थे।

बारहवाँ अध्याय ।

प्रेम महाविद्यालय, वृन्दावन ।

यों तो विदेशी सरकारद्वारा प्रचारित शिक्षाप्रणालीकी बुराइयाँ बहुत पहलेसे स्पष्ट होती आरही थी और उनका प्रतीकार करनेके प्रयत्नस्वरूप अनेक शिक्षा संस्थाओंकी स्थापना भी हो चुकी थी, पर २० वीं शताब्दीके आरम्भसे इस विषयपर चिन्ताके साथ विचार किया जाने लगा था। अन्य बुराइयोंके साथ साथ शिक्षितोंकी बेकारीका प्रश्न बहुत जटिल होता जा रहा था और कलाकौशल सम्बन्धी शिक्षाका देशमे सर्वथा अभाव होनेकी अवस्था विचारशील लोगोंको बहुत खटक रही थी। ऐसे समयमें विदेश यात्रा करते हुए राजा महेन्द्रप्रतापके हृदयपर योरोपीय देशोंकी शिक्षा और उनके उद्योगप्रेमका विशेष प्रभाव पड़ा। उन्हें इस दृष्टि से भारतवर्षकी शोचनीय अवस्थाका खयाल आया। उन्होंने देखा कि यहाँ एक ओर तो पढ़े लिखे आदमी अपने हाथसे कोई काम कर ही नहीं सकते और दूसरी ओर देशके कारीगर अक्षर ज्ञान

शून्य होते है। ज्ञानेन्द्रियो ओर कर्मेन्द्रियोंका बिलकुल ही सहयोग नही है ओर इस कारण दोनों ही तरहकी शिक्षा बिलकुल अधूरी रह जाती है। आखिर तारीख २४ मई सन् १९०९ ईसवीको आपने प्रेम महाविद्यालयकी स्थापना की और अपने विशाल राजकीय भवनमे ही उसका आरम्भ किया। साथ ही अपने पॉच गॉव भी (जिनकी आमदनी सब खर्च काट कर लगभग ३३ हजार रुपये प्रतिवर्ष होती है) इस विद्यालयको भेट कर दिये।

प्रेम महाविद्यालयका किसी यूनिवर्सिटीसे सम्बन्ध नही है। यह एक स्वतन्त्र राष्ट्रीय महाविद्यालय है, जो जाति, सम्प्रदाय और मतमतान्तरके भेदभावको छोडकर सब प्रान्तोंके भारतीय नव-युवकोको स्वस्थ, स्वतन्त्र और देशप्रेमी नागरिक बननेकी शिक्षा देता हे। स्थापनाके समयसे ही प्रेम महाविद्यालयके उद्देश्य इस प्रकार हैं —

(१) सर्वसाधारणमे प्रारम्भिक शिक्षाप्रणालीका प्रचार करना।

(२) व्यापार, उद्योगधंधे ओर कलाकौशल आदिकी उच्च शिक्षाके साथ साधारण उच्च शिक्षा देना।

(३) स्वास्थ्यके महत्वकी शिक्षा देना।

(४) रहन सहनकी मर्यादाको ऊँचा करना और सामाजिक कुरीतियाँ हटाना।

(५) भारतके मृतप्राय कलाकौशल और औद्योगिक धन्धोंका

पुनरुज्जीवन और उनका आधुनिक प्रणालीके अनुसार सञ्चालन करना।

(६) पश्चिमी सभ्यताको पूर्वी सभ्यतासे मिलाकर भारतवर्षमे एक जातीयताका सङ्गठन करना।

(७) उपर्युक्त उद्देश्यके साधनार्थ सबसे अच्छा स्थान या स्थानोमें प्रेम महाविद्यालय अर्थात् शिल्प, वाणिज्य, कृषि और शिक्षा सम्बन्धी विद्यालयकी स्थापना करना।

सक्षेपमे इस महाविद्यालयका उद्देश्य भारतवर्षमे सामान्य शिक्षाके अतिरिक्त कलाकौशल और शिल्पकी उच्च शिक्षाका नि शुल्क प्रचार करना है, ताकि नवयुवक यहाँसे शिक्षा पानेके उपरान्त अपनी आजीविकार्थ जगह जगह नौकरीके लिये न भटकते फिरें, वे स्वावलम्बी और स्वतत्र जीवन व्यतीत कर सकें, साथही देशमें शिक्षित कारीगर यथेष्ट सख्यामें मिल सकें।

प्रेम महाविद्यालयका आरम्भ बढईगीरीकी शिक्षाके साथ हुआ। कुछ दिनोके बाद चित्रकला, कामर्स, और 'पाटरी' की कक्षाएँ बढाई गई और हिन्दी अँगरेजी आदि विषयोकी श्रेणियाँ भी खोली गई। बालश्रेणीमे पहले बालक और बालिकाओके साथ साथ पढनेका प्रबन्ध था। सन् १९१५ ईसवीमे यह श्रेणी बन्द हो गई। अगस्त सन् १९२० से कपडा बुननेका काम आरम्भ हुआ। मार्च सन् १९२२ मे 'महिला वस्त्रकला कक्षा' खोली गई। सन् १९१३ ईसवीमे मथुरा

और बुलन्दशहर जिलेके छ: गाँवोंमे कृषि आदि कार्यकरनेवाली जातियोंके नवयुवकोको शिक्षा देनेके लिये प्रेमपाठशालाएँ खोली गई। सन् १९११ ईसवीमे एक छापाखाना खोला गया। सन् १९२० ईसवी तक यहाँ जिल्दसाजी सिखलानेका भी प्रबन्ध था। सन् १९१० ईसवीसे 'प्रेम' नामक पत्र प्रकाशित होने लगा। पहले यह दस दस दिनोपर छपता था, बादको साप्ताहिक हुआ। कुछ दिनो बन्द रहकर फिर चला और मासिक होगया, पर आजकल बन्द है। सन् १९२८ ईसवीसे एक ग्राम कार्यकर्ता-शिक्षणविभाग खोला गया है जिसके द्वारा ग्रामसङ्गठनके लिये कार्यकर्त्ता तैयार किये जाते है। प्रेममहाविद्यालयके सभी विभागोंमें शिक्षा बिलकुल निःशुल्क है। योग्य विद्यार्थियोको कुछ छात्रवृत्ति भी दी जाती है।

महाविद्यालयके अन्तर्गत आजकल जितने शिक्षणालय है उन्हे चार भागोंमे बाँटा जा सकता है—

[१] साधारण विद्यालय विभाग

[२] शिल्प शिक्षा विभाग

[३] वाणिज्य (कामर्स) शिक्षाविभाग

[४] ग्राम कार्यकर्ता शिक्षण विभाग

पहले और दूसरे विभागोंकी एक विशेषता यह है कि साधारण विद्यालयमे विद्यार्थियोंको बौद्धिक शिक्षाके साथ साथ कुछ औद्योगिक शिक्षा भी दी जाती है और शिल्प विद्यालयोमे भिन्न भिन्न

शिल्पोंको शिक्षाके साथ साथ कुछ साहित्यिक शिक्षा भी दी जाती है।

साधारण विद्यालयमे चार श्रेणियाँ है जिनका पाठ्यक्रम मैट्रिकुलेशनके दर्जेका है। सरकारी स्कूलोंकी छठीं श्रेणी तककी शिक्षा पाये हुए विद्यार्थी प्रथम श्रेणीमे भरती किये जाते हैं। शिक्षाका माध्यम हिन्दी भाषा है। विद्यार्थीको साहित्यिक और बौद्धिक शिक्षा प्राप्त करनेके अतिरिक्त किसी एक उद्योग और चित्रकलाकी भी शिक्षा लेनी होती है। औद्योगिक शिक्षा इस दर्जे तक देनेका प्रयत्न किया जाता है जिससे विद्यालय छोडनेके उपरान्त विद्यार्थी इसके आधारपर स्वतंत्र रूपसे जीविका प्राप्त कर सके। उच्च कक्षाओंमे अर्थशास्त्र तथा नागरिक धर्मकी भी शिक्षा दी जाती है जिससे विद्यार्थी देशकी विविध समस्याओंपर विचार कर सके। पाठविधि तैयार करनेमे इस बातका खयाल रक्खा गया है कि विद्यार्थियोके मस्तिष्कपर ऐसा भार न पडे जो उनकी मानसिक शक्तिके विकासमे बाधक हो। विद्यार्थियोको सामयिक और उपयोगी विषयोपर भाषण देने और निबन्ध लिखनेका अभ्यास करानेके लिये प्रेम युवकसभा है। प्रयागकी सेवासमितिसे सम्बद्ध एक बालचर संस्था भी है। विद्यार्थियोंके लिये शुद्ध खद्दरके कपडे पहनना आवश्यक है।

सभी विभागोंमे बाहरसे आनेवाले विद्यार्थियोंके लिये एक छात्रावास है। यहाँ चरित्रगठनपर विशेष जोर दिया जाता है।

छात्रावासका कोई किराया नही लिया जाता। विद्यार्थियोंका मासिक भोजन ख़र्च, घी दूधको छोड कर आठ नव रुपया पडता है।

शिल्प शिक्षा विभागमे निम्नलिखित शिल्पोकी शिक्षाका प्रबन्ध है--

(१) मिकेनिकल इञ्जिनीयरिङ्ग—इसका पाठ्यक्रम तीन वर्षो का है और इसमे मैट्रिकुलेशनकी योग्यता रखनेवाले विद्यार्थी लिये जाते है।

(२) बढईगीरी और लोहारी--इसका भी पाठ्यक्रम तीन वर्षोंका है।

(३) गलीचा बुनना--इसका पाठ्यक्रम एक वर्षका है।

(४) चीनीके खिलौने और बर्तन बनाना--इसका पाठ्यक्रम तीन वर्षोंका है। इसमें प्रविष्ट होनेवाले विद्यार्थियोंके लिये अँगरेजी भाषाका साधारण ज्ञान रखना आवश्यक है।

(५) दर्ज़ीका काम--इसका पाठ्यक्रम एक वर्षका है।

(६) लोहेका ढालना, खराद और फिटिङ्गका काम--इसका पाठ्यक्रम तीन वर्षोंका है।

(७) कपडा बुनना—इसका पाठक्रम एक वर्षका है।

इन श्रेणियोंमे इन विषयोंके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार हिन्दी और गणितकी शिक्षा भी दी जाती है। चित्रकला अनिवार्य विषय है। साथही उसकी विशेष शिक्षाका भी अलग प्रबन्ध है। शिक्षा

तो निःशुल्क है ही, किन्तु विद्यार्थियोंको काम करनेके औजार भी विद्यालयकी ओरसे दिये जाते है। योग्य विद्यार्थियोको छात्रवृत्ति भी दी जाती है। कपडा बुनने, सूत कातने, कालीन व निवाड आदि बुननेका काम सीखनेके लिये महिलाओंकी पृथक वस्त्रकलाश्रेणी है।

वाणिज्य शिक्षा विभागमे टाइपराइटिंग, शार्टहैण्ड और देशी तथा विदेशी महाजनी हिसाबकी शिक्षाका प्रबन्ध है। इन विषयोंके अतिरिक्त नागरिक धर्म और अर्थशास्त्रकी भी शिक्षा दी जाती है।

सब विभागोके विद्यार्थियोकी सख्या आजकल १७८ है। आजतक २५५ विद्यार्थी भिन्न भिन्न विभागोसे डिप्लोमा प्राप्त करके निकल चुके है।

ग्राम कार्यकर्त्ता शिक्षण विभाग सन् १६२८ ईसवीसे खोला गया है, और देशकी वर्तमान परिस्थितिमे इससे एक बडी कमीकी पूर्ति हो रही है। जो लोग ग्रामसङ्गठनका काम करना चाहते हों, और ग्रामवासियोंको उनकी आर्थिक, सामाजिक, सफाई एवम् शिक्षा-सम्बन्धी अवस्थाको सुधारनेमे विचारपूर्ण व्यावहारिक सहायता पहुँचाना चाहते हों, उन्हें ग्राम्यजीवन और ग्राम सङ्गठनके कार्यके सम्बन्धमे आवश्यक, भिन्न भिन्न विषयोंकी सुसम्बद्ध सैद्धान्तिक और व्यावहारिक शिक्षा देना—इस विभागका उद्देश्य है। इस विभागमें किसीभी जाति या धर्मके १८ वर्षसे अधिक उम्रके ऐसे विद्यार्थी प्रविष्ट हो सकते है जिन्होने मैट्रिकुलेशन तककी शिक्षा

पाई हो, हिन्दी अच्छी जानते हों और इस बातको प्रतिज्ञा करते हों कि यहाँकी शिक्षा समाप्त करनेके उपरान्त कमसे कम दस वर्ष तक ग्राम सुधारका कार्य करेंगे। विद्यार्थियोंसे किसी प्रकारका शुल्क नहीं लिया जाता, १० विद्यार्थियोंको १५ से २० रुपये मासिक तककी छात्रवृत्ति भी इन शर्तोंपर दी जाती है कि वे—

(१) इस बातको प्रतिज्ञा करें कि इस पाठ्यक्रमकी पूरी शिक्षा समाप्त करेंगे। और

(२) यह प्रतिज्ञा करें कि शिक्षा समाप्त करनेपर दस वर्ष तक वे विद्यालयके अधिकारियोंके नियन्त्रणमें अपनी आवश्यकतानुसार ३० से ७५ रुपये तक मासिक पुरस्कार लेते हुए ग्रामसङ्गठनका कार्य करेंगे। मासिक पुरस्कार कितना हो—इसका निर्णय विद्यालयके अधिकारी, उन संस्थाओंके अधिकारियोंसे सलाह करके करेंगे जिनके द्वारा इन कार्यकर्ताओंको काम दिया जायगा।

जिन विद्यार्थियोंको छात्रवृत्ति न मिलेगी उन्हें पहली प्रतिज्ञा तो उसी भाँति करनी होगी पर दूसरीके सम्बन्धमें उन्हें स्वतंत्रता रहेगी कि किसी भी संस्थाके आधीन रह कर काम करें, लेकिन १० वर्षों तक काम करना होगा। प्रत्येक विद्यार्थीको छात्रावासमें रहना होगा और उसके लिये शुद्ध खादी पहनना तथा प्रतिदिन सूत कातना आवश्यक होगा।

पाठ्यक्रम—सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनो मिलाकर— दो वर्षोंका रक्खा गया है। पर जो विद्यार्थी (क) कृषिशास्त्र, (ख) स्वास्थ्यरक्षा और सफ़ाई, (ग) प्रारम्भिक शिक्षा, उसकी प्रणाली और उसके सिद्धान्त, (घ) सहकारी सभाएँ, और (ङ) किसान तथा मज़दूर सङ्गठन—इनमेंसे किसी एक विषयका विशेष ज्ञानप्राप्त करना चाहेगे उन्हे छ: महीने और रहना होगा। दो वर्षों तक इन विषयोकी शिक्षा दी जाती है—

(१) अर्थशास्त्र—उसके साधारण सिद्धान्त, और भारतीय अर्थशास्त्रका इतिहास विशेषकर मालगुजारी, गृह-उद्योग, सहकार सभाएँ बेकारी तथा किसान सभाओंका खयाल रखते हुए।

(२) शासनविधान और नागरिक शास्त्र—भारतीय शासन विधान, स्थानीय स्वायत्त सस्थाएँ—उनका कार्यक्षेत्र और इतिहास ग्राम पचायत और भारतवर्षकी वर्तमान समस्याएँ।

(३) सफाई—सफाई, स्वास्थ्यरक्षा और शरीर विज्ञानका साधारण ज्ञान।

(४) शिक्षा—प्रारम्भिक शिक्षाकी प्रणाली और उसके सिद्धान्त।

(५) सूत कातना, बुनना, कृषिका काम, आहतोकी पहली

सहायता, कवायद, देशी खेल, और मामूली हिसाब किताब।

(६) व्यावहारिक—कातने और बुननेवालोंका हिसाब करना, गाँवोंको धार्मिक सामाजिक और सफाई सम्बन्धी अवस्थाओंका अध्ययन करना, प्रारम्भिक पाठशाला चलाना, अछूतोद्धार सम्बन्धी कार्य आदि।

दो वर्षोंका समूचा पाठ्यक्रम चार चार महीनेके छः सत्रोंमे विभाजित है। पहले, तीसरे और पाँचवे सत्रमे विद्यार्थी विद्यालयमे रहते हुए सैद्धान्तिक शिक्षा प्राप्त करते है, और व्यावहारिक शिक्षाके लिये दूसरे, चौथे तथा छठे सत्रमे शिक्षकोंके साथ गाँवोंमे जाते है।

तेरहवाँ अध्याय ।

बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षापरिषद्
या
नेशनल कौंसिल आफ़ एजुकेशन, बङ्गाल ।

देशमे जो मुख्य मुख्य गैरसरकारी शिक्षासस्थाएँ है उन सबका भारतवर्षकी वर्तमान जागृतिके आन्दोलनसे विशेष सम्बन्ध है। किन्तु वङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षापरिषद ही पहली ऐसी सस्था है जो देशके राजनैतिक आन्दोलनके फलस्वरूप स्थापित हुई। इसकी स्थापनाका इतिहास समस्त देशके और विशेषकर बङ्गालके राजनतिक इतिहासका एक महत्वपूर्ण और रोचक अश है। देशका वर्तमान राजनैतिक आन्दोलन अँगरेजीकी ऊँची शिक्षा पाये हुए लोगोके द्वारा आरम्भ हुआ था। इस शिक्षाकी शुरुआत बंगालसे हुई थी और ऐसे शिक्षित लोगोकी तादाद भी वही अधिक थी। फलत. देशका राजनैतिक आन्दोलन बङ्गालमे अधिक ज़ोरपर था। शिक्षित बङ्गालियोकी शक्तिको चूर्ण करके ही यह आन्दोलन शिथिल

किया जा सकता था। लार्ड कर्जनने इसका अनुष्ठान शुरू किया। बङ्गालके स्कूल कालेजोंकी उच्च शिक्षा उन दिनो कलकत्ता विश्वविद्यालयके हाथोमे थी। इसके अधिकांश सदस्य गैरसरकारी लोग होते थे। वे विद्यालयोंका पाठ्यक्रम और रीति नीति निर्धारित करनेमें देशहितका खयाल रखते थे और सरकारी क़ायदोंकी पाबन्दी करते हुए जहाँतक सम्भव था इसी उद्देश्यको पूरा करनेकी कोशिश करते थे। लार्ड कर्जनको यह बात सह्य न हुई और उन्होंने एक ऐसा कानून बनाना चाहा जिससे विश्वविद्यालयके अधिकांश सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत किये जायँ। लार्ड क़र्जनके प्रस्तावित कानूनका मसविदा जिस कमेटीके सामने पेश हुआ उसके एक सदस्य थे सर गुरुदास वन्द्योपाध्याय। उन्होंने इसका बहुत विरोध किया। देशमे भी इसका घोर विरोध हुआ, पर लार्ड कर्जनने उस क़ानूनको पास करा ही लिया। इससे बडा असन्तोष फैला और लोगोंके मनमे यह बात उठने लगी कि यदि सरकार देशकी शिक्षापद्धतिको इस प्रकार शासनके नियन्त्रणमें रक्खेगी तो हमारे लिये यही उचित है कि एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय स्थापित करें, और देशकी शिक्षाका भार अपने हाथोंमें ले लें। किन्तु यह विचार अभी विचार मात्र रहा। अब लार्ड कर्जनने अपना दूसरा अस्त्र चलाया। बङ्गालको दो टुकडोंमे विभक्त कर दिया। क्यो किया—इसपर विचार करना इस निबन्धके विषयकी सीमाके बाहर है,

और आज दिन तो प्रत्येक व्यक्ति इस बातको समझता है कि ऐसा करनेसे देशपर विदेशी शासनका पञ्जा जमाए रखनेमें कितनी मदद मिलती थी। बङ्गाली इस प्रहारको न सह सके। उन्होने निश्चय किया कि हम विभक्त न होगे। पूर्व और पश्चिम बङ्गालके बीच जो कुछ भेदभाव था वह भी लार्ड कर्जनके इस कृत्यसे दूर हो गया। १६ अक्टूबर सन् १६०५ ईसवीसे बङ्गालके दोनो टुकडोका शासन अलग अलग हो गया। उस दिन सारे बङ्गालमे उपवास हुआ और बङ्गालियोंने एक दूसरेको भाई भाईके मिलन स्वरूप राखी दी। उसी दिन कलकत्तेमे एक विराट् सभा हुई और बङ्गालियोने घोषणा की कि "बङ्गाली राष्ट्रके विरोधकी अवहेलना करके सरकारने बङ्गालके दो टुकडे करनेका निश्चय किया है, किन्तु हम प्रतिज्ञा करते है कि इस विभाजनकी बुराइयोंको दूर करने और अपने प्रान्तकी अखण्डता कायम रखनेके लिये कोशिश करनेमे कुछ भी उठा न रक्खेगे। ईश्वर हमारी सहायता करे।" इसीके साथ साथ स्वदेशी आन्दोलनने भी जोर पकडा। नगर नगरकी सभामें यह प्रतिज्ञा होने लगी कि हम इंग्लेण्डकी या किसी भी विदेशकी बनी हुई चीज इस्तेमाल नही करेंगे।

इन सब आन्दोलनोंको बढानेमें विद्यार्थीगण बडे उत्साहके साथ भाग ले रहे थे। सरकारने देखा कि यदि उन्हे अलग कर दिया जाय तो आन्दोलन कमज़ोर हो जायगा। उस समय पश्चिम बङ्गाल और

पूर्व बङ्गालमें सरकारके सेक्रेटरी क्रमशः कार्लाइल और लायन नामक व्यक्ति थे। इन लोगोंने यह सर्क्यूलर जारी किया कि विद्यार्थी लोग राष्ट्रीय आन्दोलनमे भाग न ले सकेंगे, जिस विद्यालयके प्रबन्धक और शिक्षक इस आदेशका पालन न करेंगे उस विद्यालयको सरकारी सहायता न मिलेगी और वहाँके विद्यार्थियों-को सरकारी छात्रवृत्ति भी न दी जायगी। यह सर्क्यूलर २८ अक्तूबरको प्रकाशित हुआ। इससे जनताकी विरोध भावना और बढी। १ नवम्बरको कलकत्तेके 'फील्ड एण्ड एकाडेमी क्लब' में श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरके सभापतित्वमे एक सभा हुई जिसमे यह निश्चय हुआ कि हम इस सर्क्यूलरको न मानेंगे, अपने बच्चोकी शिक्षाका भार हम स्वय लेंगे और एतदर्थ एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय स्थापित करेंगे। इसी बीच कुछ ऐसी घटनाएं हुईं जिन्होने उपरोक्त विचारको कार्य रूपमें परिणत करनेमें बहुत योग दिया। ऊपर कहा गया है कि १६ अक्टूबरको कलकत्तेकी एक विराट सभामे बङ्गालियों-की ओरसे यह घोषणा हुई कि हम बङ्गालकी अखण्डता क़ायम रखनेकी कोशिशमें कुछ भी न उठा रक्खेंगे। इसके कुछ दिन बाद यह निश्चय किया गया कि १ नवम्बरको प्रत्येक नगरसे यही घोषणा-की जाय। हुआ भी ऐसा ही। रङ्गपुरमे इसके लिये जो सभा हुई उसमे भाग लेनेके कारण २०० विद्यार्थियोंपर जुरमाने हुए। ढाकाके विद्यार्थियोंने निश्चय किया कि १ नवम्बरसे लगातार ३ दिनो तक

नगे पैर स्कूल जायँगे। उनपर भी जुरमाने हुए। दिनाजपुरके कुछ विद्यार्थियापर भी इसी कारण जुरमाने हुए। किन्तु इन सभी जगहो पर अभिभावकोने जुरमाना देनेसे इनकार कर दिया और अपने बच्चोको सरकारी स्कूलोमे भेजना भी बन्द कर दिया। उनकी शिक्षाके लिये इन तीनो स्थानोपर राष्ट्रीय स्कूल खोले गये। यही बङ्गालके सर्व प्रथम राष्ट्रीय स्कूल थे। जब यह समाचार कलकत्ते पहुँचा तो विद्यार्थियोमें बड़ी उत्तेजना फैली। एम० ए० और पी० आर० एस० की परीक्षा निकट थी, पर अनेक परीक्षार्थियोने निश्चय किया कि हम परीक्षा नही देंगे। अनेक विद्यार्थियोने कालेज छोड दिया। विद्यार्थियोकी सभाए होने लगी और उनसे सरकारी विद्यालयोंको छोडकर राष्ट्रीय विश्वविद्यालयकी सहायता करनेकी अपील की जाने लगी।

अब एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालयकी स्थापनाका समय आ गया था। १४ नवम्बरको बैरिस्टर आसुतोष चौधरी (स्वर्गीय सर आसुतोष चौधरी) ने कुछ प्रमुख सज्जनोके नाम एक पत्र लिखा जिसमें उनसे प्रार्थना की कि शिक्षा समस्या पर विचार करनेके लिये १६ नवम्बरको एक सम्मेलनमे उपस्थित हो। इस सम्मेलनमे बङ्गालके सभी नेतागण आये। निश्चय हुआ कि राष्ट्रीय ढंगपर राष्ट्रीय शिक्षाका सञ्चालन करनेके लिये एक राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् स्थापित करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है, और इस उद्देश्यकी पूर्तिके हेतु कार्या-

रम्भ करनेके लिये एक अस्थायी शिक्षा समिति बनाई जाती है जिसे आदेश दिया जाता है कि दो सप्ताहके भीतर अपनी रिपोर्ट दे। सम्मेलनमे बतलाया गया कि इस कार्यके लिये श्रीयुत सुबोधचन्द्र मल्लिकने १ लाख रुपयेका और एक दूसरे सज्जनने ५ लाखका दान दिया है। ये दूसरे सज्जन थे श्री व्रजेन्द्र किशोर राय चौधरी। १० दिसम्बरको सम्मेलनकी दूसरी बैठक हुई जिसमे उपरोक्त अस्थायी शिक्षा समितिकी रिपोर्ट पर विचार होकर निश्चय हुआ कि कार्यारम्भके प्रकारों और उपायोंपर विचार करनेके लिये एक उपसमिति बना दी जाय। ११ मार्च सन् १६०६ ईसवीको सम्मेलनकी तीसरी बैठक हुई जिसमे उक्त उपसमितिकी रिपोर्ट स्वीकृत होकर राष्ट्रीय शिक्षा परिषद्की स्थापना हुई। तारीख १ जूनको इसकी बाकायदा रजिस्ट्री हो गई। इसके मुख्य उद्देश्योंमेसे कुछ ये है—

(क) आजकल प्रारम्भिक माध्यमिक और कालेजकी शिक्षा जिस पद्धतिसे चल रही है उसका विरोध न करते हुए, किन्तु उससे बिलकुल अलग रहते हुए साहित्यिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक आदि शिक्षाका राष्ट्रीय ढग पर और पूर्णतया राष्ट्रीय नियन्त्रणमे प्रबन्ध करना और उसकी उन्नतिके लिये प्रयत्न करना। इस शिक्षामें अपने देश तथा उसके साहित्य, इतिहास, दर्शन आदिकी शिक्षाको विशेष महत्व दिया जायगा और इस बात का प्रयत्न किया जायगा कि जीवन और विचारके सम्बन्धमे

पूर्वके ऊँचे आदर्शोंके साथ पश्चिमके अच्छे अच्छे विचारोका भी एकीकरण हो। विद्यार्थियोमे स्वदेश प्रेम और स्वदेश सेवाका भाव जागृत करनेकी चेष्टा की जायगी।

(ख) कला, विज्ञान, उद्योग और व्यापार सम्बन्धी शिक्षाके उन अङ्गो पर विशेष जोर देना, जिनसे देशकी अवस्था सुधरे और उसकी आवश्यकताओंकी पूर्ति हो सके। वैज्ञानिक शिक्षामे ऐसे विज्ञानकी शिक्षाका भी समावेश होगा जो पूर्वीय देशोंके शास्त्रोंमें पाये जाते है, और औषधिविज्ञानकी शिक्षामे आयुर्वैदिक और हकीमो पद्धतियोकी शिक्षाका भी प्रबन्ध किया जायगा। ।

(च) बँगला, हिन्दी, उर्दू आदि प्रान्तीय भाषाओके माध्यमसे शिक्षा देना, किन्तु अँगरेजी द्वितोय भाषाके रूपमे एक आवश्यक विषय हो। ।

(झ) प्रान्तीय भाषाओमे भिन्न भिन्न विषयो पर आवश्यक पाठ्य-पुस्तकें तैयार करना। ।

इसको प्रथम परिचालक समितिके सभापति हुए श्री रास बिहारी घोष और मत्री श्री आसुतोष चौधरी तथा श्री हीरेन्द्रनाथ दत्त। जैसा कि ऊपर कहा गया है, श्री सुबोधचन्द्र मल्लिक और श्री व्रजेन्द्रकिशोर राय चौधरीने क्रमश. १ लाख और ५ लाखका दान देनेको कहा था। इन सज्जनोंने इतने इतने रकमकी जमीन्दारियां

परिषद्को दी, जिनकी वार्षिक आय क्रमशः ३६०० और २०००० रुपये हुई। इनके अतिरिक्त दूसरे वर्ष मैमनसिंहके महाराजा सूर्यकान्त आचार्य चौधरीने ढाई लाखकी जमीन्दारी दी जिसकी वार्षिक आय १०००० रुपये थी। इस प्रकार परिषद्का कार्य साढे आठ लाखकी सम्पत्तिसे आरम्भ हुआ जिसकी वार्षिक आय ३३६०० रुपये हुई। परिषद्की स्थापना तो हो गई किन्तु विद्यालयका अब तक कोई प्रबन्ध नहीं हुआ था। १५ अगस्तको कालेज और स्कूल खोले गये जिसके सर्व प्रथम अध्यक्ष (प्रिन्सिपल) हुए श्री अरविन्द घोष।

बङ्गालमें राष्ट्रीय शिक्षाका यह आन्दोलन जबसे शुरू हुआ तभीसे स्वर्गीय तारकनाथ पालित बडी दिलचस्पीके साथ इसमें भाग ले रहे थे। उन्होने बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद्की स्थापनामे बडा योग दिया। किन्तु जिस समय उसका सङ्कल्पपत्र और उसकी नियमावली तैयार हुई उस समय अन्य प्रमुख कार्यकर्ताओंसे कुछ सिद्धान्तो पर उनका मतभेद हो गया और वे उससे अलग रहे। उन्होंने 'शिल्प विज्ञान शिक्षा-सहायक समिति' (सोसाइटी फार दि प्रोमोशन आफ् टेकनिकल एजुकेशन) के नामसे एक पृथक् सस्था स्थापित की। इस संस्थाने 'बेङ्गाल टेकनिकल-इन्स्टिट्यूट' के नामसे एक अलग कालेज खोला। यह १६०६ ईसवीकी बात है। चार वर्ष तक ये दोनो सस्थाएँ (बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षापरिषद और शिल्प-विज्ञान-शिक्षा

सहायक समिति) और इनकी अधीनतामे चलनेवाले कालेज और स्कूल अलग अलग चलते रहे। सन् १९१० में दोनोके अधिकारियोंके बीच समझौता होकर शिल्पविज्ञान शिक्षा सहायक समिति, वङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा समितिमे मिला दी गई, और 'बेङ्गालटेकनिकल-इन्स्टिट्यूट' शेषोक्त समितिका एक अङ्ग हो गई। आगे चलकर पालित महाशयका अन्य कार्यकर्ताओंके साथ फिर मतभेद हुआ और वे इससे बिलकुल अलग होगये। उनकी विशेष सहायतासे कलकत्ता विश्व-विद्यालयने सुप्रसिद्ध साइन्स कालेजकी स्थापना की।

जबतक बङ्गालके दोनों टुकडे मिलाये नही गये तब तक राजनैतिक आन्दोलन जोरोपर रहा। राष्ट्रीय स्कूलोंमें विद्यार्थियोंकी सख्या भी उस समय तक बहुत रही। किन्तु ज्यों ज्यों राजनैतिक आन्दोलन शिथिल पडता गया त्यो त्यो इन विद्यालयोकी अवस्था खराब होती गई। सरकारने भी हर तरहसे इन्हें तबाह करना शुरू किया। नतीजा यह हुआ कि 'बेङ्गाल टेकनिकल इन्स्टिट्यूट' को छोडकर कलकत्तेका कालेज और स्कूल बन्द हो गये। बङ्गालके अन्य राष्ट्रीय स्कूल भी बन्द होने लगे। टेकनिकल इन्स्टिट्यूट चलता रहा पर उसके विद्यार्थियोकी सख्या भी घटने लगी। लेकिन इसी समय इसकी अवस्था सुधारनेके लिये बहुत कोशिश की गई और इसमें फिर विद्यार्थी बढने लगे। असहयोग आन्दोलनने इसे और बल दिया। अब तो यह इन्स्टिट्यूट अपने तरहके विद्यालयोंमे प्रथम श्रेणीका

गिना जाता है। आरम्भमे जो बडी बडी रकमे या जागीरे परिषद्‌को मिली थीं उनके अतिरिक्त एक बहुत बडी रकम उसे सर राशबिहारी घोषकी वसीयतसे मिली। उन्होने अपने वसीयतनामेमें यह लिखा था कि मेरा सारा लहना पावना साफ करके जो रकम बचे वह 'बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षा परिषद्' को मिले। परिषद्‌को इसके मुताबिक लगभग १५ लाख रुपये मिले। इससे परिषदने कलकत्तेके समीप जादवपुरमे १०० बीघे जमीन पट्टेपर लेकर अपना काम बढाया। 'बेङ्गाल टेकनिकल इन्स्टिट्यूट' जिसका नाम बदलकर अब 'कालेज आफ इञ्जीनियरिङ्ग एण्ड टेकनालाजी, बेङ्गाल' रक्खा गया है—इसी स्थानपर है।

परिषद्‌का वर्तमान कार्यक्रम दो भागोमे विभक्त है—एक टेकनिकल विभाग और दूसरा साधारण विभाग। इन दोनो विभागो‌के प्रबन्धके लिये दो प्रबन्ध समितियाँ है जो परिषद्‌की कार्यकारिणी समितिकी मातहतीमे अपने अपने विभागका प्रबन्ध करती है। टेकनिकल विभागकी प्रबन्ध समिति 'कालेज आफ़ इञ्जीनियरिङ्ग एण्ड टेकनालाजी, बेङ्गाल' का प्रबन्ध करती है और साधारण विभागकी प्रबन्ध समिति अन्य सब कार्योंकी देखभाल करती है।

'बेङ्गाल टेकनिकल इन्स्टिट्यूट' की स्थापना सन् १६०६ ईसवी में हुई थी। सन् १६१० से यह नैशनल कौसिल आफ़् एजुकेशनके साथ मिला दिया गया और उसीके द्वारा इसका प्रबन्ध होने लगा।

सन् १९२२ में इसके लिये सियालदहसे ५ मीलकी दूरीपर जादवपुरमें १०० बीघे जमीन ९९ वर्षके पट्टेपर कलकत्ता कारपोरेशनसे ली गई। इसका माहवार किराया २१० रुपया है। इसी जमीनपर लगभग ८ लाखकी लागतसे मकान और लेबोरेटरि आदि बनवाये गये और यह इन्स्टिट्यूट उसमें लाया गया। सन् १९२९ से इस इन्स्टिट्यूटका नाम 'कालेज आफ इञ्जिनीयरिङ्ग एण्ड टेकनोलाजी, बेङ्गाल' रक्खा गया है। इसका पाठ्यक्रम इन चार भागोमे विभक्त है।

(१) सेकण्डरी विभाग इञ्जिनीयरिङ्ग कोर्स—इसके अन्तर्गत (क) मेकेनिकल (ख) इलेक्ट्रिकल और (ग) केमिकल इञ्जिनीयरिङ्गके कालेज है। प्रत्येकका पाठ्यक्रम ४ वर्षोंका है।

(२) जूनियर टेकनिकल कोर्स—इसके अन्तर्गत (क) मेकेनिकल और (ख) इलेक्ट्रिकल इञ्जिनीयरिङ्गकी क्लासे होती है जिनका पाठ्यक्रम तीन तीन वर्षोंका है।

(३) सर्वे और ड्राफ्टका काम—इसका पाठ्यक्रम दो वर्षोंका है।

(४) कारखानोंकी अप्रेण्टिसी—इसकी भी अवधि दो वर्षोंकी है।

कालेजकी शिक्षा उच्च कोटिके अध्यापकोके हाथमे है। आजकल इनमेसे सात अमेरिका और जरमनीके अच्छे अच्छे विश्वविद्यालयोके ग्रेजुएट है और कुछ कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा इस कालेजके अच्छे

ग्रेजुएट है। यहाँकी शिक्षा ऊँचे दर्जेकी होती है। 'सिटी एण्ड गिल्ड्स आफ् लण्डन इन्स्टिट्यूट परीक्षा' के अधिकारियोने यह नियम कर दिया है कि इस कालेजके विद्यार्थी, उसकी मेकेनिकल और इलेक्ट्रिकल इञ्जीनियरिङ्गकी द्वितीय ग्रेड परीक्षामे प्रथम ग्रेड परीक्षा पास किये विना ही बैठ सकते है। सन् १९२८ मे इस कालेजके १९ विद्यार्थियों-ने उपरोक्त परीक्षा पास की जिनमेंसे ७ को अच्छे नम्बरोंके लिये पदक भी मिले। 'यूनिवर्सिटी आफ एडिनबर्ग' ने भी इस कालेजकी परीक्षाओंको स्वीकार किया है। आजकल कालेजमें विद्यार्थियोंकी सख्या ६०० है। छात्रावासमे ९५ विद्यार्थियोंके लिये स्थान है। विद्यार्थियोंके लिये हाकी फुटबाल क्रिकेट आदि खेलोंका प्रबन्ध है। धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है। शिक्षाशुल्क सेकण्डरी विभाग टेक-निकल कोर्सके लिये ८ रुपये, जूनियर टेकनिकल कोर्सके लिये ६ रुपये और अन्य विभागोके लिये ५ रुपये मासिक है। कुछ योग्य विद्यार्थियोंका शुल्क माफ भी कर दिया जाता है और कुछ छात्र-वृत्तियाँ भी दी जाती है। सन् १९२८ से कालेजकी ओरसे अँगरेजी और बँगलामें एक त्रैमासिक पत्रिका निकल रही है।

साधारण विभागके द्वारा होने वाले कार्योंमेसे मुख्य मुख्य ये है—

(१) राष्ट्रीय पाठशालाओंको सम्बद्ध करना, उनका पाठ्य-क्रम निश्चित करना, परीक्षाऍ लेना और उनकी आर्थिक सहायता करना।

(२) दर्शन और इतिहास विषयक गवेषणापूर्ण पुस्तकें लिखवाना।

(३) सार्वजनिक व्याख्यानोंका प्रबन्ध करना और पुस्तके प्रकाशित करना।

आजकल प्रत्यक्ष रूपसे परिषद्के सञ्चालनमें कोई स्कूल नहीं है। सन् १६२८ मे बङ्गालके १३ राष्ट्रीय स्कूल इससे सम्बद्ध थे और परिषद्ने इन्हे ३ हजारसे कुछ अधिक रुपयोकी सहायता दी थी। परिषद्से विद्यालयोके सबद्ध किये जानेके नियम ये है—

(१) विद्यालयमें साहित्यिक और वैज्ञानिक शिक्षाके अतिरिक्त नीचे लिखे विषयोमेसे किसी एक की शिक्षाका प्रबन्ध होना आवश्यक है—बागबानी, डेरी, कताई बुनाई, सिलाई, बढ़ईगीरी और लुहारी, सर्वे और ड्राफ्टका काम, सहकारी दूकानोंका काम, और बही खाता तथा व्यापारिक पत्रव्यवहार। इन विषयोमें परीक्षा नही ली जायगी लेकिन यह देखा जायगा कि विद्यार्थी परिषद् द्वारा निर्धारित प्रतिशत दिनो तक क्लासमें गया था या नही?

(२) शिक्षाका माध्यम बँगला भाषा होनी चाहिये। अँगरेज़ी केवल द्वितीय भाषाके तौर पर पढ़ाई जाय।

(३) पाठ्यक्रम, आद्यमान, मध्यमान और अन्त्यमान इन तीन भागोंमे विभक्त रहेगा।

(४) मध्यमानकी शिक्षा समाप्त करने पर यदि विद्यार्थीकी रुचि अन्त्यमानकी शिक्षा लेनेकी न हो तो उसके लिये विशेष औद्योगिक शिक्षाका प्रबन्ध किया जाय। किन्तु ऐसे विद्यार्थियोके लिये इतिहास और अर्थशास्त्रके साधारण व्याख्यान कराये जायँ। ये व्याख्यान भारतीय दृष्टिकोणसे हों और भारतवर्षकी स्थिति पर विशेष रूपसे विचार किया जाय।

(५) शारीरिक व्यायाम और खेलमे शरीक होना विद्यार्थियोंके लिये अनिवार्य हो।

(६) सप्ताहमे कमसे कम दो बार धार्मिक और नैतिक शिक्षा देनेका प्रबन्ध रहे।

(७) समाज-सेवाके कार्योंमे विद्यार्थियोको व्यावहारिक शिक्षा दी जाय।

(८) विद्यालयमे एक अच्छा पुस्तकालय होना चाहिये।

आद्यमान, मध्यमान और अन्त्यमानका पाठ्यक्रम तीन तीन वर्षोंका है। किन्तु आद्यमानमे प्रवेश करनेके पहिले विद्यार्थीको एक वर्ष तक प्रारम्भिक शिक्षा मिलनी चाहिये। तीनो मानोके लिये निम्नलिखित विषय निर्धारित है—

(१) आद्यमान—बँगला, अङ्कगणित, चित्रकारी, वस्तुपाठ और दस्तकारी, अँगरेजी, कहानी और कविता पाठ, विज्ञान और स्वास्थ्य विज्ञान।

(२) मध्यमान—संस्कृत, बँगला, अँगरेजी, इतिहास भूगोल, गणित, विज्ञान और स्वास्थ्य विज्ञान, चित्रकारी और औद्योगिक शिक्षा।

(३) अन्त्यमान—मध्यमानके ही विषय।

दर्शन और इतिहास विषयोंपर गवेषणापूर्ण पुस्तकें लिखवानेके लिये प्रबोधचन्द्र बसु मल्लिक और हेमचन्द्र बसु मल्लिकके नामपर दो गद्दियाँ, करीब करीब परिषद्‌की स्थापनाके समयसे ही कायम है। इन्हीके द्वारा पुस्तकें लिखी जाती है।

कलकत्ता और जादवपुरमें भिन्न भिन्न विषयोंपर विद्वानोंके व्याख्यान करानेके लिये एक अलग विभाग है। इसी विभागके द्वारा उन सब पुस्तकोंका प्रकाशन भी होता है जो उपरोक्त गद्दियों द्वारा तैयार कराई जाती है। अभी तक श्रीकालीप्रसन्नदास गुप्तका 'हिन्दूसमाज विज्ञान' और श्री विनयकुमार सरकारका 'हिन्दू राष्ट्रेर गडन' ये दो पुस्तकें प्रकाशित हुई है। श्रीप्रमथनाथ मुकर्जीकी 'इतिहासेर अभिव्यक्ति' नामक पुस्तककी पहली जिल्द छप रही है। अन्य पुस्तकें लिखी जा रही है।

परिषद्‌के पास एक अच्छा पुस्तकालय है जिसमें आजकल लगभग २१००० रुपयोंकी ६२.० पुस्तकें है।

परिषद्‌ने कृषि-सम्बन्धी शिक्षाकी एक योजना तैयार कर ली है। १ लाख रुपयेकी एक स्थायी निधि भी इसे इसी कार्यके लिये

मिल चुकी है। कलकत्ता कारपोरेशनसे १०० बीघे जमीन और प्राप्त करनेके सम्बन्धमे एक दरख्वास्त दी गई है। जमीन मिल जाने पर कृषि सम्बन्धी शिक्षाका भी प्रबन्ध किया जायगा। आजकल परिषद् उस निधिसे, श्रीनिकेतन-विश्वभारतीके कृषि विभागको और चिन्सुराके कृषि विद्यालयको सहायता दे रही है।

चौदहवाँ अध्याय।

बिहार विद्यापीठ, पटना।

बिहारमे एक राष्ट्रीय कालेज खोलनेका विचार असहयोग आन्दोलन आरम्भ होनेके बहुत पहिलेसे हो किया जा रहा था। सन् १९१७ ईसवीमे चम्पारनकी जाँचके सम्बन्धमे महात्मा गान्धी वहाँ गये थे। उस समय अनेको वकील थोडे दिनोके लिये अपनी अपनी वकालत छोडकर उनके साथ काम करनेके लिये तत्पर हो गये थे। उसी समय इस बातका अनुभव हुआ कि जब स्वाधीनता की लड़ाई दीर्घकाल तक चलने वाली है, तब ऐसे लोगोकी बहुत आवश्यकता है जो स्थायीरूपसे इस कार्यमे योग दे सके। ऐसे कार्यकर्ता राष्ट्रीय कालेजसे ही तैयार हो सकते थे। अतएव इस कार्यके लिये रुपया इकट्ठा किया जाने लगा, और एक कालेज खोलनेके लिये करीब करीब सब तैयारी हो गई। किन्तु रौलेट एक्टके पास होने, सत्याग्रह आरम्भ होने तथा जलियाँवाला बाग-के हत्याकाण्डके कारण, कार्यकर्ताओका ध्यान कुछ कालके लिये

दूसरी ओर बढ़ गया। असहयोग आन्दोलनके चलनेसे राष्ट्रीय कालेजोंकी स्थापनाके लिये उपयुक्त वातावरण तैयार हुआ। पटने मे महाविद्यालयका कार्य तो तारीख १० जनवरी सन् १६२१ को ही आरम्भ होगया। पर इसका विधिपूर्वक उद्घाटन तारीख ६ फ़रवरीको महात्मा गान्धीके द्वारा हुआ। महात्माजीकी राय तथा प्रेरणासे बिहार प्रान्तके सब राष्ट्रीय विद्यालयोको एक सूत्रमे बाँधने तथा उनका नियन्त्रण और पथप्रदर्शन करनेके लिये, बिहार विद्यापीठकी नीव भी उसी दिन डाली गई।

विद्यापीठके पास कोई निधि या सञ्चित कोष नही है। आरम्भसे ही इसका काम चन्देसे चलता आ रहा है। आरम्भमे समय समयपर 'आल इण्डिया कॉग्रेस कमेटी' और प्रान्तीय कॉग्रेस कमेटीसे भी कुछ सहायता मिल जाया करती थी। पटनेमे विद्यापीठके पास ७ बीघे ज़मीन है जो लगभग ८ हजार मे खरीदी गई थी, और जिसपर लगभग २८ हजारकी लागतसे इमारते बनवाई गई है। पटनेके बाहर भी कुछ सज्जनोने खेतीके योग्य ज़मीन दी है, किन्तु अभी तक उन ज़मीनोका ऐसा बन्दोबस्त नही हो सका है कि उनसे विद्यापीठको कुछ आय हो सके। आजकल विद्यापीठका वार्षिक ख़र्च लगभग १२ हजार रुपये है।

आरम्भके दो वर्षोंमें देशकी राजनैतिक हलचलोंके कारण विद्यापीठकी शिक्षासम्बन्धी योजनापर विशेष ध्यान नही दिया जा सका।

अधिकतर समय और शक्ति असहयोग आन्दोलनमें ही खर्च होती रही। सन् १९२३ से शिक्षासम्बन्धी कार्यक्रमको पूरा करनेपर जोर दिया गया। विचार तो यह भी था कि यहाँसे हिन्दी भाषामें उच्च कोटिके ग्रन्थ भी प्रकाशित किये जायँ। पर अर्थाभावसे यह काम आजतक शुरू न किया जा सका। आरम्भमें साधारण स्कूल और कालेजके साथ साथ विद्यापीठमें एक औद्योगिक स्कूल भी खोला गया। उद्देश्य यह था कि यहाँसे निकलनेवाले विद्यार्थी अपनी जीविकाके सम्बन्धमें स्वावलम्बी हो सकें। पर इस ओर विद्यार्थियोंका झुकाव न होने एवम् अर्थाभावके कारण यह स्कूल बन्द कर देना पड़ा। इतने दिनोंके अनुभव एवम् देशकी आवश्यकताओंका खयाल करके विद्यापीठके कार्यक्रममें कई तबदीलियाँ की गईं और पिछले दो वर्षोंसे सुचारुरूपसे नये सङ्गठनके द्वारा काम हो रहा है। सङ्कल्पपत्रमें विद्यापीठके उद्देश्य इस प्रकार बतलाये गये हैं—

(क) भारतकी विशिष्ट संस्कृति और विद्याओंका पुनरुद्धार और विकास करना।

(ख) विश्वके प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञानकी वृद्धि और उनका प्रचार करना।

(ग) भारतकी राष्ट्रीय परिस्थिति और जीवनके अनुकूल शिक्षा प्रदान करना।

(घ) भारतकी सर्वाङ्गीण उन्नतिके लिये योग्य कार्य्यकर्ताओंका सङ्गठन करना तथा योग्य सेवकोंको तैयार करना।

(ङ) लोकसेवा करना।

(च) विश्व बन्धुत्वके भावोंके प्रचारमे सहायता प्रदान करना।

इन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये विद्यापीठ निम्नलिखित कार्य्य करेगा—

(क) उपर्युक्त उद्देश्योंको माननेवाली ऐसी संस्थाओंका स्थापन करना, कराना, सम्मिलित करना, चलाना और सहायता देना जो स्वावलम्बनके सिद्धान्तपर प्रतिष्ठित होकर किसी समय किसी गवर्नमेण्टसे सहायता न ले और न उसके अधीन हो।

(ख) योग्य विद्यार्थियोंको उपाधि प्रदान करना तथा प्रमाण-पत्र देना—

(ङ) छात्रावास, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, व्यायामशाला, शिल्पागार कृषिक्षेत्र और औषधालय आदिका स्थापन और सञ्चालन करना।

(च) उपर्युक्त उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये आवश्यक ग्रन्थोंकी रचना कराना और उनका प्रकाशन करना।

इस संस्थाकी विशेषताएँ इस प्रकार गिनाई जा सकती है—

(१) शिक्षाका माध्यम मातृभाषा है—

(२) इस बातका प्रयत्न किया जाता है कि लडकोंके मस्तिष्क

व्यर्थ और अनावश्यक बातोंसे न भर जायँ, वार्तालाप जिज्ञासा, निरीक्षण आदि उपायोसे ही उनका मानस विकास और उनकी ज्ञानवृद्धि हो।

(३) चरित्र गठनपर अधिक ध्यान दिया जाता है और उन्हे स्वावलम्बी होनेकी शिक्षा दी जाती है।

(४) विद्यार्थियोको हर तरहसे भविष्यमे राष्ट्रके सच्चे सिपाही बनानेकी कोशिश की जाती है।

(५) इस बातका प्रयत्न किया जाता है कि सब विद्यालय आश्रमके ढँगपर चलाये जायँ, शिक्षक और छात्र एक साथ रहें जिससे शिक्षक अपने आचरणके उदाहरणसे विद्यार्थियोके चरित्र निर्माणपर प्रभाव डाल सकें।

विद्यापीठका पाठ्यक्रम तीन भागोमे बांटा जा सकता है—प्रारम्भिक विद्यालय, माध्यमिक विद्यालय और महाविद्यालय। प्रारम्भिक और माध्यमिक विद्यालयोंकी शिक्षा चार चार वर्षोंमे समाप्त होती है और महाविद्यालयकी तीन वर्षोंमे। प्रारम्भिक विद्यालयमे हिन्दी, गणित, चित्रकारी, दस्तकारी, भूगोल और इतिहास—ये विषय पढाये जाते है। इनके सिवाय देशभ्रमण, साधारण कृषिकार्य और प्रकृतिनिरीक्षणके द्वारा विद्यार्थियोकी ज्ञानवृद्धि करनेका प्रयत्न किया जाता है। माध्यमिक विद्यालयकी ४ श्रेणियोकी शिक्षा दो भागोंमे विभक्त है। प्रथम दो श्रेणियोंमें

प्राथमिक विद्यालयके सब विषयोंके अतिरिक्त अँगरेजी अनिवार्य-रूपसे और सस्कृत या अरबीमेसे कोई एक विषय लेना पडता है। अन्तिम दो श्रेणियोकी परीक्षा प्रवेशिका परीक्षा कहलाती है और उसके लिये निम्नलिखित विषयोकी शिक्षा अनिवार्य है—हिन्दी, अँगरेजी, भारतीय शासन, राजनीति और अर्थनोति, तथा संस्कृत। इनके अतिरिक्त नीचे लिखे विषयोमेसे कोई एक लेना होता है—गणित भूगोल, कृषिशास्त्र, व्यापार और बहीखाता, और विज्ञान।

महाविद्यालय दो खण्डोंमे विभक्त है। एकके द्वारा राष्ट्रीय विद्यालयोंके लिये अध्यापक तैयार किये जाते है और दूसरेके द्वारा ग्राम सङ्गठनके लिये कार्यकर्ता। हिन्दी और अँगरेजीकी शिक्षा दोनो ही विभागोंमे तीनो वर्षों तक अनिवार्य रूपसे दी जाती है। इसके अतिरिक्त शिक्षक विभागके विद्यार्थी गणित, संस्कृत अथवा इतिहास अर्थशास्त्र राजनीति इन विषयोंमेंसे कोई एक विषय लेते है। ग्राम सङ्गठन विभागके विद्यार्थियोको अनिवार्य रूपसे इतिहास अर्थ शास्त्र और राजनीति ही लेना पडता है। इनके लिये शिक्षक विभाग-की अपेक्षा अर्थशास्त्रका कोर्स कुछ कुछ भारी और इतिहासका कुछ हलका होता है। दोनों ही विभागोके विद्यार्थी अध्यापकोके साथ प्रतिवर्ष दो महीनेके लिये गाँवोमे भेजे जाते है। उद्देश्य यह है कि वे ग्राम्यजीवनका परिचय प्राप्त करें और गाँववालोके जीवनमे कुछ सुधार करनेका प्रयत्न करे।

विद्यार्थियोसे शिक्षा अथवा छात्रावासमे रहनेके लिये कोई शुल्क नही लिया जाता। छात्रवासके भोजनालयका खर्च लगभग ८ रुपये मासिक पडता है। जात पॉत या छुआछूतका भेदभाव नही माना जाता। कुछ योग्य विद्यार्थियोको छात्रवृत्ति भी दी जाती है। किन्तु यह छात्रवृत्ति महाविद्यालयके विद्यार्थीको इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करनेपर ही मिलती है कि शिक्षा समाप्त करनेपर यदि विद्यापीठ चाहे तो तीन बर्षो तक उसे निर्वाह मात्रके लिये २५ रुपये मासिक देकर किसी काममे लगा सकेगा। विद्यार्थियोंके लिये शुद्ध खादीके वस्त्र पहिनना और प्रतिवर्ष अपने हाथका कता हुआ २० हजार गज सूत विद्यापीठको देना अनिवार्य है।

प्रत्यक्ष रूपसे विद्यापीठके सञ्चालनमें पटनेमे एक प्रारम्भिक और माध्यमिक विद्यालय तथा एक महाविद्यालय है। विद्यार्थियोंकी सख्या शेषोक्तमे ११ और प्रथमोक्तमे ५० है। इनके अतिरिक्त बिहार प्रान्तके २१ राष्ट्रीय विद्यालय भी विद्यापीठसे सम्बद्ध है, जिन सबके विद्यार्थियोकी सख्या सन् १९२९ मे लगभग १२५० थी। सन् १९२२ के जून महीनेमे बिहार प्रान्तमें राष्ट्रीय हाइस्कूलोकी संख्या ४१ और प्राइमरी तथा मिडिल स्कूलोकी लगभग ६०० थी जिनमें १७००० विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे।

विद्यापीठने एक आयुर्वेद विभाग भी खोलनेका निश्चय किया है। भारत राष्ट्रके आधार, ग्रामोमे औषधोपचारकी बडी कमी है।

जायगा, विद्यालय विभाग भी खोल दिया जायगा। बाबू मुसाहब लालकी दयालुताकी स्मृति बनाये रखनेके लिये विद्यापीठने एक मुफ्त दवाखानेका भी प्रबन्ध किया है और उक्त बाबू साहबके नाम-पर उसका नाम श्रीमुसाहबलाल मुफ्त दवाखाना रखा है। इसमें आने वाले सब रोगियोंको मुफ्त दवा दी जाती है।

सन् १९२९ के आरम्भ तक विद्यापीठसे ६२ स्नातक निकल चुके थे। इनमेंसे १४ के सम्बन्धमे निश्चित रूपसे नही मालूम कि वे इस समय किस कार्यमें लगे है। शेष ४८ मे से १९ राष्ट्रीय विद्या-लयोंमें अध्यापन कार्य कर रहे है, २ विशेष अध्ययनमें लगे है, ८ पत्र सम्पादनका कार्य कर रहे है, ५ खादी कार्यमें और १ ग्राम सङ्गठनके काममें लगे है, १२ कृषि व्यापार आदि स्वतंत्र पेशोंसे जीविकोपार्जन करते है और १ किसी अन्य सस्थाकी नौकरीमे है।

पन्द्रहवाँ अध्याय।

महाविद्यालय, ज्वालापुर।

इस महाविद्यालयकी स्थापना सवत् १९६४ विक्रमीमे हुई थी। ब्रह्मचर्याश्रमकी प्रणालीको पुनरुज्जीवित करना और महर्षि दयानन्द सरस्वतीकी निर्दिष्ट की हुई रीतिसे आर्यभाषा और सस्कृत आदि भाषाओंका नि:शुल्क अध्ययन कराना इस महाविद्यालयका ध्येय है। यह किसी आर्यसमाजके आधीन नही है वरन् इसके प्रबन्धके लिये एक अलग महासभा है। विद्यार्थियोसे न तो शिक्षाके लिये ही कोई शुल्क लिया जाता है और न उनके भरणपोषणके लिये ही उनसे किसी प्रकारका व्यय लिया जाता है। किन्तु 'स्नातक व उनके कर्तव्य'-सम्बन्धी नियमोमे लिखा गया है कि 'प्रत्येक स्नातकका कर्तव्य है कि स्नातक होनेके पश्चात् कमसे कम दो वर्ष महाविद्यालयकी सेवा करे। उसकी सर्व दशाओपर विचार कर प्रबन्ध सभा उसके निर्वाहमात्रका प्रबन्ध करेगी।' महाविद्यालयमें प्रविष्ट होनेके उपरान्त किसी अत्यावश्यक कार्यके बिना ब्रह्मचारियोको घर जाने-

की अनुमति नही मिलती। महाविद्यालयमें केवल द्विज कहलानेवाली जातियोके बालक ही प्रविष्ट हो सकते है, शूद्रो और अछूतोंके नहीं।

इस महाविद्यालयका पाठ्यक्रम १२ वर्षोंका रक्खा गया है। प्रथम पॉच वर्षोंमें वेदपाठ, सस्कृत-साहित्य, धर्मशिक्षा, गणित, आर्य भाषा (हिन्दी) तथा इतिहास और भूगोलकी शिक्षा दी जाती है। इतिहास भूगोलकी शिक्षा द्वितीय श्रेणीसे आरम्भ होती है। छठवीसे दशवी श्रेणियो तक वेदपाठ, संस्कृत साहित्य और व्याकरण, दर्शन और अगरेजीकी पढाई होती है। इसके अतिरिक्त छठवी तक गणित, सातवी तक भूगोल और इतिहास, नवीतक धर्मशिक्षा और हिन्दी तथा दसवीमे उपनिषद्की पढाई भी होती है। ग्यारहवी और बारहवी श्रेणियोमें वेद, सस्कृत साहित्य, उपनिषद और दर्शन शास्त्रकी शिक्षा दी जाती है। इस महाविद्यालयके स्नातक तीन प्रकारके होते है—विद्या स्नातक, व्रत स्नातक और विद्याव्रत स्नातक। कौन ब्रह्मचारी किस कोटिका है इसका निर्णय महाविद्यालयकी विद्यासभा करती है।

सन् १६२६ के आरम्भमें महाविद्यालयमे विद्यार्थियोको सख्या १६० थी। आज तक ७३ स्नातक निकल चुके है। इनमेसे ८ विशेष अध्ययनमें लगे है, ३० अध्यापक है, ४ महोपदेशक है, ७ सार्वजनिक सामाजिक कार्योंमें लगे है और शेष २४ भिन्न भिन्न स्वतंत्र पेशोसे जीविकोपार्जन कर रहे है।

सोलहवाँ अध्याय।

विश्वभारती, शान्तिनिकेतन।

विश्वभारतीको आज एशियाकी समस्त सभ्यताओंका केन्द्र और पूर्व और पश्चिमका मिलनमन्दिर बनानेका प्रयत्न किया जा रहा है। किन्तु इसका आरम्भ एक छोटे विद्यालयसे हुआ था। जो स्थान आज शान्तिनिकेतनके नामसे प्रसिद्ध है वह पहले एक ऊसर जमीन थी। एक दिन महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगौर उधरसे निकले। दो सप्तपर्णी वृक्षोंकी शोभा देखकर उनका चित्त इतना प्रसन्न हुआ कि उन्हींके नीचे अपनी रावटी लगाकर कुछ समयतक उपासना करते रहे। ये दोनों वृक्ष आजतक मौजूद है। जिस स्थानपर बैठकर महर्षि उपासना कर रहे थे वहाँ एक सङ्गमरमरका चबूतरा बनवा दिया गया है और उसपर महर्षिकी उपासनाका प्रिय मन्त्र

तिनि
आमार प्राणेर आराम
मनेर आनन्द
आत्मार शान्ति

अङ्कित है। इस स्थानने महर्षिको इतना आकर्षित किया कि वहाँ उन्होंने बाग़ लगवाए, और एक मकान और मन्दिर बनवाया। आगे चलकर उसके साथ छः हजार वार्षिक आयकी सम्पत्ति लगाकर एक आश्रमके रूपमे उसका ट्रस्ट कर दिया। तबसे यह धर्म और जातिका भेदभाव न मानते हुए ईश्वरकी उपासना करनेवालो के लिये शान्तिनिकेतन हो गया। इसके ३० बरस बाद दिसम्बर सन् १६०१ ईसवीमे कविवर रवीन्द्रनाथने यहाँ एक विद्यालयकी स्थापना की। देश मे उस समय जो शिक्षाप्रणाली प्रचलित थी—और जो आज भी बहुत कुछ उसी रूपमे प्रचलित है—उसके घातक परिणाम उनके चित्तको बहुत दिनोंसे व्यग्र कर रहे थे। विद्यालयोकी अस्वाभाविक पद्धति बालकोकी शक्तिको प्रस्फुटित करनेके बजाय उन्हे कुण्ठित करती है। उनके भीतर ज्ञानकी जो पिपासा है, उसे तृप्त करनेके बजाय उनके ऊपर ऐसी चीजे लादी जाती हैं जिनके लिये उनके भीतर कोई रुचि ही नही है। अध्यापनके विषयोंको विद्यार्थी चावके साथ ग्रहण करनेके बजाय उनसे भागते रहते है। अध्यापकको देखकर ही उनपर एक आतङ्क सा छा जाता है। इसके अतिरिक्त शिक्षाका दैनिक जीवनसे तो कोई सम्बन्ध ही नही है। शिक्षाका माध्यम है विदेशी भाषा और उसमें अपने साहित्य अथवा अपनी परम्पराको कोई स्थान ही नही मिलने पाता। इन सारी बुराइयोको दूर करते हुए प्राचीन भारतीय प्रणालीसे

वर्तमान परिस्थितिके अनुकूल शिक्षा देनेके अभिप्रायसे उन्होने यह विद्यालय खोला।

इसके बाद बङ्गभङ्गके कारण राजनैतिक आन्दोलनने जोर पकडा। राष्ट्रीय विद्यालयोकी भी स्थापना होने लगी। कविवर स्वयम् तो इस आन्दोलनमे भाग ले रहे थे, पर शान्तिनिकेतनको उससे बिलकुल अलग रक्खा। बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षापरिषद्की स्थापना होनेपर शान्तिनिकेतनको उससे सम्बद्ध करनेकी भी चर्चा चली थी, पर कुछ हुआ नही।

धीरे धीरे विद्यालय उन्नति करता गया। सन् १९१८ मे कविवरने शान्तिनिकेतनमे विद्यालयके साथ साथ एक ऐसी सस्था भी स्थापित करना चाहा जो पूर्वीय देशोकी सभ्यताका केन्द्र हो। सन् १९१९ से वैदिक साहित्य, प्राचीन सस्कृत साहित्य, अरबी, बौद्ध साहित्य, पाली प्राकृत आदिके अध्ययनकी व्यवस्था की गई। आगे चलकर तिब्बती और चीनी भाषाओके अध्ययनका भी प्रबन्ध किया गया। साहित्यिक शिक्षाके साथ साथ चित्रकला और सङ्गीत-कलाकी भी शिक्षाका प्रबन्ध किया गया। आगे चलकर सन् १९२०—२१ मे यूरोपके देशोंका भ्रमण करके उन्हे एक ऐसा स्थल तैयार करनेकी भी आवश्यकता प्रतीत हुई जो पूर्व और पश्चिमका मिलन स्थल हो। इन सब उद्देश्योंको लेकर २२ दिसम्बर सन् १९२१ ईसवीको विश्वभारतीकी स्थापना हुई।

ग्राम्यजीवनमे सुधार करनेके उद्देश्यसे १९१३ ईसवीमे ही

शान्तिनिकेतनसे लगभग डेढ मीलकी दूरीपर सुरूल नामक स्थान-मे ८० बीघे जमीन लेकर काम शुरू किया गया था। सन् १६२२ से अधिक आर्थिक सहायता मिलनेपर यह काम और भी अधिक बढाया गया। इन सब कार्योंका केन्द्र श्रीनिकेतन कहलाता है। विश्वभारतीके मुख्य उद्देश्योमेसे कुछ ये है—

१ मानव चित्तका अनुशीलन इस विचारसे करना जिससे मालूम हो कि मनुष्यने विविध दृष्टियोसे सत्यके विभिन्न रूपोका साक्षात्कार कैसे किया।

२ अनुशीलन और अनुसन्धान द्वारा, पूर्वकी विविध सभ्य-ताओमे उनकी मौलिक एकताके आधारपर, सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित करना।

३ एशियाके जीवन तथा विचारकी इस एकताको दृष्टिसे पाश्चात्यका निरीक्षण करना।

४ अध्ययनके परस्पर समागम द्वारा प्राच्य और पाश्चा-त्यके मिलनकी अनुभूतिका प्रयत्न करना और इस प्रकार दोनो अर्धगोलोके बीच विचारोके स्वच्छन्द आदान-प्रतिदानकी व्यवस्था कर, अन्ततः संसार शान्ति-की मौलिक अवस्थाओको सुदृढ करना।

५ और इस आदर्शको सामने रखकर शान्तिनिकेतनमे संस्कृतिका एक ऐसा केन्द्र प्रतिष्ठित करना जहाँ पाश्चा-

त्य संस्कृतिके परिशीलनके साथ साथ हिन्दू, बौद्ध, जैन, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई तथा अन्य संस्कृतियोंके धर्म, साहित्य, इतिहास, विज्ञान और कलाका अध्ययन और अन्वेषण उस बाहरी सादगीके साथ किया जावे जो सच्ची आध्यात्मिक अनुभूतिके लिये आवश्यक है। इस अध्ययन और अन्वेषणके कार्यके लिये यह भी आवश्यक है कि प्राच्य और पाश्चात्य देशोंके विद्वान् और विचारकोंके बीच मैत्री, सहयोग और सरल भाव हो तथा वे जातिगत, राष्ट्रगत, सम्प्रदायगत या वर्णगत विरोध और द्वेषसे मुक्त हों और इस कार्यको एक परमेश्वरके नामपर करें जो शान्त, शिव और अद्वैत है।

विश्वभारतीका कार्य शान्तिनिकेतन और श्रीनिकेतन नामक दो संस्थाओंके बीच बँटा हुआ है। शान्तिनिकेतनके अन्तर्गत विद्याभवन, शिक्षाविभाग और कलाभवन है। श्रीनिकेतनमें कृषि और ग्रामसुधार सम्बन्धी प्रयोग और शिक्षाशालाएँ है। इनके अतिरिक्त कलकत्तेमें इसका एक छापाखाना, एक त्रैमासिक पत्रिका और एक पुस्तक प्रकाशन विभाग भी है।

विद्याभवनमे अच्छे अच्छे विद्वानों द्वारा पुरातत्व और खोज सम्बन्धी काम होते है। संस्कृत और प्राकृत भाषाओंमे खोज सम्बन्धी ग्रन्थ प्रकाशित हुए है। पूनेके भाण्डारकर इंस्टिट्यूटकी सहयो-

गितासे महाभारतका एक संस्करण प्रकाशित करनेका प्रयत्न हो रहा है। इसके अतिरिक्त चीनी और तिब्बती भाषाओंके द्वारा सस्कृत और प्राकृतके कई प्राचीन ग्रन्थोका पता लगाया जा रहा है। सस्कृतके अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ अब भारतवर्षमे प्राप्य नही है, किन्तु तिब्बती और चीनी भाषाओमे उनके अनुवाद अबतक मौजूद है। इस विभागके द्वारा इन ग्रन्थोके पुनरुद्धारका प्रयत्न किया जा रहा है। इस विभागमें जिन विषयोके खोज और विशेष अध्ययनका कार्य होता है उनमेसे कुछ ये है—वैदिक और प्राचीन सस्कृत साहित्य, हिन्दू, जेन और बौद्ध दर्शन, इण्डोआर्यन भाषाविज्ञान, अवेस्ता, पाली, प्राकृत, मध्यकालीन हिन्दूसम्प्रदाय, धर्मोका तुलनात्मक अध्ययन, फारसी, अरबी और इसलाम धर्म। इस विभागमे इङ्गलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, नार्वे, इटली, हालैण्ड, जेकोस्लोवेकिया, आस्ट्रिया, जावा और चीन आदि देशोंके विद्वान् आते रहते है।

शिक्षा विभागके अन्तर्गत स्कूल और कालेज है। इनका पाठ्यक्रम कलकत्ता-विश्वविद्यालयके अनुसार है। किन्तु चित्रकला, सङ्गीत और दस्तकारीकी भी शिक्षा दी जाती है। स्कूलकी प्रथम श्रेणीसे कालेजके बी० ए० क्लास तककी पढाई होती है। ये स्कूल और कालेज कलकत्ता विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध तो नही है किन्तु स्वीकृत है। यहाँके विद्यार्थी उक्त विश्वविद्यालयकी परीक्षाओमे बैठ सकते है। अधिकतर विद्यार्थी उसीके लिये तैयार किये जाते है। विश्वभारती-

की ओरसे प्रमाणपत्र देनेके लिये भी परीक्षाएँ होती है। इन परीक्षाओका पाठ्यक्रम भी कलकत्ता विश्वविद्यालयके ही समान है। यहाँ सह शिक्षणकी पद्धति है। लडके और लडकियाँ आरम्भिक श्रेणीसे अन्तिम श्रेणी तक साथ साथ पढ़ते है। वर्षके अधिकतर समयमे—जब कि वर्षा आदिकी असुविधा न हो कक्षाएँ वृक्षोंके नीचे ही होती है। अध्यापक और विद्यार्थी अपना अपना आसन अपने पास रखते है। बीचमे अध्यापक, उनकी एक ओर लडकियाँ और दूसरी ओर लडके बैठते है। साधारणतया एक कक्षामें १५ से अधिक विद्यार्थी नही रहने दिये जाते। प्रत्येक विद्यार्थीके लिये चित्रकारीकी शिक्षा आवश्यक है। जिनकी इच्छा हो वे सङ्गीत भी सीख सकते है। स्कूलके क्लासोंमे दस्तकारीकी शिक्षा भी आवश्यक है। पहिले तो उन्हे घरु औजारो और उन्हे इस्तेमाल करनेक तरीकोंसे परिचित कराया जाता है। बादको बढईगीरी और बुनाई-की भी शिक्षा दी जाती है। विशेष रुचि रखने वाले विद्यार्थियोंको जिल्दबन्दी और लकडीका बारीक काम भी सिखलाया जाता है। लड-कियोके लिये गार्हस्थ्य विज्ञान, सीना, पिरोना, क़सीदा, बाग़वानी और भोजन बनानेकी शिक्षाका भी प्रबन्ध है। बचपनसे ही प्रकृति निरीक्षणपर विशेष जोर दिया जाता है। कुछ बडे होनेपर इस बातकी भी कोशिश को जाती है कि वे ग्राम्य-जीवनसे परिचित हों। समीपके एक गाँवमे विद्यार्थियोंने एक रात्रि पाठशाला खोल रक्खी है। प्रति

दिन दो लडके वहाँ पढाने जाते है। सप्ताहमे दो दिन लडकियाँ सीना पिरोना आदि सिखाने जाती है। कालेजके विद्यार्थियोसे यह आशा की जाती है कि ससारके भिन्न भिन्न देशोमे साधारण जनताकी सामाजिक अवस्था सुधारनेके जितने आन्दोलन चल रहे हैं उन सबका उन्हे ज्ञान रहे। उनसे अन्ताराष्ट्रिय सस्थाओके कार्योंका अध्ययन करनेकी भी आशा की जाती है। कालेजमे इतिहास पढाते समय इस बातका ध्यान रक्खा जाता है कि विद्यार्थियोंको केवल राजनैतिक घटनाओ और राजवंशोके ही इतिहासका ज्ञान न हो बरन् वे प्रत्येक युगकी सभ्यता और उसके आदर्शोंको समझ सकें। भारतवर्षका ससारके अन्य देशोसे क्या सम्बन्ध रहा है और संसारकी सभ्यताके निर्माणमे भारतवर्षका कितना हाथ रहा है—यह भी अध्ययनके लिये एक खास विषय रक्खा गया है।

क्लासोकी पढाईकी अपेक्षा आश्रमके जीवनको अधिक महत्व दिया गया है। लडकियोंका छात्रावास नारीभवन कलहाता है। स्कूलके १२ वर्षसे बडी उम्रके विद्यार्थी तथा कालेजके विद्यार्थी एक साथ रहते है। स्कूलमे पढने वाले १२ बरस या इससे कम उम्रके लडकोका छात्रावास अलग है। छोटे बच्चोंके दैनिक जीवनका नियमन करनेपर विशेष जोर दिया जाता है। आरम्भसे अन्त तक सभी श्रेणियोके विद्यार्थियोंके लिये नियम भङ्ग करनेपर अधिकारियोंकी ओरसे दण्ड दिये जानेकी व्यवस्था नही है। विद्यार्थियोकी सभाएँ

ही इसका प्रबन्ध करती है। आश्रम समितिके नामसे विद्यार्थियाके प्रतिनिधियोंकी एक समिति है। यह समिति प्रत्येक छात्रावासके लिये दो तीन विद्यार्थियोंकी एक विचार सभा नियत कर देती है। जब कोई विद्यार्थी नियम भङ्ग करता है तब उस छात्रावासका नायक उसे विचार सभाके सम्मुख उपस्थित करता है और वही उसका न्याय होता है। इसके अतिरिक्त लडके और लडकियोंकी सम्मिलित साहित्य सभाएँ है। ये सभाएँ आदि, मध्य और उच्च श्रेणियोकी अलग अलग है। इनमे विद्यार्थीगण कविता निबन्ध आदिका पाठ तथा नाटकका खेल करते है। आश्रममे दो भोजनालय है—एक नारीभवनके लिये और दूसरा लडकोके लिये। १२ वर्षसे कम उम्रके लडके नारी भवनमे ही भोजन करते है। इस भोजनालयका प्रबन्ध लडकियोकी एक कमेटीके द्वारा होता है। दूसरे भोजनालयका प्रबन्ध एक वैतनिक मैनेजर और अध्यापकों तथा विद्यार्थियाकी एक कमेटीके द्वारा होता है। दोनो ही भोजनालयोके लिये प्रति दिन दो दो दैनिक मैनेजर भी चुने जाते है—नारीभवनके लिये लडकियोमेसे और दूसरे भोजनालयके लिये लडकोंमेसे। किन्तु १२ वर्षसे कम उम्रके या कालेजके लडके और लडकियाँ इस कामके लिये नही लिये जाते। लडकोके भोजनालयके एक दैनिक मैनेजरका एक काम यह भी होना है कि आश्रममें जो अतिथि आये हों उन्हे आश्रमको सब संस्थाएँ और वस्तुएँ दिखलावे। बारी बारीसे सभी लडकोको यह

काम करना पडता है। उन्हें आश्रमकी सस्थाओ और वस्तुओका साधारणतया अच्छा ज्ञान रहता है। प्रत्येक पूर्णमासी और अमावस्याको लडकियॉ स्वयम् भोजन बनाकर समस्त आश्रमवासियोको परोसती है।

प्रति दिन प्रातःकाल वैतालिकके बाद कार्यारम्भ होता है। सबेरे ७ बजे से १० बजे तक और तीसरे पहर २ बजे से ४ बजे तक क्लास लगते है। सन्ध्या समय खेल आदि होते है। व्यायाम और खेलके लिये कुश्ती, लाठी, तलवार, फुटबाल, बैडमिण्टन आदिका प्रबन्ध है। लाठी और तलवार लडकियॉ भी सीखती है। रात्रिको ६ बजेके बाद फिर वैतालिक होता है। लडके और लडकियॉ उपयुक्त गीत गाते हुए छात्रावासोंके पाससे निकलते है। इसके बाद सोनेका समय होता है।

मासिक शुल्क आरम्भसे अन्ततककी सभी श्रेणियोके लडकोसे २५ रुपये और लडकियोसे २३ रुपये लिये जाते है। इसमे शिक्षाशुल्क, छात्रावासका किराया और भोजनालयका खर्च सब आ जाते है।

शान्तिनिकेतनके पुस्तकालयमे अँगरेजी, फ्रेञ्च, जरमन और इटालियन भाषाओंके ग्रन्थोके अतिरिक्त सस्कृत, चीनी और तिब्बती तथा भारतीय भाषाओंके लगभग ३४००० ग्रन्थ है। हस्तलिखित पुस्तकोकी सख्या ३००० से अधिक है।

बहुत उन्नति की है। इसका एक अलग पुस्तकालय और सग्रहालय है—जिसमें भारतवर्षके अतिरिक्त अन्य देशोकी भी वस्तुएँ है। यहाँ बहुत ही उच्च कोटिकी चित्रकला सम्बन्धी शिक्षाका प्रबन्ध है। रवि बाबूने लगभग २५०० बँगला गीतोका स्वर निश्चित किया है। कलाभवनका सङ्गीत विभाग इस प्रणालीसे सङ्गीत शिक्षा देनेका एक अच्छा केन्द्र है। नृत्यकलाकी भी शिक्षा दी जाती है।

इन सब संस्थाओंके अतिरिक्त शान्तिनिकेतनमे अपनी सहकारी दूकान, बिजलीका पावर-हाउस अस्पताल और अतिथिशाला है।

विश्वभारतीका दूसरा अङ्ग है श्रीनिकेतन। इसके मुख्य उद्देश्य ये है—

(१) ग्रामवासियोके जीवनसे सम्बन्ध रखने वाली बातोमें दिलचस्पी लेते हुए और उनकी समस्याओको हल करनेका पूरा प्रयत्न करते हुए उनसे सच्ची मित्रता स्थापित करना।

(२) ऐसे स्कूल और प्रयोगशाला खोलना जहाँ गाँवोकी समस्याओंका अध्ययन किया जाय और कृषिके सम्बन्धमे नये नये प्रयोग किये जायँ।

(३) स्कूलके अध्ययन और प्रयोगशालाके प्रयोगोसे जो ज्ञान और अनुभव प्राप्त हो उनके द्वारा ग्रामवासियोंकी सफाई स्वास्थ्य, कृषि आदि सम्बन्धी अवस्थाओंका सुधार करना।

यहाँका कार्य कई भागोमें बँटा हुआ है—जैसे ग्रामसुधार, कृषि, उद्योग, शिक्षा आदि। ग्रामसुधार विभागके द्वारा गाँव वालोके लाभ और उनकी सेवाके लिये कई प्रकारके काम किये जाते है—जैसे सहकारी सस्थाएँ स्थापित करना, रोगनिवारणका प्रबन्ध करना, रात्रि पाठशालाएँ और कन्या पाठशालाएँ चलाना, गाँवोमे व्रती बालकोका (बालचर मण्डलके समान) सङ्गठन करना, गाँव वालोको सामाजिक सेवाके कार्योंकी शिक्षा देना, दाइयोको शिक्षा देना और अकाल तथा आकस्मिक बीमारियोके समय गाँव वालोकी सहायता करना। कृषि विभागके द्वारा कृषि और उससे सम्बन्ध रखने वाले कार्योंके लिये प्रयोग शालाएँ और डेरी आदि खोले गये है। इनमे ऐसे प्रयोग किये जाते है जिनसे लाभ उठाकर गाँव वाले अपनी कृषिका सुधार कर सकें। औद्योगिक विभागमे इसी उद्देश्यसे चमडेका एक कारखाना खोला गया है। बुनाईका भी काम होता है। शिक्षा विभागमे लडके और लडकियोकी पाठशालाओके अतिरिक्त बुनाई, खेती, बढईगीरी, चमडेका काम और ग्रामसुधारसे सम्बन्ध रखने वाले विषयोकी शिक्षाका प्रबन्ध है।

सत्रहवाँ अध्याय।

श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी-भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ, पूना।

आचार्य कर्वेने महाराष्ट्रमें स्त्रीशिक्षा-प्रचारका प्रयत्न सन् १८९६ ईसवीसे ही आरम्भ किया था। और यद्यपि अपने प्रयत्नोंमे उन्हे काफी सफलता मिलती जा रही थी, तो भी इस मार्गमें आनेवाली समस्त कठिनाइयोंका उन्हें अच्छा अनुभव हो रहा था। उन्होने देखा कि एक तो सभी देशोंमें लडकियोंको इतना समय नही मिलता कि लडकोंके लिये निश्चित पाठ्यक्रमको पूरा कर सके, दूसरे भारतवर्षकी वर्तमान परिस्थितिमें सामाजिक रूढियोंके कारण यहाँकी लडकियोंके मार्गमे और भी अधिक कठिनाइयाँ है। इसके सिवाय विदेशी भाषाके माध्यम द्वारा शिक्षा दिये जानेकी विचित्र प्रणाली भी यहाँ प्रचलित है। मुमकिन है कि शुरू शुरूमे इस प्रणालीकी आवश्यकता रही हो, पर यदि स्त्रियोंमें शिक्षाका प्रचार करना है तो इस अस्वाभाविक रीतिको तो छोडना ही पडेगा। ऐसा किये बिना स्त्री-

पुरुष या भाईबहनके बीचका मानसिक वैषम्य दूर नही हो सकता। लडके लडकियोके सहशिक्षणको प्रणाली, मुमकिन है कि एक आदर्श प्रणाली हो, किन्तु उस आदर्शपर पहुँचनेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि जबतक विषमता बहुत अधिक है तबतक उसे न बरता जाय। ये बातें उनके मनमे आ ही रही थी कि श्री शिवप्रसाद गुप्तने (जो कि उस समय विदेशयात्रामे थे) जापानसे वहाँके स्त्री विश्वविद्यालयका द्वादश वार्षिक रिपोर्ट इनके पास भेजा। उसमे भी इन्ही विचारोका समर्थन था। आचार्य कर्वे कहते हैं कि 'उसे पढते ही मेरे मनमे माना विद्युत सञ्चारसा हो गया। मेरा विश्वास हो गया कि यदि भारतवर्षमे स्त्री-शिक्षाकी उन्नति करनी है तो हमे अपने जापानी भाइयोंका ही अनुकरण करना चाहिये।' उक्त रिपोर्टमे स्त्रीशिक्षाके सम्बन्धमे तीन सिद्धान्तोपर विशेष जोर दिया गया था—पहला यह कि स्त्रियाँ भी मनुष्य है और उन्हें ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिये जिससे वे भला बुरा, न्याय अन्याय, योग्य अयोग्य समझ सकें और उनमे ऐसा आत्मविश्वास उत्पन्न हो कि प्रसङ्ग पडनेपर धैर्यसे स्वावलम्बन पूर्वक अपना जीवन बिता सके, दूसरा यह कि उन्हे ऐसी शिक्षा दी जावे जिससे वे स्त्री जाति विषयक निसर्गदत्त कर्त्तव्योंको भलीभाँति पूरा कर सके अर्थात् सुगृहिणी और सुमाताएँ बन सकें, और तीसरा यह कि स्त्रियाँ भी राष्ट्रकी निर्माता है, और उन्हें ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिये जिससे उनके

मनमे राष्ट्रीय भावनाएँ जागृत हों। कुछ राष्ट्रीय कर्तव्य स्त्रियापर ही निर्भर है। जैसे कन्याओंको सुशिक्षित करने और प्रौढा स्त्रियोंमे आधुनिक राष्ट्रीय भावनाओंके बीज बोनेका काम स्त्रियाँही कर सकेंगी। इसी प्रकार बच्चो और स्त्रियोंकी चिकित्सा भी उन्हें ही करनी चाहिये। सन्ततिके मनमे राष्ट्रीय भावनाओंका बीजारोप करना माताका आदि कर्तव्य है, पर जबतक उसीके मनमे ये भावनाएँ न हो तबतक इस पवित्र कर्तव्यको वह कैसे पूरा कर सकती है। इन्ही सिद्धान्तोके आधारपर सन् १६०० ईसवीमे उक्त जापानी स्त्री विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई थी। १२ वर्षोंके भीतर वहाँसे १३०० महिलाएँ उपाधि प्राप्त करके निकली। तीस पैतीस वर्षसे अधिक उम्रकी स्त्रियोको भी पाठशालाओंमे जानेका उत्साह होने लगा। फल यह हुआ कि सन् १६०० ईसवीमें जहाँ लडकियोकी शिक्षाके केवल १२ हाइस्कूल थे वहाँ १६१२ ईसवीमे उनकी संख्या १८२ हो गई। यह रिपोर्ट आचार्य कर्वेको सन् १६१५ ईसवीमें मिली। उसी वर्ष दिसम्बरके महीनेमे उन्हें राष्ट्रीय समाज सुधार सम्मेलनके अधिवेशनमें सभापति होना था। उन्होंने अपने भाषणमें इस विषयकी चर्चा की और भारतवर्षमे एक महिला विद्यापीठ स्थापित करनेकी आवश्यकतापर जोर दिया।

सम्मेलन समाप्त होनेपर आचार्य कर्वेने इस विद्यापीठकी स्थापनाके लिये काम करना शुरू किया। इसमें उन्होंने हिंगणेके अनाथ-

बालिकाश्रमकी सहायता ली। सन् १९१६ ईसवीमें एप्रिलसे जून तक भारतवर्षका चक्कर लगाया और लोगोकी सहानुभूति इस कार्यके लिये प्राप्त की। जूनके महीनेमें विद्यापीठके सर्व प्रथम सीनेटकी बैठक पूनेके फरग्यूसन कालेजमे हुई जिसमें विद्यापीठके सङ्गठनकी नियमावली बनी और पाठ्यक्रम निश्चित किये गये।

विद्यापीठके उद्देश्य ये रक्खे गये—

(क) स्त्रियोंके लिये भारतवर्षकी प्रान्तीय भाषाओंके माध्यम द्वारा ऊच्च शिक्षाका प्रबन्ध करना।

(ख) माध्यमिक शिक्षाका नियमन करना और संस्थाएँ चलाना, उन्हे सहायता देना और उन्हे विद्यापीठसे सम्बद्ध करना तथा उनके लिये इस प्रकारका पाठ्यक्रम निश्चित करना जो स्त्रियों-के उपयुक्त हो।

(ग) प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयोंके लिये अध्यापिकाएँ तैयार करना।

(घ) परीक्षाएँ लेकर नियमानुसार उपाधियाँ, प्रमाणपत्र और सम्मानपत्र प्रदान करना।

(ङ) सीनेटके निश्चयानुसार अन्य ऐसे कार्य करना जो उपरोक्त उद्देश्योंके प्रतिकूल न हो।

अनाथ बालिकाश्रमने बम्बई विश्वविद्यालयकी मैट्रिकुलेशन परीक्षाके लिये विद्यार्थिनी तैयार करनेका उद्देश्य छोड दिया और

अपने महिला विद्यालयको इस विद्यापीठसे सम्बद्ध करा लिया। आश्रमने इस विद्यापीठके लिये एक कालेज चलानेका भी निश्चय किया। यह कालेज उसी वर्ष ५ जुलाईको खुला जब कि उसमे विद्यार्थिनियोकी सख्या केवल ४ थी।

स्थापनाके समय विद्यापीठके कोषमे एक रुपया भी न था। कुछ व्यक्तियोंके दानसे इसका काम चलने लगा। श्री एम० के० गाडगिलने महिलाश्रम द्वारा चलाये जानेवाले कालेजके लिये दस वर्षोंतक प्रतिवर्ष हजार रुपया देनेका वचन दिया। वे साढे तीन हजार ही दे पाये थे कि विद्यापीठने उक्त कालेजका भार अनाथ बालिकाश्रमसे अपने हाथोमे ले लिया। दूसरा दान दक्षिण आफ्रिका प्रवासी स्वर्गीय डाक्टर विट्ठल राघोबा लाण्डेसे मिला। उनकी वसीयतके अनुसार उनका सब लहना पावना साफ करके विद्या पीठको लगभग ४० हजार रुपये मिले। विद्यापीठने अपने पूनेकी कन्याशाला (श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी कन्याशाला) के भवनका नाम 'डाकृर बिट्ठल राघोबा लाण्डे भवन' रक्खा है। सबसे बडा दान सन् १६२० ईसवीमे सर बिट्ठलदास थाकरसीसे मिला। विद्यापीठकी स्थापनाके एक वर्ष बाद आप अनाथ बालिकाश्रममे आये थे और उसे हजार रुपयोंका दान दिया था। इसके बाद आप विश्वभ्रमणके लिये निकले और जापानके उस स्त्री विश्वविद्यालयको देखा जिसका द्वादश वार्षिक रिपोर्ट आचार्य

कर्वेको मिला था। उसे देख कर वे बहुत उत्साहित हुए और भारतवर्षीय महिला विद्यापीठके लिये कुछ शर्तोंके साथ १५ लाख रुपयोंकी निधि कायम कर दी। विद्यापीठके अधिकारियोंने उन शर्तोंको स्वीकार कर लिया और तारीख़ २१ जून सन् १६२० ईसवीको उसकी लिखा पढ़ी हो गई। शर्तोंमेसे कुछ ये है—

(१) श्री थाकरसी और उनके वारिस विद्यापीठको प्रतिवर्ष ५२५०० रुपये देंगे।

(२) इसके बदलेमे विद्यापीठ नीचे लिखी शर्तें मंजूर करता है—

(क) विद्यापीठका नाम श्री विट्ठलदास थाकरसीकी माताके नामपर 'श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ' होगा।

(ख) विद्यापीठ शीघ्रही पूनेमे एक हाइस्कूल खोलेगा।

(ग) विद्यापीठ, हिगणेमे अनाथ बालिकाश्रम द्वारा सञ्चालित कालेजको अपने आधीन कर लेगा और उसे पूनेके पास ले आकर वहाँ छात्रावासका भी प्रबन्ध करेगा।

(घ) विद्यापीठ बम्बईमे शीघ्रसे शीघ्र एक हाइस्कूल खोलेगा जहाँ मराठी और गुजराती दोनोके ही माध्यमसे शिक्षाका प्रबन्ध रहेगा और जो धीरे धीरे कालेजके रूपमे परिणत कर दिया जायगा।

(ङ) मकानात बन जानेपर विद्यापीठका सदर मुकाम बम्बईमें हो जायगा ।

(च) ऊपर (ख) और (ग) में वर्णित हाइस्कूल और कालेजके नाम श्री विट्ठलदासकी माताके नामपर रक्खे जायँगे। आगे भी विद्यापीठ द्वारा चलने वाली संस्थाओंके नाम इसी प्रकार रक्खे जावेंगे।

(छ) . ,

(ज) ....

(३) . . .

(४) जिस दिन विद्यापीठ नीचे लिखी शर्तोंमेंसे किसी एकको पूरा कर देगा उस दिन श्री विट्ठलदास और उनके वारिस इतने दामका सरकारी काग़ज विद्यापीठको दान कर देंगे जिसकी वार्षिक आय ५२५०० रुपये होगी। शर्तें ये है—

(क) विद्यापीठको सरकारी चार्टर मिल जाय।

या

(ख) विद्यापीठको सरकारसे इस तरहकी मान्यता मिल जाय जिससे एक ओर तो उसके स्थायी होनेका निश्चय हो जाय और दूसरी ओर जनताको यह विश्वास हो जाय कि वह ठीक रास्तोंसे चलाया

जायगा और उसके स्नातिकाओंका वही दर्जा होगा जो सरकारी विश्वविद्यालयके स्नातिकाओंका होता है।

या

(ग) विद्यापीठ कोई ऐसा कोष एकत्रित कर ले जिसकी वार्षिक आय ५२५०० रुपये हो।

(५) ऊपर (४) मे वर्णित दानके दे दिये जानेपर प्रतिवर्ष ५२५०० रुपयो के दानका दिया जाना बन्द कर दिया जायगा।

इस शर्तनामेको मंजूर करनेके बाद विद्यापीठका नाम 'श्रीमती नाथी बाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ' हो गया। हिंगणेका कालेज पूनेके समीप यरण्डवनमें ले आया गया, बम्बईमे एक हाइस्कूल खोला गया और इन सबके साथ साथ पूनेके हाइस्कूलका नाम शर्तनामेके अनुसार बदला गया। आजकल प्रत्यक्ष रूपसे विद्यापीठके सञ्चालनमे उपरोक्त एक कालेज और दोनो हाइस्कूलोके सिवाय २ और कालेज, १ अध्यापिका शाला, ८ हाइस्कूल और ५ मिडिल स्कूल इस विद्यापीठसे सम्बद्ध है। इनमेसे एक हाइस्कूल और अध्यापिका शाला हिंगणेके अनाथ बालिकाश्रममे है।

कालेजका पाठ्यक्रम तीन वर्षोंका है। अन्तिम वर्षकी परीक्षा

उत्तीर्ण करनेपर स्नातिकाओंको गृहीतागमाकी उपाधि दी जाती है। एक भारतीय भाषा, अगरेजी, इतिहास और समाज शास्त्र तथा गार्हस्थ्य विज्ञान और स्वास्थ्यरक्षा ये आवश्यक विषय हैं। इनके अतिरिक्त नीचे लिखे विषयोंमेंसे कोई एक लेना पडता है—(१) कोई प्राचीन भाषा, (२) भौतिक विज्ञान, (३) प्राकृतिक विज्ञान, (४) धर्मोंका तुलनात्मक अध्ययन, (५) अर्थ शास्त्रका इतिहास (६) नीतिशास्त्र और दर्शन, (७) गणित, (८) शिक्षा शास्त्र (९) सङ्गीत, (१०) चित्रकला, (११) अँगरेजीका विशेष अध्ययन (१२) किसी भारतीय भाषाका विशेष अध्ययन, और (१३) कोई यूरोपीय भाषा। आवश्यक द्रव्य एकत्र हो जानेपर कालेजमे एक वैद्यक विभाग भी खोलनेका विचार है। गृहीतागमा होनेके कमसे कम दो वर्ष बाद कोई स्नातिका प्रदेयागमा परीक्षामे बैठ सकती है। इसके लिये पहले एक निबन्ध लिखकर देना होता है और तब विद्यापीठके सीण्डीकेटके निश्चयानुसार किन्ही विषयोमे उसकी परीक्षा ली जाती है। कोई गृहीतागमा अथवा इसीके समकक्ष परीक्षामें उत्तीर्ण विद्यार्थिनी कमसे कम दो वर्षोंतक अध्यापन कार्य करनेके बाद शिक्षाशास्त्र परीक्षा (इक्जामिनेशन फार दि डिप्लोमा इन टीचिंग) में बैठ सकती है। यह परीक्षा दो भागोंमें होती है—सैद्धान्तिक और व्यावहारिक। इनके अतिरिक्त विद्यापीठकी ओरसे तीन और परीक्षाएँ ली जाती है—एण्ट्रेन्स परीक्षा, सेकण्डरी

स्कूल सर्टीफिकेट परीक्षा और प्राइमरी स्कूल अध्यापन (नार्मल स्कूल) परीक्षा। एण्ट्रेन्स परीक्षाके लिये नीचे लिखे विषय आवश्यक है—(१) एक वर्तमान भारतीय भाषा, (२) अगरेजी, (३) इतिहास, और (४) गार्हस्थ्य विज्ञान और स्वास्थ्यरक्षा। इनके अतिरिक्त नीचे लिखे विषयोंमेसे कोई दो लेने होते है—(१) प्राचीन भाषा (संस्कृत) (२) भौतिक और रसायन, (३) बीजगणित और रेखागणित (४) हिन्दी (केवल उनके लिये जिनकी मातृभाषा हिन्दी न हो) (५) भूगोल, (६) चित्रकारी, (७) सङ्गीत, (८) सीना पिरोना तथा कसीदेका काम और (९) शिक्षा विज्ञान (यह विषय लेने वालोंको और दूसरा ऐच्छिक विषयक नही लेना पडता)। सेकण्डरी स्कूल सर्टीफिकेट परीक्षा एण्ट्रेन्स परीक्षाकी ही भॉति होती है—केवल उसमें ॲगरेजी नही रहता। प्राइमरी स्कूल अध्यापन (नार्मल स्कूल) परीक्षाका पाठ्यक्रम तीन वर्षोंका है। इसमे वर्नाक्यूलर फ़ाइनल परीक्षा पास विद्यार्थिनियॉ ही ली जाती है। परीक्षा नीचे लिखे विषयोंमे होती है—(१) शिक्षापद्धतिके सिद्धान्त, (२) शिक्षापद्धतिका व्यावहारिक ज्ञान (३) प्रान्तीय भाषा, (४) अङ्कगणित, (५) इतिहास, (६) भूगोल, (७) स्वास्थ्यरक्षा, (८) प्रकृतिनिरीक्षण, (९) चित्रकारी और हाथका काम (१०) सङ्गीत, (११) कसीदेका काम और (१२) शारीरिक व्यायाम।

यह विद्यापीठ किसी प्रान्तविशेषका नही, अपितु समस्त भारत-

वर्षका है। किसी भी प्रान्तमे कोई भी संस्था अपनी भाषा द्वारा इस विद्यापीठके पाठ्यक्रमकी शिक्षाका प्रबन्ध करके अपनेको विद्यापीठसे सम्बद्ध कर सकती है। विद्यापीठकी ओरसे वहाँकी विद्यार्थिनियोंकी परीक्षा ले ली जायगी। ग्वालियरसे एक महिला हिन्दी भाषामें गृहीतागमा हो चुकी है। इस विद्यापीठकी मुख्य विशेषताएँ ये है—

(१) शिक्षाका माध्यम मातृभाषा रक्खी गई है।

(२) अँगरेजी भाषाके महत्वको भी देशकी वर्तमान परिस्थितिमें स्वीकार किया गया है और उच्च शिक्षाके लिये वह आवश्यक विषय है।

(३) पाठ्यक्रम बनानेमे स्त्रियोंको शिक्षा सम्बन्धी विशेष आवश्यकताओंका खयाल रक्खा गया है।

(४) पाठ्यक्रम इस प्रकार बनाया गया है जिससे प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा ६ वर्षोंमें तथा कालेजकी शिक्षा ३ वर्षोंमे समाप्त हो जाय। इस प्रकार यदि कोई लडकी छः वर्षकी उम्रमे पढना शुरू करे तो १५ वर्षकी उम्रमें एण्ट्रेन्स परीक्षा पास कर ले और १८ वर्षकी उम्रमें गृहीतागमा हो जाय।

(५) स्त्रियोमें माध्यमिक और उच्च शिक्षाका प्रचार करनेकी कोशिश की जाती है और एतदर्थ ये सुविधाएँ की गई हैं—

(क) यदि कोई विद्यार्थिनी किसी एक ही विषयमें

अनुत्तीर्ण हो तो अगली मर्तबा उसे केवल उसी विषयकी परीक्षा देनी होती है। एण्ट्रेन्सके सिवाय अन्य परीक्षाओंमे केवल एक विषयमे अनुत्तीर्ण होनेपर अगली परीक्षाके लिये तैयारी करनेकी इजाजत दे दी जाती है और दोनों परीक्षाऍ एक साथ ले ली जाती है।

(ख) विद्यार्थिनियोंकी परीक्षा उनके ही शहरोमे लेनेका प्रबन्ध कर दिया जाता है।

(६) विद्यापीठ सरकारी नियन्त्रणसे बिलकुल स्वतंत्र है। किन्तु यह केवल इसी लिये कि वह अपना पाठ्यक्रम निश्चित करनेमें स्वतंत्र रहना चाहता है। वह इस बात का प्रयत्न करता है कि सरकार उसके प्रमाणपत्रोंको स्वीकार करे। जो विद्यार्थिनियाँ गणित और विज्ञान ऐच्छिक विषय लेकर यहाँकी एण्ट्रेन्स परीक्षा पास करती है वे डाक्टरीकी सरकारी एल सी पी एस परीक्षाके लिये बैठ सकती है। नार्मल स्कूलके प्रमाणपत्रोंको भी बम्बईका सरकारी शिक्षाविभाग कुछ शर्तोंके साथ स्वीकार करता है।

जुलाई सन् १९२९ ईसवीमें विद्यापीठके आधीन और सम्बद्ध सस्थाओंमें शिक्षा पाने वाली विद्यार्थिनियोंकी संख्या इस प्रकार

थी—कालेजोमें ५८, हाइस्कूलोंमें १३०३ और मिडिल स्कूलोंमें २३०। सन् १९२९ के आरम्भ तक विद्यापीठकी भिन्न भिन्न परीक्षाओंमें उत्तीर्ण विद्यार्थिनियोकी सख्या इस प्रकार थी—

एण्ट्रेन्स परीक्षा	२५०
सेकेण्डरी स्कूल सर्टीफिकेट परीक्षा	४१
प्राइमरी स्कूल अध्यापन परीक्षा	४६
गृहीतागमा	६२
प्रदेयागमा	२

गृहीतागमा उपाधि प्राप्त करने वाली ६२ महिलाओंमेंसे ५ तो सन् १९२९ में निकली है। इनके सम्बन्धमे ब्योरेवार सूचना नहीं मिली है। शेष ५७ मेसे ३७ की मातृभाषा मराठी, १८ की गुजराती, १ की हिन्दुस्तानी, और १ की तेलगू थी। तेलगू महिलाने मराठीमें परीक्षा दी। शेषकी परीक्षाएँ उनकी मातृ भाषामे ली गई। इनमेसे कुछ स्नातिकाएँ वैवाहिक जीवनमें प्रवेश कर चुकी हैं। शेषमेंसे अधिकांश शिक्षा प्रचारका कार्य कर रही है। इनमेंसे एक अमरावतीके गवर्नमेण्ट गर्ल्स हाइस्कूलमें और एक कन्या महाविद्यालय जालन्धरमे अध्यापिका है। एक स्नातिका मद्रासके सरकारी ट्रेनिङ्ग कालेजमें शिक्षा पाकर नेल्लोरके एक स्कूलमे अध्यापिका है। हिगणेकी अध्यापिका शालासे—जो कि इस विद्यापीठसे सम्बद्ध है—३८ अध्यापिकाएँ निकल चुकी है।

परिशिष्ट

परिशिष्ट (क)

प्रश्नावली, जो मुख्य मुख्य संस्थाओंके पास उत्तरार्थ भेजी गई थी।

१ आपकी सस्थाका उद्देश्य क्या है ?

२. प्रचलित सरकारी शिक्षासस्थाओंकी अपेक्षा इसमें कौन कौनसी विशेषताएँ है ?

३ आपके विचारसे राष्ट्रीय शिक्षाकी क्या परिभाषा है ?

४ अध्यापकोका सग्रह करनेमे आप किन किन बातोंका खयाल रखते हैं ?

५. विद्यार्थियोंका सग्रह करनेमें आप किन किन बातोंका खयाल रखते है ?

६ क्या विद्यार्थियोके प्रवेश आदिके सबन्धमें आपके यहाँ कुछ ऐसे नियम हैं जिनके द्वारा आप बालविवाह, छुआछूत और अन्य सामाजिक बुराइयों-को दूर करनेका प्रयत्न करते हों ?

७ पाठ्यक्रम बनाते समय आप किन किन बातोंका खयाल रखते है ? देशके सभी ग़ैरसरकारी विद्यालयोंके पाठ्यक्रममें समानता लानेके सम्बन्धमे आपके क्या विचार हैं ? आपके पाठ्यक्रममें ऐसी कौनसी बातें हैं जिन्हे आप किसी अवस्थामें बदलना न चाहेगे ?

८. आपके यहाँ लडके और लडकियोंके पाठ्यक्रममें कोई अन्तर है या नहीं ? यदि है तो किस प्रकारका ?

९ पुस्तकोका ज्ञान करानेके अतिरिक्त विद्यार्थियोंके आचार व्यवहारका परिष्कार करनेके लिये आप कौन कोनसे उपाय करते है ?

१०. आपकी सस्थामें लडके और लडकियोकी शिक्षाका प्रबन्ध साथ साथ है या अलग अलग ! यदि साथ साथ है तो इतने दिनोंके अपने अनुभवके आधार पर इस प्रणालीको आप प्रचलित रखना ठीक समझते हैं या इसमे किसी तरहका परिवर्तन करना आवश्यक समझते हैं ?

११. विद्यार्थियोकी शिक्षा और छात्रावासके सम्बन्धमे किसी तरहका शुल्क लिया जाता है या नही, यदि लिया जाता है तो कितना ?

१२ विद्यार्थियोको कोई छात्रवृत्ति दी जाती हे या नहीं ? यदि दी जाती है तो कितनी, और उसके दिये जानेका क्या नियम है ?

१३ आपके यहाँ मैट्रीक्युलेशनकी समकक्ष परीक्षा पास करने पर औसत् कितने प्रतिशत् विद्यार्थी कालेजके लिये जाते हैं ? जो उच्च शिक्षाके लिये नहीं जाते वे जीवन निर्वाहके लिये किन किन कामोंमे लग सकते हैं ?

१४. स्नातकोके जीवन निर्वाहकी कठिनाइयोंको दूर करनेके लिये आपके पाठ्यक्रममे कौनसी व्यवस्था है ?

१५ देशके राजनैतिक तथा सामाजिक आन्दोलनोके प्रति आपकी सस्थाका क्या रुख है ?

१६ अपने उद्देश्योंकी पूर्तिमें आपको किन किन कठिनाइयोंका सामना करना पडा है, और उन्हे दूर करनेके लिये भविष्यमें आप किन किन उपायोंका अवलम्बन करना चाहते हैं ?

१७ क्या आपकी योजनामें कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हे आप अभीतक कार्यान्वित नहीं कर सके हैं ?

१८. अपनी सस्थाके सम्बन्धमे और भी जानने योग्य बातोंका कृपया उल्लेख करें ?

१९ अपनी सस्थाका आरम्भसे आजतकका सक्षिप्त विवरण दीजिये, साथ ही आजतकके सभी रिपोर्ट, पाठ्यक्रम और नियम आदि भी भेजिये ।

परिशिष्ट (ख)

मुख्य मुख्य संस्थाओंके अन्तर्गत विद्यालयों, उनके विद्यार्थियों और उन संस्थाओंसे निकले हुए स्नातकों और स्नातिकाओंकी संख्या (सन् १९२९ में)

क्रम संख्या	संस्थाका नाम	इस संस्थाद्वारा सञ्चालित अथवा इससे सम्बद्ध विद्यालयोंकी संख्या						विद्यार्थियोंकी संख्या	आजतक निकले हुए स्नातकों और स्नातिकाओंकी संख्या
		प्रारम्भिक और माध्यमिक	औद्योगिक	अध्यापक विद्यालय	ग्रामसेवा विद्यालय	महाविद्यालय (कालेज) और पुरातत्वविभाग	योग		
१	अनाथ बालिकाश्रम, हिंगणे ॐ	१		१		.	२	१८५	.
२	कन्या गुरुकुल, देहरादून	१			.	१	२	१५०	..
३	कन्या महाविद्यालय, जालन्धर	२				१	३	४९५	३४
४	काशी विद्यापीठ, काशी	२	.			१	३	१२५	५१
५	गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद	१२	.		१	३	१६	६९७	२९७
६	गुरुकुल, काँगडी	७			.	१	८	८४९	१८४†
७	गुरुकुल, वृन्दावन	१	..	.	.	१	२	१८३	३३

८	जामिया मिल्लिया इस्लामियां, दिल्ली	४	...			१	५	७४८	७१
९	तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना	१८				२	२०	९१३	२३१†
१०	श्रीदक्षिणामूर्त्ति विद्यार्थीभवन, भावनगर	२	.	१	..		३	१६९	..
११	नवीन श्रीसमर्थ विद्यालय, तलेगाँव ❀	१			.		१	६०	..
१२	प्रेममहाविद्यालय, वृन्दावन	१	६		१	१	९	१७८	२००‡
१३	बङ्गीय राष्ट्रीय शिक्षापरिषद्, कलकत्ता	१४				१	१५	३००§	४२७
१४	बिहार विद्यापीठ, पटना	४२	.		.	१	२३	१३००	६२
१५	महाविद्यालय, ज्वालापुर	१	.			१	२	१६०	७३
१६	विश्वभारती, शान्तिनिकेतन	१				२	३	२०८	१३¶
१७	श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ, पूना	१५		१		३	१९	१६१८	६२
		१०३	६	२	२	२०	१३३	८४३३	१७९१

❀ अनाथ बालिकाश्रम, हिंगणे और नवीन श्रीसमर्थ विद्यालय, तलेगाँवके सामने जो अङ्क दिये गये हैं वे क्रमश श्रीमती नाथीबाई दामोदर थाकरसी भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ और तिलक-महाराष्ट्र विद्यापीठके सामने दिये गये अङ्कोंमे शामिल हैं। अतएव योगमें ये अङ्क दुबारा नहीं जोडे गये हैं। † ये अङ्क सन् १९२८ तकके हैं। ‡ यह सख्या भिन्न भिन्न विभागोसे डिप्लोमा प्राप्त विद्यार्थियोंकी है। § यह सख्या केवल कालेजके विद्यार्थियोंकी है। ‖ इनमेसे १९ टेकनिकल विभागके और शेष साधारण विभागके स्नातक हैं। ¶ यह सख्या विश्वभारतीका कोर्स लेनेवाले स्नातक की है।